जीवन रहस्य

अनुक्रम

1. परमात्मा को पाने का लोभ...2
2. मौन का द्वार..16
3. स्वरूप का उदघाटन...31
4. प्रार्थना: अद्वैत प्रेम की अनुभूति..48
5. विश्वास--विचार--विवेक...63
6. उधार ज्ञान से मुक्ति..73
7. पिछले जन्मों का स्मरण..84
8. नये वर्ष का नया दिन...95
9. मैं कोई विचारक नहीं हूं...104 10.......................................मनुष्य की एकमात्र समस्या: भीतर का खालीपन
.... 112
11..प्रेम करना; पूजा नहीं
.... 128
12...धन्य हैं वे जो सरल हैं
.... 142

जीवन रहस्य
पहला प्रवचन

परमात्मा को पाने का लोभ

करीब आ जाएं! जितने करीब होंगे, मुझे थोड़ा, धीमे बोलता हूं, इसलिए दिक्कत न होगी।

आपने एक बढ़िया सवाल पूछा है। पूछा है कि ऐसे कोई लालच बताएं कि जिससे
हम भगवान की तरफ चल पड़ें, ऐसे कोई प्रलोभन जिससे हमारा मन भगवत्-प्राप्ति में लग जाए।

यह सवाल कीमती है और बहुत महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण इसलिए है कि जब
तक किसी भी तरह का लालच हो, तब तक कोई भगवत्-प्राप्ति में नहीं लग सकता-- चाहे वह लालच भगवत्-प्राप्ति का ही क्यों न हो। लालच से भरा हुआ चित्त ही अशांत होता है। जहां लालच है, वहां चित्त अशांत है। और जब तक चित्त अशांत है तब तक भगवान से क्या संबंध हो सकता है?
लालच का मतलब क्या है?
लालच का मतलब यह है कि जो मैं हूं, उससे तृप्ति नहीं; कुछ और होना चाहिए। फिर चाहे यह कुछ और होना धन का हो, स्वास्थ्य का हो, यश का हो, आनंद का हो, भगवान का हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लालच का मतलब हैः एक टेंशन, एक तनाव। जो मैं हूं वह नहीं, जो होना चाहिए वह हो। और जो मैं हूं वह अभी हूं और जो होना चाहिए वह कल होगा। तो कल के लिए मैं खिंचा हुआ हूं, तना हुआ हूं। यह तना हुआ चित्त ही लालच से भरा हुआ चित्त है। इसलिए सब तरह की ग्रीड, सब तरह का लोभ अशांति पैदा करेगा। और जहां अशांति है वहां भगवत्- प्राप्ति कैसे?
अशांत चित्त का भगवान से संबंधित होने का कोई उपाय ही नहीं है। अशांति ही तो बाधा है। फिर हम पूछते हैं कि कोई लालच? क्योंकि हमारा मन तो लालच को ही समझता है, एक ही भाषा समझता है, वह है लालच की भाषा। धन के लिए इसलिए दौड़ते हैं, यश के लिए इसलिए दौड़ते हैं। फिर इस सब से ऊब जाते हैं तो हम कहते हैंः भगवान के लिए कैसे दौड़ें?
यह थोड़ा समझ लेना चाहिए कि उसके लिए दौड़ना तो संभव है जो हमसे दूर हो, लेकिन जो हमारे भीतर ही हो उसके लिए दौड़ना असंभव है। और अगर दौड़े तो चूक जाएंगे।
तो कुछ चीजें ऐसी हैं जो दौड़ कर पाई जा सकती हैं। क्योंकि असल में वे हमारा स्वभाव नहीं हैं, हमसे अलग हैं। अगर धन पाना है तो बिना दौड़े नहीं मिल जाएगा। अगर यश पाना है तो दौड़ना पड़ेगा।
अब यह बड़े मजे की बात है कि धन के संबंध में लालच स्वाभाविक है। क्योंकि बिना लालच के धन पाया ही नहीं जा सकता। क्योंकि बिना दौड़े धन कैसे आ जाएगा? धन कहीं और है, आप कहीं और हैं, दौड़ना पड़ेगा, दौड़ना पड़ेगा, तो शायद आप पहुंच जाएं। फिर भी जरूरी नहीं कि पहुंच जाएं।
लेकिन परमात्मा कहीं दूर नहीं है, एक इंच का भी फासला होता तो थोड़ा दौड़ लेते। एक इंच का भी फासला नहीं है। हम वहीं खड़े हैं जहां परमात्मा है। हम वही हैं, वही हैं जो वह है, तो दौड़ेंगे कहां? खोजने कहां जाएंगे? जिसे खोया हो उसे खोज सकते हैं। और जिसे खोया ही न हो, उसे खोजा तो भटक जाएंगे, सिर्फ परेशानी में पड़ जाएंगे।
मैंने सुना है, एक आदमी ने शराब पी ली थी और वह रात बेहोश हो गया। आदत
के वश अपने घर चला आया, पैर चले आए घर। लेकिन बेहोश था, घर पहचान नहीं सका। सीढ़ियों पर खड़े होकर पास-पड़ोस के लोगों से पूछने लगा कि मैं अपना घर भूल गया हूं, मेरा घर कहां है मुझे बता दो! लोगों ने कहा, यही तुम्हारा घर है।
उसने कहा, मुझे भरमाओ मत, मुझे मेरे घर जाना है, मेरी बूढ़ी मां मेरा रास्ता देखती होगी। और कोई कृपा करो, मुझे मेरे घर पहुंचा दो।

शोरगुल सुन कर उसकी बूढ़ी मां भी उठ आई, दरवाजा खोल कर उसने देखा कि उसका बेटा चिल्ला रहा है, रो रहा है कि मुझे मेरे घर पहुंचा दो। उसने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा, बेटा, यह तेरा घर है और मैं तेरी मां हूं।
उसने कहा, हे बुढ़िया, तेरे ही जैसी मेरी बूढ़ी मां है, वह मेरा रास्ता देखती होगी। मुझे मेरे घर का रास्ता बता दो। पर ये सब लोग हंस रहे हैं, कोई मुझे घर का रास्ता नहीं बताता। मैं कहां जाऊं? मैं कैसे अपने घर को पाऊं? तब एक आदमी ने, जो उसके साथ ही शराब पीकर लौटा था, उसने कहा, ठहर, मैं बैलगाड़ी ले आता हूं, तुझे तेरे घर पहुंचा देता हूं।
तो उस भीड़ में से लोगों ने कहा कि पागल, इसकी बैलगाड़ी में मत बैठ जाना, नहीं तो घर से और दूर निकल जाएगा; क्योंकि तू घर पर ही खड़ा हुआ है। तुझे कहीं भी नहीं जाना है, सिर्फ तुझे जागना है। तुझे कहीं जाना नहीं है, सिर्फ जागना है, सिर्फ होश में आना है और तुझे पता चल जाएगा कि तू अपने घर पर खड़ा है। और किसी की बैलगाड़ी में मत बैठ जाना, नहीं तो जितना, जितना खोज पर जाएगा उतना ही दूर निकल जाएगा।
हम सब वहीं खड़े हुए हैं, जहां से हमें कहीं भी जाना नहीं है।
लेकिन हमारा चित्त एक ही तरह की भाषा समझता है--जाने की, दौड़ने की, लालच की, पाने की, खोज की, उपलब्धि की। तो वह जो हमारा चित्त एक तरह की भाषा समझता है... अब आप पूछते हैं कि गृहस्थ... असल में अगर ठीक से समझें, तो जो पाने की, खोजने की, पहुंचने की, दौड़ने की, लोभ की भाषा समझता है, ऐसे चित्त का नाम ही गृहस्थ है। और गृहस्थ का कोई मतलब नहीं होता। जिसको इस तरह की लैंग्वेज भर समझ में आती है वह गृहस्थ है। और जो पाने की, दौड़ने की, खोजने की, पहुंचने की भाषा छोड़ देता है, पहुंचा ही हुआ हूं, पाया ही हुआ हूं, हुआ ही हुआ हूं, ऐसी भाषा समझने लगता है, उसका नाम संन्यस्त है। और अगर संन्यासी भी पहुंचने और दौड़ने की बात कर रहा हो तो गृहस्थ है, वह अभी संन्यासी नहीं है। कपड़े बदल लिए होंगे, यह हो सकता है। लेकिन अगर वह यह कह रहा है कि पाना है परमात्मा को, तो अभी वह गृहस्थ है। अभी वह संन्यासी हुआ ही नहीं, अभी उसने भाषा ही नहीं जानी कि संन्यासी होने का मतलब क्या है। संन्यासी होने का मतलब यह है कि पाने को कुछ है ही नहीं। जो भी पाने को
है वह पाया ही हुआ है। लोभ करने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि जिसका हम लोभ करें वह हमारे भीतर ही बैठा हुआ है। और यदि हमने लोभ किया तो हम भटक जाएंगे भीतर से, कहीं और चले जाएंगे। और वही लोभ और लालच हमें भटका रहा है।
अक्सर तो यही होता है कि एक आदमी गृहस्थ है और संन्यासी हो जाता है, तो लोभ के कारण ही। वह कहता है, गृहस्थी में नहीं मिलता आनंद, संन्यस्त होने से आनंद मिल जाएगा। वह कहता है, गृहस्थी में नहीं मिलता परमात्मा, और मैं परमात्मा को पाए बिना कैसे रह सकता हूं, तो मैं संन्यासी होता हूं।
लेकिन अभी उसकी जो भाषा है वह गृहस्थ की है। अभी उसे पता भी नहीं चला
कि वह गृहस्थ का जो फ्रेमवर्क है गृहस्थ के दिमाग का, उसके बाहर नहीं हो रहा है। वह उसी के भीतर चल रहा है। अब वह नये उपाय में लग जाएगा--पूजा करेगा, प्रार्थना करेगा, जप करेगा, तप करेगा। ये सब प्रयत्न होंगे पाने के। लेकिन जो पाया ही हुआ है, उसे पाने का कोई भी प्रयत्न उचित नहीं है, अनुचित है। उसे जानना है, पाना नहीं है। इस फर्क को समझ लेना चाहिए कि उसे सिर्फ जानना है, पाना नहीं है। वह पाया हुआ है। ऐसे ही जैसे हमारी जेब में कुछ चीज पड़ी है और हम भूल गए हैं। और अब उसे खोजते फिर रहे हैं, खोजते फिर रहे हैं, और वह नहीं मिलती, क्योंकि वह जेब में पड़ी है।
सत्य की, प्रभु की, आनंद की सब खोज व्यर्थ है। असल में मत खोजिए, एक क्षण को भी कुछ मत खोजिए। एक क्षण को भी अगर सारी खोज रुक जाए, सारा लोभ रुक जाए, तो चित्त का आवागमन रुक जाएगा।
अब आप कहते थे कि कभी चित्त यहां जाता, कभी वहां जाता, कभी वहां जाता।
वह जाएगा ही, वह जाता ही रहेगा जब तक लालच है। तो जहां लालच दिखेगा वहीं चला जाएगा। एक जगह भर नहीं आएगा--जहां हमारा होना है, वहां भर नहीं आएगा, क्योंकि वहां कोई लालच नहीं दिखाई पड़ता। वहां पाने को क्या है? भीतर पाने को क्या है? भीतर पाने को कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। सब बाहर दिखाई पड़ता है पाने को। बड़े मकान हैं, वे बाहर हैं; धन के ढेर हैं, वे बाहर हैं; और परमात्मा है तो वह भी कहीं दूर आकाश में बाहर है। भीतर कुछ दिखाई नहीं

पड़ता कि वहां जाएं किसलिए? क्या पाने को मिलेगा वहां? इसलिए चित्त सब जगह जाता है, एक जगह छोड़ देता है।
मैंने सुनी है एक कहानी कि भगवान ने सारी दुनिया बनाई है और जब आदमी
को बनाया तो वह बहुत परेशान हो गया। क्योंकि आदमी को जैसे ही बनाया आदमी हजार शिकायतें, हजार सवाल, हजार समस्याएं लेकर पहुंचने लगा। तो उसने देवताओं से कहा कि यह तो मुझे सोने भी नहीं देगा, जीने भी नहीं देगा। ऐसी कुछ बताओ तरकीब कि मैं आदमी से बच सकूं।
तो किसी देवता ने कहा, हिमालय पर बैठ जाइए।
उसने कहा, कितनी देर हम बचेंगे हिमालय पर? आज नहीं कल कोई हिलेरी, कोई तेनसिंह चढ़ जाएगा।
तो किसी ने कहा, चांद पर बैठ जाइए।
उसने कहा, वह भी बहुत दिन दूर नहीं जब आदमी वहां पहुंच जाएगा।
दूर के तारे सुझाए। लेकिन उन्होंने कहा कि नहीं, वह कहीं काम नहीं करेगा। कुछ ऐसी जगह बताओ जहां आदमी पहुंचे ही नहीं।
तब एक बूढ़े देवता ने कहा, फिर एक ही जगह है, आप आदमी के भीतर बैठ जाइए।
और वहां वह कभी नहीं जाएगा। चांद पर पहुंच जाएगा, लेकिन वहां कभी नहीं आएगा।
और भगवान इसके लिए राजी हो गए, यह बात उनकी समझ में आ गई।
यह तो कहानी है। लेकिन सच्चाई भी यही है। लोभ ले जाता है बाहर, लोभ ले जाता है दूर, लोभ ले जाता है भविष्य में। और जिसकी आप बात कर रहे हैं भगवत्- प्राप्ति की, वह है अभी, यहीं, इसी वक्त, हियर एंड नाउ; न कल, न परसों; भविष्य में नहीं; अभी, इसी क्षण, यहीं, आपके पास ही, आप में ही, आप ही मौजूद है।
वह जो कह रहा है कि कहां खोजूं? वही है जिसको खोजना है। जो कह रहा है
कि कहां जाऊं? किस लालच से जाऊं? वह जो यह कह रहा है, जो यह पूछ रहा है, उसका ही पता लगा लेना है। और उसका पता लगा लेने के लिए किसी लोभ की, किसी लालच की, किसी दौड़ की, किसी खोज की, किसी उपाय की, किसी एफर्ट की कोई भी जरूरत नहीं है। उसके लिए चाहिए एफर्टलेसनेस, उसके लिए चाहिए सब प्रयत्नों का छोड़ देना, उसके लिए चाहिए सब दौड़ का बंद हो जाना, उसके लिए चाहिए लालच का निरस्त हो जाना, शून्य हो जाना। तब आप कहां जाएंगे? तब आप क्या करेंगे? तब आप वहीं होंगे जहां आप हैं। वहां करने की कोई जरूरत नहीं, वहां बिना किए ही आप हैं, किया कि चूक गए।
इसलिए न कोई उपाय है उसे पाने का, न कोई विधि, न कोई मेथड है उसे पाने का, न कोई मार्ग है उसे पाने का, न कोई गुरु उसे पहुंचा सकता है आपको, न कोई सहारा दे सकता है। जिस दिन आपके ये सारे भ्रम टूट जाएंगे, उस दिन आप पाएंगे कि उसे आपने पा लिया है।
और इसलिए यह तो पूछिए ही मत, मैं तो कोई लालच उसके लिए नहीं बता सकता। मैं तो यह भी नहीं कहूंगा कि वहां आनंद मिलेगा, मुक्त हो जाएंगे, अमृत हो जाएगा, अमर हो जाएंगे। ये सब लालच हमारे मन को पकड़ते हैं, क्योंकि मरने का हमें डर है, मृत्यु से हम भयभीत हैं। इसलिए हम चाहते हैं कि कोई विश्वास दिला दे कि उसे पा लेने से अमर हो जाएंगे, फिर मरेंगे नहीं। दुख हमें खा रहा है, तो हम चाहते हैं कि कोई आश्वासन दे दे कि आनंद वहां मिल जाएगा। जिंदगी हाथ से निकली चली जा रही है, कोई विश्वास दिला दे कि वहां परम जीवन मिल जाएगा। तो हम कुछ दौड़ने लगे, हम दौड़ने लगे। और मजा यह है कि दौड़ रहे हैं इसीलिए उसे पा नहीं सकते।
तो यह जो कंट्राडिक्शन है, यह अगर ख्याल में आ जाए, दौड़ने की भाषा छूट जाएगी। तब रुकने की भाषा। तब भागने का ख्याल नहीं, ठहरने का ख्याल। तब इसलिए नहीं कि वहां क्या मिल जाएगा, बल्कि इसलिए उसे जानना है कि हम वहां हैं ही, चाहे कुछ मिले और चाहे कुछ न मिले। हम वहां हैं ही। और उस स्थल को तो जानना ही चाहिए जहां हम हैं। नहीं तो हमारा जीवन, हो सकता है कि जो हम कर रहे हैं वह बिल्कुल विपरीत हो, जो हम हैं उसके बिल्कुल विपरीत हो। उसे जान लेने की बात ही पर्याप्त है। और दो ही तरह की, दो ही तरह की संभावनाएं हैं। एक तो वे चीजें हैं जिन्हें हम कोशिश करके पा सकते हैं। और कुछ चीजें ऐसी हैं जिन्हें कोशिश करके हम खो सकते हैं।

जैसे आपको रात नींद न आती हो, और आप कोशिश करें नींद लाने की। क्योंकि
आप कहेंगे कि बिना कोशिश के नींद कैसे आएगी? बिना प्रयास के कैसे नींद आएगी? तो आप प्रयास करें--गिनती गिनें, भगवान का नाम लें, मंत्र पढ़ें, उठें- बैठें, पैर धोएं, सिर धोएं, हजार उपाय करें, करवट बदलें--आप कहें कि बिना उपाय के नींद कैसे आएगी, तो मुझे कोई उपाय चाहिए।
तो मैं आपको कहता हूं कि फिर नींद रात भर नहीं आएगी; क्योंकि सब उपाय नींद में बाधा बनेंगे। नींद है विश्राम। किसी भी तरह का श्रम विरोध है उसका। नींद है अप्रयास, अप्रयत्न। और आपने प्रयत्न किया तो उलटा हो जाएगा। तो अगर नींद न आती हो तो अब कोई प्रयास न करें, बस चुपचाप पड़े रहें। प्रयास ही न करें नींद का, नींद की बात ही छोड़ दें, नींद लाने की कोशिश ही न करें। तो नींद आ सकती है। और आपने प्रयास किया कि आप गए, आप खो गए, फिर नींद नहीं आ सकेगी।
कुछ चीजें हैं जो आती हैं और हमें लानी नहीं पड़ती हैं। और परमात्मा इन चीजों में अंतिम चीज है--जो आता है, जिसे हम ला नहीं सकते।
लेकिन आप कहेंगे, फिर? फिर क्या हम कुछ भी न करें?
यह मैं नहीं कह रहा हूं।
सूरज निकला है, आपका द्वार बंद है, भीतर नहीं जाएगा, द्वार पर ठहरा रहेगा। लेकिन आप गठरी बांध कर सूरज की रोशनी को घर के भीतर नहीं ले जा सकते। आप ज्यादा से ज्यादा इतना कर सकते हैं कि द्वार खोल कर बैठ जाएं, प्रतीक्षा करें। आपकी तरफ से बाधा न रहे, बस इतना ही प्रयास है, अगर ठीक से समझें तो। पाजिटिवली आप कुछ भी नहीं कर सकते सूरज को भीतर लाने के लिए। विधायक रूप से आप नहीं उसको गठरी में बांध कर ला सकते हैं। निगेटिवली, नकारात्मक रूप से इतना कर सकते हैं कि आपकी तरफ से बाधा न रहे, सूरज आए तो आपकी तरफ से रुकावट न रहे। आप दरवाजा खोल सकते हैं, खिड़की खोल सकते हैं, फिर बैठ कर प्रतीक्षा कर सकते हैं।
सूरज आएगा, आप ला नहीं सकते। लेकिन आप रोक सकते हैं। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए। आप ला नहीं सकते सूरज को भीतर, लेकिन आप आने से रोक जरूर सकते हैं। और अगर आने से रोक रहे हैं, तो नहीं आएगा सूरज। हालांकि ला नहीं सकते। सिर्फ आपकी रुकावट न हो, बाधा न हो, हिंडरेंस न हो, दरवाजा बंद न हो, वह आ जाएगा। लेकिन तब भी आप यह नहीं कह सकते कि मैं ले आया; यह आप कहेंगे तो गलती हो जाएगी।
इसलिए जो परमात्मा को उपलब्ध होता है, वह यह भी नहीं कह सकता कि मैंने
पा लिया; वह इतना ही कहता है--उसकी कृपा। वह यह भी नहीं कह सकता कि मैंने पा लिया; क्योंकि मैं क्या पा सकता हूं? उसका प्रसाद! उसकी ग्रेस! उसकी अनुकंपा! वह मिला है! जिसको भी मिला है, वह यह नहीं कह सकता कि मैंने पा लिया है। वह अहंकार भी वहां काम नहीं कर सकता। क्योंकि अहंकार वहीं काम कर सकता है जहां हमारा प्रयत्न सफल होता हो। लेकिन जहां हमारा कोई प्रयत्न सफल नहीं होता, वहां अहंकार के खड़े होने का कोई उपाय नहीं। हम इतना ही कह सकते हैं कि मैंने बाधा नहीं दी। हम इतना ही कह सकते हैं कि मैं तैयार था कि वह आए। हम इतना ही कह सकते हैं कि मेरा द्वार खुला था। आया वही है, हम उसे लाए नहीं हैं, सिर्फ हमने रोका नहीं है।
इसे ठीक से समझ लें। जैसे मैं मुट्ठी बांधा हुआ हूं, और मैं जोर से मुट्ठी बांधे हुए हूं, और मैं किसी से पूछूं कि मैं मुट्ठी को कैसे खोलूं? क्या उपाय करूं? क्या प्रयत्न करूं? तो वह आदमी मुझे बताएगा उपाय मुट्ठी खोलने का! वह मुझे यही बताएगा कि तुम बांधो भर मत। तुम बांधने के लिए जो प्रयास कर रहे हो, वह भर कृपा करके मत करो, मुट्ठी खुल जाएगी। मुट्ठी खोली नहीं जाती; मुट्ठी सिर्फ खुलती है। हां, बांधी जा सकती है। खुला होना मुट्ठी का स्वभाव है। हमारे बिना कुछ किए मुट्ठी खुल जाती है, हमारे बिना कुछ किए मुट्ठी बंधती नहीं।
स्वभाव का मतलब हैः जो हमारे बिना किए होता है। विभाव का मतलब हैः जो हमारे करने से होता है। परमात्मा हमारा स्वभाव है, इसलिए करने से नहीं होगा। लेकिन हम कोशिश करके उसे खो सकते हैं, हम उपाय करके उसे रोक सकते हैं।

मुट्ठी मुझे बांधनी पड़ती है, खोलनी नहीं पड़ती। हालांकि भाषा में दोनों बातें हम कहते हैं कि मुट्ठी खोल रहे हैं। खोलना बिल्कुल झूठा शब्द है। खोलना क्रिया नहीं है, बांधना क्रिया है। बांधने में एक्ट है आपका। खोलने में कौन सा एक्ट है? खोलने में इनएक्ट है, इनएक्शन है। कहना चाहिए कि खोलने में बांधना भर नहीं कर रहे हैं आप। आप नहीं बांध रहे हैं, और मुट्ठी खुल गई है।
इस बात को अगर ख्याल में ले लें, तो परमात्मा को खोजना नहीं है; हमने कैसे खोया है, यह भर समझ लेना है। यानी हमने किन तरकीबों से, किन उपाय से दीवालें और दरवाजे खड़े कर दिए हैं--कि जो हम से मिला ही हुआ है उससे भी मिलना मुश्किल हो गया है!
तो पूछना यह नहीं है कि हम कैसे उसे पाएं, पूछना यह है कि हमने कैसे उसे खोया है?
यह फर्क आप समझ रहे हैं न? क्योंकि फिर पूरी बात भिन्न हो जाएगी आगे जाकर। इतना फर्क ख्याल में आ गया, तो सारी साधना का रूप बदल जाता है। पूछना यह है कि किस उपाय से मैं उससे दूर हो गया हूं जिससे दूर होने का उपाय न था? कैसी तरकीब से मैंने सूरज को बाहर ठहरा दिया है? किस तरकीब से मैं अंधेरे में जी रहा हूं? कौन से दरवाजे हैं जो मैंने बंद कर दिए हैं और कौन से ताले हैं जिन पर मैंने चाबी जड़ दी है? यह पूछना जरूरी है।
लेकिन हम आमतौर से पूछते हैं, परमात्मा को कैसे पाएं? वह प्रश्न ही गलत है। पूछना चाहिए कि हमने परमात्मा को कैसे खोया? हाउ वी हैव लॉस्ट हिम? कैसे खो दिए हैं हम? क्योंकि परमात्मा को खोने का मतलब है अपने को खोना! हमने अपने को कैसे खो दिया है? हम अपने को कैसे भूल गए हैं? यह कैसे संभव हो गया है यह इंपासिबल? यह असंभव कैसे संभव हुआ है कि हम अपने को ही नहीं जान पा रहे हैं कि कौन हैं? इससे ज्यादा असंभव कोई बात हो सकती है! मैं हूं, मैं जानता भी हूं कि हूं, और फिर भी नहीं जानता कि कौन हूं! बड़ी अदभुत घटना घट गई है! अगर दुनिया में कोई मिरेकल, कोई चमत्कार घटित हुआ है, तो वह चमत्कार यह नहीं है कि किसी ने ताबीज बना दिया हवा से और किसी ने राख गिरा दी है हवा से, कि किसी ने किसी अंधे की आंखें ठीक कर दी हैं। इस जगत में जो सबसे बड़ा चमत्कार हो गया है, वह यह कि हम हैं, जानते हैं कि हैं, और पता नहीं कि कौन हैं! और पता नहीं कहां थे! और पता नहीं कहां के लिए जा रहे हैं! यह एकमात्र मिरेकल है! और यह कैसे संभव हुआ है, यह समझना चाहिए। और अगर यह हमारी समझ में आ जाए कि यह कैसे संभव हुआ है, तो कठिन नहीं है यह बात कि हम मुट्ठी बांधना बंद कर दें और मुट्ठी खुल जाए।
कुछ तरकीबें हैं मन की जिनसे यह संभव हुआ है। पहली तो मन की तरकीब यह
है कि वह आपको कभी वर्तमान में नहीं जीने देता। जीने ही नहीं देता! आप कभी वर्तमान में होते ही नहीं! यहां और अभी आप कभी नहीं होते। या तो पीछे अतीत में होते हैं, जो जा चुका, जो अब नहीं है; या भविष्य में होते हैं, जो अभी आया नहीं और नहीं है। जो है, जो अभी है इसी वक्त, उसमें आप कभी होते ही नहीं। तो मन की एक ट्रिक है कि वह आपको वर्तमान से चुकाता रहता है। और वर्तमान से अगर आप चूक गए तो दरवाजा बंद हो गया, क्योंकि वर्तमान दरवाजा है--सत्य का, अस्तित्व का, एक्झिस्टेंस का।
अगर इसे ठीक से समझ लें कि अस्तित्व में न तो अतीत है कुछ और न भविष्य
है कुछ। अस्तित्व तो सदा वर्तमान है। इसलिए आप परमात्मा के लिए पास्ट टेंस का या फ्यूचर टेंस का उपयोग नहीं कर सकते। आप यह नहीं कह सकतेः गॉड वा.ज। नहीं कह सकतेः ईश्वर था। आप यह भी नहीं कह सकतेः गॉड विल बी; कि ईश्वर होगा। आप तो जब भी कहेंगे तबः गॉड इ.ज। ईश्वर के लिए अतीत और भविष्य का उपयोग नहीं हो सकता, वह है।
सच बात यह है कि "है" कहना भी परमात्मा को गलत है, क्योंकि हम "है" उस चीज को कहते हैं जो "नहीं है" भी हो सकती है। हम कहते हैंः तख्त है, टेबल है। क्योंकि कल टेबल नहीं हो सकती है; कल नहीं थी। जो कल नहीं थी, कल नहीं हो सकती है, उसको है कहने का कोई मतलब है। परमात्मा को है कहना भी मुश्किल है, क्योंकि वह है-पन है। गॉड इ.ज, ऐसा कहना गलत है, इ.जनेस, वह जो होना है, वही परमात्मा है। और वह सदा वर्तमान है, वह न कभी अतीत है, न कभी भविष्य। और हम, हम कभी वर्तमान में नहीं हैं। द्वार बंद हो गया।

मैंने सुनी है एक कहानी कि एक आदमी, अंधा आदमी, एक बहुत बड़े भवन में कैद कर दिया गया है। हजारों दरवाजे हैं उस भवन में, सब बंद हैं, सिर्फ एक दरवाजा खुला है। और वह अंधा आदमी एक-एक दरवाजे को टटोलते हुआ घूमता है-- दरवाजा बंद, दरवाजा बंद, दरवाजा बंद। घूमते, घूमते, घूमते उस दरवाजे के पास आता है जो दरवाजा खुला है। लेकिन उसे खुजान चली और उसने सिर खुजाया और वह दरवाजा चूक गया। वह फिर आगे के दरवाजे पर टटोल रहा है, वह फिर बंद है। फिर वहां से घूमता है, घूमता है, घूमता है। फिर वहां आता है, और फिर थक जाता है, सब दरवाजे बंद हैं, ऊब जाता है और फिर दो-चार दरवाजे नहीं टटोलता, फिर वह दरवाजा चूक जाता है। लेकिन क्या करेगा अंधा आदमी? फिर टटोलना शुरू करता है। ऐसी कहानी चलती है कि वह बार-बार उस दरवाजे को चूक जाता है जो खुला है, जहां से वह निकल सकता है वह चूक जाता है।
कहानी के सच होने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन हम वर्तमान के दरवाजे
को निरंतर चूक जाते हैं। पर वही खुला है सिर्फ। और बड़ा संकरा दरवाजा है, क्योंकि हमारे हाथ में क्षण का हजारवां हिस्सा ही होता है एक बार में, दो हिस्से भी नहीं होते। बस वह क्षण का एक हिस्सा हमारे हाथ में है, वही अस्तित्व है, बारीक लकीर एग्झिस्टेंस की वही है। और उसे हम चूक जाते हैं, क्योंकि मन या तो पीछे की सोचता रहता है या आगे की सोचता रहता है।
तो मैं आपको यह कह रहा हूं कि कैसे आप चूक गए। आपसे यह नहीं कह रहा हूं
कि कैसे आप पा लेंगे। मैं कह रहा हूं कि इस भांति आप चूक गए। उस अंधे आदमी से मैं यह कहूंगा कि तूने खुजाया, उसमें तू चूक गया। अब किसी दरवाजे पर खुजाना मत। तू ऊब गया, घबड़ा गया और दो-चार दरवाजे तूने बिना टटोले छोड़ दिए।
अब तू मत घबड़ाना, अब मत ऊबना, नहीं तो फिर चूकने का डर, संभावना है। वर्तमान में होना दरवाजे पर खड़े हो जाना है।
और ऐसा कभी नहीं हुआ कि जो आदमी वर्तमान में खड़ा हो गया है, उस आदमी को परमात्मा से क्षण भर के लिए भी वंचित रहना पड़ा हो, ऐसा कभी हुआ ही नहीं। चित्त को वर्तमान में ले आना ही ध्यान है, वही मेडिटेशन है, वही समाधि है। और चित्त को वर्तमान से यहां-वहां भटकाए रहना, वही चंचलता है, वही उपद्रव है। और ध्यान में रहे कि हम आखिर वर्तमान से चूक क्यों जाते हैं? लोभ चुका देता है, लालच चुका देता है। क्योंकि लोभ हमेशा भविष्य की बातें करता है। लोभ वर्तमान की बात करता ही नहीं। करेगा कैसे? जो भी पाना है वह अभी तो पाया नहीं जा सकता। जो भी पाना है वह कल ही पाया जा सकता है, आगे ही पाया जा सकता है, इसी वक्त पाने का तो कोई उपाय नहीं है। इसलिए लोभ हमेशा भविष्य की भाषा बोलता है।
लोभ चुका देता है और अहंकार चुका देता है। अहंकार सदा अतीत की भाषा बोलता है, पास्ट की--जो पाया, जो मिला, जो किया, जो बनाया, वह सब पास्ट में है। अहंकार सदा ही अतीत की भाषा बोलता है कि मैं फलां आदमी का बेटा हूं! क्यों? जो होगा उसका तो पता नहीं है, जो हो चुका है उसी का मैं दावा कर सकता हूं। मेरे पास इतने करोड़ रुपये हैं! होंगे उनका तो दावा नहीं कर सकते आप, जो हो चुका है। मेरी तिजोड़ी इतनी बड़ी! और मैं इतनी बड़ी कुर्सी पर रहा हूं! मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं। वह जो समबडी हूं, मैं कुछ हूं, वह हमेशा पास्ट से आता है। वह हमारे अतीत का संग्रह है, जिसको हमने जोड़ कर खड़ा कर लिया है। वह हमारा अहंकार है। अहंकार हमें पीछे ले जाता है, लोभ हमें आगे ले जाता है। और गौर से देखें तो लोभ और अहंकार एक ही चीज के दो हिस्से हैं। जो लोभ पूरा हो चुका है वह अहंकार बन गया, जो लोभ पूरा होगा वह अहंकार बनेगा। जो लोभ पूरा हो चुका वह अहंकार बन गया, जो पूरा होगा वह अहंकार बनेगा। जो अहंकार बन गया है वह लोभ है, जिससे आप गुजरे; और वह लोभ जो अभी आगे पकड़ रहा है, वह भविष्य में बनने वाला अहंकार है, जिससे आप गुजरेंगे। समस्त लोभ का संग्रह अहंकार है, वह अतीत में भटकाता है।
इसलिए बूढ़ा आदमी होगा तो वह अतीत में भटकता रहेगा, क्योंकि आगे तो मौत है, तो अब वहां लोभ की गुंजाइश कम है। तो वहां क्या लोभ करिएगा? तो बूढ़े आदमी का मन हमेशा अतीत में भटकता रहता है, वह बैठा है और सोच रहा है--जवानी जो थी, दिन जो गए, यादें जो हैं भीतर छिपी, वह उनका सोचता रहेगा। बूढ़ा आदमी अतीत में सोचता रहेगा, क्योंकि भविष्य में दिखाई पड़ती है मौत। वहां वह देखना भी नहीं चाहता। वह लौट कर पीछे देखता रहता है। बच्चे, जवान सदा

भविष्य में देखते रहेंगे; अभी उनका अहंकार बना नहीं, बनने की प्रतीक्षा कर रहा है। तो बच्चे और जवान सदा भविष्य-उन्मुख होंगे, फ्यूचर सेंटर्ड होंगे। लोभ अभी बनेगा। बूढ़े आदमी हमेशा पास्ट सेंटर्ड होंगे, बीत गया जो, वे उसी में खोए रहेंगे, उन्हीं स्मृतियों में। क्योंकि बूढ़े ने यात्रा कर ली अहंकार की, बच्चा अभी यात्रा करेगा।
तो बच्चे और जवान लोभ में जीते हैं, बूढ़ा आदमी अहंकार में जीता है। जितनी उम्र बीतती जाती है, अहंकार उतना मजबूत होता चला जाता है, सख्त होता चला जाता है। इसलिए वृद्ध आदमी क्रोधी हो जाता है, चिड़चिड़ा हो जाता है। क्योंकि आगे तो कुछ भी नहीं है अब, जो है पीछे है। और अहंकार की गांठ मजबूत हो गई है। अहंकार की गांठ चिड़चिड़ापन, क्रोध, सब पैदा करती है।
अगर इसे समझ लेंगे तो ख्याल में आ जाएगा कि अहंकार पीछे ले जाता है, लोभ आगे ले जाता है, वे एक ही चीज के दो हिस्से हैं। मरे हुए लोभ का नाम अहंकार है। मरे हुए लोभ का नाम अहंकार है और अजन्मे अहंकार का नाम लोभ है, वह जो अभी जन्म लेगा। और इस वजह से हम चूक रहे हैं वर्तमान से जहां कि सत्य है, जहां कि अस्तित्व है। लेकिन लोभ बड़ा कुशल है, जब सब तरह के लोभ से चुक जाएगा तो वह कहता हैः अब परमात्मा को भी पाना चाहिए। यह भी अहंकार ही है। लोभ बड़ा कुशल है, अहंकार की बड़ी अनंत आकांक्षाएं हैं, जब सब पा लेता है वह-- धन पा लेता, यश पा लेता, प्रेम पा लेता, आदर पा लेता--तब वह कहता है कि ठीक है, यह सब पा लिया, अब परमात्मा को भी पाना है, अमृत को भी पाना है, आनंद को भी पाना है, मोक्ष को भी पाना है। अब मोक्ष कैसे मिले? फिर वह लोभ की भाषा में मोक्ष की बातें सोचने लगता है।
चूक गया। उसे पता नहीं है कि यही भाषा तो इतने दिन चुकाती रही है, यही भाषा फिर आगे भी पकड़े रहेगा वह। हो सकता है वह ढंग बदल ले अपना, मधुशाला न जाकर मंदिर जाने लगे, फिल्में न देख कर भजन-कीर्तन करने लगे। यह सब कर लेगा वह। लेकिन उसके चित्त का जो तनाव था--लोभ का और अहंकार का--वह जारी है और उसी से वह चूक रहा है।
तो मैं कैसे कहूं आपसे कि आप क्या लोभ करें! मैं तो आपसे कहूंगा, आप लोभ को समझ लें, कि लोभ चुकाने वाला है; और आप अहंकार को समझ लें, कि अहंकार चुकाने वाला है। और आप यह समझ लें कि अतीत और भविष्य चुकाने वाले हैं, वर्तमान मिलाने वाला है, वही अस्तित्व है।
तो एक क्षण को भी अगर आप उस जगह पहुंच जाएं जहां आप कह सकेंः अब कोई अतीत नहीं मेरे पास और कोई भविष्य नहीं मेरे पास, बस मैं हूं। आप उसी क्षण परमात्मा में प्रविष्ट हो जाएंगे। उसी क्षण! एक क्षण में भी यह घटना घट जाएगी। कोई ऐसा सवाल नहीं है कि इसके लिए जन्म-जन्म लगें। हां, चूकने में जन्म-जन्म लग सकते हैं। दरवाजा बंद है तो वर्षों तक यह हो सकता है कि दरवाजा बंद हो और रोशनी भीतर न आए। लेकिन यह नहीं हो सकता कि दरवाजा खुले और रोशनी एक क्षण भी बाहर ठहरी रह जाए। रोशनी तो कभी ठहरना ही नहीं चाहती, क्योंकि वह तो निरंतर आने के लिए पुकार ही कर रही थी, द्वार को ठोंके ही चली जा रही थी। आप थे कि द्वार बंद किए थे।
तो यह तो हो सकता है कि एक आदमी जीवन भर दरवाजा बंद रखे और अंधेरे में जीए, लेकिन यह नहीं हो सकता कि एक क्षण को दरवाजा खोले और अंधेरे में जीए। यह असंभव है। और ऐसा भी नहीं हो सकता कि कोई आदमी कहे कि चूंकि मेरा दरवाजा इतने दिन तक बंद था, इसलिए एक क्षण में कैसे रोशनी भीतर आएगी? ऐसा भी नहीं होता।
इसलिए जो लोग कहते हैं कि इतने जन्मों का कर्म है, इतने जन्मों का पाप है। निपट नासमझी की बात कहते हैं। हजारों जन्मों का पाप भी एक क्षण को वर्तमान में खड़े हुए व्यक्ति को परमात्मा से नहीं रोक सकता। पाप ही क्या था? पाप सिर्फ इतना ही था कि आप वर्तमान में खड़े नहीं हुए थे। और पाप क्या था? आप भविष्य में या अतीत में भागते रहे थे।
एक कमरे में हजारों साल से अंधेरा घिरा हो, तो ऐसा नहीं हो सकता कि आप दीया जलाएं, तो अंधेरा कहे, मैं हजारों साल का हूं, इतनी जल्दी कैसे मिट सकता हूं? हजारों साल तक दीये जलाओ, तब मैं मिटूंगा। अंधेरा ऐसा नहीं कह सकता। अंधेरा एक रात का हो कि हजार साल का हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दीया जलता है और अंधेरा मिटता है। असल में अंधेरे की कोई पर्तें नहीं

होतीं कि एक दिन का अंधेरा, और दो दिन का अंधेरा तो दोहरी पर्त हो जाए, कि तीन दिन का अंधेरा तो तिहरी पर्त हो जाए। अंधेरे की कोई पर्त नहीं होती कि वह डेंस हो जाए, घना हो जाए। अंधेरा घना नहीं होता, अंधेरा बस अंधेरा है और एक दीये की लौ सब तोड़ देती है।
पाप की भी कोई पर्त नहीं होती, क्योंकि पाप भी अंधेरा है, अज्ञान है, अविद्या है, उसकी भी कोई पर्त नहीं होती। लेकिन सवाल सिर्फ इतना है, सवाल सिर्फ इतना है कि हम वहां खड़े हो जाएं जहां द्वार खुलता है।
हां, पाप की आदत होती है, पर्त नहीं होती। अंधेरे की भी आदत होती है।
यह हो सकता है कि एक आदमी वर्षों से अंधेरे में रहा हो, द्वार खोल दे, रोशनी आ जाए, लेकिन उसकी आंख बंद हो जाए, यह हो सकता है। यह हो सकता है कि सालों से अंधेरे में रहा आदमी द्वार खोल दे, रोशनी भीतर आ जाएगी फौरन, उसके द्वार खोलने में और रोशनी के आने में क्षण का भी फासला नहीं होगा--युगपत। ऐसा द्वार खुला, इधर रोशनी आई; इधर द्वार खुलता गया, रोशनी आती गई। द्वार का खुलना और रोशनी का आना एक ही क्रिया के दो हिस्से होंगे। लेकिन यह हो सकता है कि सैकड़ों वर्षों से अंधेरे में रहे आदमी की आंखें रोशनी देखने में असमर्थ हो जाएं। वह आंख बंद कर ले और फिर अंधेरे में हो जाए, यह हो सकता है। अंधेरे की आदत हो सकती है। पाप की भी आदत हो सकती है, पर्त नहीं होती। लेकिन आदत तोड़ी जा सकती है। आदत समझपूर्वक अपने आप ही टूट जाती है। आदत तोड़ना बहुत कठिन नहीं है। अगर अंधेरे की पर्तें होतीं तो तोड़ना बहुत कठिन था। रोशनी आ गई है, आंख बंद हो गई है, अब वह आदमी धीरे-धीरे आंख--एक बार, दो बार, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे रोशनी का अभ्यस्त हो सकता है, आंखें थोड़ी देर में खोल लेगा, रोशनी देख लेगा, बंद भी कर सकता है बीच-बीच में, खोल भी सकता है, धीरे-धीरे रोशनी का भय मिट जाएगा, वह रोशनी में जीने लगेगा। परमात्मा का अनुभव एक क्षण में हो जाता है। लेकिन परमात्मा को सहने में थोड़ा वक्त लग जाता है। सहने में! क्योंकि इतनी बड़ी शक्ति और इतना बड़ा प्रकाश हम पर उतरता है, थोड़ा वक्त लग जाता है। कई बार तो हम घबड़ा कर वापस तक लौट सकते हैं, डर भी सकते हैं। क्योंकि आनंद भी अगर एकदम से उतर आए, तो प्राणों को कंपा जाता है। परमात्मा की उपलब्धि तो एक क्षण में हो जाती है। हां, उपलब्धि के लिए राजी होने में थोड़ा वक्त लग सकता है, वह दूसरी बात है। उपलब्धि का द्वार हैः वर्तमान में खड़े होना। और इसलिए इस दिशा में थोड़ा सा काम शुरू करें। इस दिशा में थोड़ा सा काम शुरू करें, चौबीस घंटे में आधे घंटे, पंद्रह मिनट के लिए द्वार बंद करके अंधेरे में चुपचाप बैठ जाएं, कुछ भी न करें। कुछ भी न करें, चुपचाप बैठ जाएं।
बोलने में ऐसा लगता है कि बैठना भी करना ही हुआ। बोलने में वैसा ही लगता है कि मुट्ठी खोलना भी करना ही हुआ। बोलने में भर ऐसा लगता है। असल में बैठ जाने का मतलब है कि जो-जो आप करते थे वह न करें, जो-जो कर रहे थे चौबीस घंटे वह न करें। चुपचाप अंधेरे में बैठ जाएं आधा घंटे को और ऐसा छोड़ दें अपने को कि हम कुछ कर ही नहीं रहे हैं। जैसे एक सूखा पत्ता वृक्ष से गिरे, बस, हवाएं उसको पूरब ले जाएं तो पूरब चला जाए, पश्चिम ले जाएं तो पश्चिम चला जाए, न ले जाएं तो गिर जाए जमीन पर। लेकिन अपनी तरफ से कहीं न जाए।
इस बात को थोड़ा समझना। एक गिरता हुआ पत्ता है वृक्ष से, सूखा पत्ता गिर रहा है नीचे। उसकी अब अपनी कोई इच्छा नहीं, अब उसे कहीं पहुंचना नहीं, अब उसे कुछ होना नहीं। अब तो हवाओं की इच्छा पर उसने छोड़ दिया अपने को-- सरेंडर्ड--समर्पित है। हवाएं पूरब ले जाती हैं, पूरब चला; पश्चिम ले जाती हैं, पश्चिम चला; नहीं ले जाती हैं, गिर गया। उठा लेती हैं आकाश में, उठ गया; नहीं उठाती हैं, जमीन पर विश्राम करता है। बस सूखे पत्ते का भाव समझ लें और एक आधा घंटे के लिए द्वार बंद करके सूखे पत्ते हो जाएं। अपनी तरफ से कुछ न करें।
इसका मतलब यह नहीं कि सब होना बंद हो जाएगा। विचार चलेंगे, पर उनको हवाओं का धक्का समझें, इससे ज्यादा नहीं। हवाएं विचार इधर ले जाएं, जाने दें; हवाएं विचार इधर ले जाएं, जाने दें। आप न रोकें, न ले जाएं, आप कोई भी काम न करें। ले जाने का भी काम मत करें, रोकने का भी काम मत करें। आप बस साक्षी हो जाएं और देखते रहें कि सूखे पत्ते की तरह हैं, हवाएं जो कर रही

हैं, कर रही हैं। परमात्मा जो करवा रहा है, हो रहा है। परमात्मा कह रहा है बुरे विचार करो, तो बुरे विचार हो रहे हैं। परमात्मा कह रहा है अच्छे विचार करो, तो अच्छे विचार हो रहे हैं। न हमें अच्छे से मतलब है, न हमें बुरे से मतलब है। हम निर्णायक ही नहीं हैं, हम कोई डिसीजन नहीं लेते, हम कुछ भी नहीं करते, हम सिर्फ ना-कुछ होकर बैठ गए हैं।
बड़ा मुश्किल है। क्योंकि धार्मिक आदमी को निरंतर यह सिखाया जाता हैः बुरा विचार छोड़ो, अच्छा विचार करो; बुरे विचार को मत आने दो, अच्छे को लाओ। फिर आपने करना शुरू कर दिया। फिर आप उलझ गए चक्कर में। फिर आप वर्तमान में न हो सकेंगे। क्योंकि वर्तमान में बुरा विचार आया है और भविष्य में अच्छा विचार है जिसको लाना है; और वर्तमान को हटाना है और भविष्य को लाना है। आप उपद्रव में पड़ गए, फिर वर्तमान में होना असंभव है।
ध्यान के प्रयोग में आदमी बुरे-भले का भी विचार नहीं करता। वह विचार
ही नहीं करता। जो आता है, चुपचाप देखता रहता है। जैसे सड़क पर खड़ा हुआ एक आदमी देख रहा है--लोग गुजर रहे हैं, अच्छे भी, बुरे भी, रास्ता चल रहा है--वह चुपचाप खड़ा देख रहा है। आधा घंटे के लिए चुपचाप खड़े हो जाएं और देखते रहें; जो भी हो रहा है होने दें। रोकें जरा भी नहीं, क्योंकि रोकना आपका कृत्य बन जाता है और आप काम में लग गए। और करें भी न, राम-राम भी न करें, क्योंकि वह भी आपका कृत्य बन जाता है, आप फिर काम में लग गए।
आप कुछ करें ही मत अपनी तरफ से, आप अपनी तरफ से बिल्कुल शून्य हो जाएं।
और जो हो रहा है आंख के पर्दे पर, होने दें। जो भी गुजर रहा है, गुजरने दें; आ रहा है, आने दें; जा रहा है, जाने दें। न आप रोकें, न आप छेड़ें, न आप बीच में उतरें, आप किसी तरह का इनवॉल्वमेंट न लें, दूर खड़े देखते रहें।
कठिन होगा, क्योंकि हमारी आदत निरंतर हर चीज के साथ उलझ जाने की है। चुपचाप बैठ जाना कठिन होगा। चुपचाप का यह मतलब नहीं कि विचार नहीं होंगे, विचार तो होंगे। लेकिन आप चुपचाप हों, विचारों को चलने दें। जैसे एक फिल्म चल रही है पर्दे पर। मस्तिष्क का भी एक पर्दा है, एक प्रोजेक्टर है उसका, जो फिल्म चलाता रहता है। एक फिल्म चल रही है पर्दे पर, बस इतना समझें कि विचार चल रहे हैं, स्मृतियां आ रही हैं, भविष्य के ख्याल आ रहे हैं। आने दो, चुपचाप बैठे रहो, देखते रहो।
आज कठिन होगा, कल कठिन होगा, परसों कठिन नहीं होगा। बस हिम्मत इतनी रखनी है कि कूद मत जाना, कि अरे यह बुरा विचार आ गया, इसे अलग करो। बुरे-भले से कुछ लेना-देना नहीं है। साक्षी को न कुछ बुरा है, न कुछ भला है। कांटे भी उतना ही अर्थ रखते हैं, फूल जितना अर्थ रखते हैं। न कांटा बुरा है, न फूल अच्छा है। हम हमारी अपनी समझ के हिसाब से अच्छा-बुरा कर लेते हैं। सब चीजें हैं, और आप चुपचाप बैठे रहें।
कुछ ही दिनों में, अगर चुपचाप बैठे हैं, तो एक अदभुत अनुभव शुरू होगा।
और वह अनुभव यह होगा कि कभी-कभी ऐसा होगा कि गैप आ जाएगा, इंटरवल आ जाएगा, अंतराल आ जाएगा। कभी-कभी ऐसा होगा कि विचार थोड़ी देर के लिए नहीं होंगे, एकदम लुप्त हो जाएंगे। एक विचार आया और फिर दूसरा नहीं आया और बीच में खाली जगह छूट जाएगी।
उसी खाली जगह से आपको पहली झलकें मिलनी शुरू होंगी। और उस खाली जगह में आप भी नहीं होंगे, इतनी खाली जगह होगी कि बस खालीपन होगा, जस्ट एंप्टीनेस। वही द्वार है, वहीं से पहली झलकें आपको मिलनी शुरू होंगी। और निरंतर इस प्रक्रिया में लगे रहे तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे विचार कम होने लगेंगे, खाली जगह ज्यादा होने लगेंगी।
ऐसा जैसे रास्ते पर एक आदमी निकला और फिर घंटे भर तक दूसरा आदमी नहीं निकला और रास्ता खाली रह गया। एक विचार आया पर्दे पर, फिर दूसरा नहीं आया और बहुत देर के लिए पर्दा खाली सफेद रह गया। उस सफेदी में से, उस खालीपन में से, उस एंप्टीनेस में से आपके पहले संपर्क परमात्मा से शुरू होंगे, क्योंकि उस क्षण में आप वर्तमान में होंगे। उस क्षण में न आप अतीत में हो सकते, न आप भविष्य में हो सकते। क्योंकि विचार अतीत में ले जा सकता है, विचार भविष्य में ले जा सकता है। जहां विचार नहीं है वहां आप कहीं भी नहीं जा सकते, आप वही होंगे जहां हैं। विचाररहित हुए कि आप वर्तमान में हुए। वर्तमान में होने का अर्थ हैः विचाररहित हो जाना।

लेकिन विचाररहित होने की कोशिश मत करना, नहीं तो कभी विचाररहित नहीं
हो सकते। बस चुपचाप देखना विचार को, वह अपने से जाता है। जितना-जितना हमारा देखना बढ़ता है उतना-उतना विचार कम होता है। प्रपोर्सनेटली! जितना हम जागते हैं भीतर उतना विचार खतम होता है। जिस दिन हम पूरे जाग जाते हैं उस दिन विचार नहीं रह जाता। और जहां विचार नहीं रहा और हम पूरे जागे हुए रहे, टोटली अवेयर--विचार गए, हम जागे हैं, अब हम कहां होंगे? अब हम वहीं होंगे जहां हम हैं, एक इंच इधर-उधर नहीं हो सकते। तब हम खड़े हो गए उस द्वार पर, जहां से मिलन हो जाता है।
और इसलिए इसे लोभ की भाषा में मत समझना। आनंद मिलेगा, लेकिन आनंद पाने
की भाषा में मत समझना। आनंद आएगा, लेकिन आनंद को लक्ष्य मत बनाना। अमृतत्व मिलेगा, लेकिन अमृतत्व की चेष्टा मत करना। भगवत्-प्राप्ति होगी, लेकिन भगवत्-प्राप्ति की नहीं जा सकती। इस छोटे से बारीक भेद को समझ लेना। भगवत्-प्राप्ति होगी, लेकिन भगवत्-प्राप्ति की नहीं जा सकती। करने वाला अहंकार भी वहां नहीं चल सकता है। और इसलिए मैंने कहा कि लोभ और प्रलोभन, लालच, इस दिशा में इनकी इंच भर गति नहीं है।

यत्न तो, महाराज, करना पड़ता है न?

नहीं, वही मैं समझा रहा हूं।

यत्न करना ही नहीं।

नहीं, जरा भी नहीं।

ऐसे ही सरेंडर हो जाना।

बिल्कुल सरेंडर। क्योंकि यत्न किया तो सरेंडर नहीं हो सकता। उसका मतलब है कि हम कुछ करेंगे। सरेंडर का मतलब है कि हम क्या कर सकते हैं?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कुछ भी समझिए।

कि मैं आपके सुपुर्द करता हूं।

आपके किसके? आपका तो आपको पता ही नहीं है अभी। और सुपुर्द करता हूं, तब फिर एक्ट शुरू हो गया। इसे थोड़ा समझने की बात है न! इतने बारीक फासले हैं। जब हम कहते हैं कि सुपुर्द करता हूं, तो हो सकता है कल हम कहें कि वापस लेता हूं। वह क्या कर लेगा?

तो जीरो बन जाएं?

हां, वही मैं कह रहा हूं। सुपुर्द करता हूं, इसमें भी हमारा एक्ट जारी है। हम कुछ कर रहे हैं। करने के मालिक हम ही हैं। तो मेरा कहना है, यू कैन नॉट सरेंडर, यू कैन ओनली बी सरेंडर्ड।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, समझे न! लेकिन वह जो, जो बारीक फासला अगर न दिखाई पड़े, तो निरंतर भूल होती चली जाती है।
हम समर्पण कर नहीं सकते। क्योंकि हम करेंगे तो समर्पण हमारा कृत्य हुआ। और जो हमारा कृत्य है उसे हम वापस ले सकते हैं। कल हम कह सकते हैं कि बस ठीक है, अब हम वापस लेते हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

इसकी कठिनाई जो है न, कठिनाई जो है, कृष्ण क्या कह रहे हैं वही हम समझ रहे हैं, यह बहुत मुश्किल है। हम करने की भाषा में ही समझेंगे।
असल में समर्पण का अर्थ ही है, समर्पण का अर्थ ही है कि तू कुछ भी न कर।
और जब आप कुछ भी नहीं करते, समर्पण हो जाता है। क्योंकि फिर होगा क्या? समर्पण किया नहीं जा सकता। आप कुछ भी न करें, समर्पण हो जाता है। कुछ भी न करने का अंतिम फल समर्पण है। और समर्पण भी किया तो चूक गए आप। इसको अगर हम ठीक से समझें, तो समर्पण मैं कर रहा हूं, मैं करूंगा...

यह तो अहंकार हो गया!

तो गड़बड़ हो गई सब। फिर समर्पण कैसे होगा? नहीं, समझना यह है कि मैं समर्पित हूं, मैं समर्पित ही रहा हूं। उपाय क्या है? श्वास आपने ली है आज तक? लेकिन हम रोज यही कहते हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। श्वास सिर्फ आती- जाती है, आपने कभी भी ली नहीं आज तक जिंदगी में, किसी आदमी ने श्वास ली ही नहीं कभी, सिर्फ आती-जाती है। क्योंकि अगर हम लेते होते, मौत दरवाजे पर आ जाती, हम कहते, थोड़ा ठहरो, हम अभी श्वास जारी रखते हैं। लेकिन हमें पता है कि मौत द्वार पर आई तो जो श्वास बाहर गई तो बाहर, फिर हम उसे भीतर भी न ला सकेंगे।
लेकिन जिंदगी भर कहते हम यही हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। बड़ी भूल की बात कहते हैं। सवाल यह है समझने का कि श्वास मैंने कभी ली है? सिर्फ आई-गई है। मैं कहां हूं? न मैं जन्मा हूं, न मैं मरूंगा। जन्म भी हुआ है, मृत्यु भी होगी, श्वास भी चली है, विचार भी आए हैं, जीवन भी घटा है, जस्ट हैपंड, हमने कुछ किया क्या है? यह बोध हमारे ख्याल में आ जाए कि मेरे किए बिना सब हुआ है। यह समझ में आ जाए, तो अब मैं क्या करूं? मैं कुछ भी नहीं करता, जो हो रहा है, हो रहा है।
ऐसी स्थिति में समर्पण हो जाता है, वह आपको करना नहीं पड़ता, वह घट जाता है। और जब वह घटता है तब आप वापस नहीं लौटा सकते। क्योंकि आपने किया होता तो आप वापस लौटा सकते थे; आपने किया ही नहीं, घट गया है, आप उसे वापस नहीं लौटा सकते।
वहां अमेरिका में एक नया, चित्रकारों का एक मूवमेंट है, उसको वे कहते हैं हैपनिंग। चित्रों की प्रदर्शनी करते हैं, अगर सौ चित्र प्रदर्शनी में लगाए गए हैं, तो दर्शक देखने आएंगे, तो हर चित्र के बगल में एक खाली कैनवस भी लगाते हैं, और खाली कैनवस के नीचे रंग और ब्रश भी रखे रहते हैं। फिर दर्शक देख रहे हैं, देख रहे हैं, देख रहे हैं... और किसी दर्शक को एकदम लगा और उसने ब्रश उठाया और उस खाली कैनवस पर कुछ पेंट किया तो पेंट किया। फर्क यही है कि अपनी तरफ से पेंट मत करना, क्योंकि अपनी तरफ से करोगे तो वह बेकार हो गया। होने देना, उस सिचुएशन में अगर ऐसा पकड़ जाए और होने लगे पेंट तो होने देना, रोकना भी मत। तो उसको वे हैपनिंग पेंटिंग कहते हैं। वह किसी ने बनाई नहीं है, उस पर किसी का नाम नहीं होता फिर, वह घटी, वह घट गई। ईसाइयों में एक साधकों का संप्रदाय है क्वेकर। क्वेकरों की जो बैठक होती है, उस बैठक में कोई बोलने के लिए निमंत्रित नहीं होता, कोई बोलने वाला नहीं होता, बैठक भर होती है, इकट्ठे होते हैं, बैठ जाते हैं। नियम यह है कि अगर किसी को कभी बोलने जैसा हो जाए, तो वह खड़ा हो जाए और बोलने लगे, बाकी लोग सुनेंगे बिना कोई धन्यवाद दिए, फिर विदा हो जाएंगे। कई बार ऐसा होता है कि महीनों बीत जाते हैं, कोई नहीं बोलता। क्योंकि नियम का ख्याल यह है, अपनी तरफ से बोलना ही मत। अगर ऐसा जरा भी लगे कि मैं बोल रहा हूं, फिर बोलना ही मत। क्योंकि वह पाप हो गया। हां, ऐसा लगे कि परमात्मा बोल रहा है, मैं हूं नहीं, ऐसा किसी दिन लगे तो खड़े हो जाना, बोल देना, हम सुन लेंगे और विदा हो जाएंगे। तो कई दफा महीनों बीत जाते हैं, उनकी बैठक में बोलना नहीं होता। लोग आकर बैठते हैं--चुपचाप बैठे रहते हैं, बैठे रहते हैं, बैठे रहते हैं--फिर विदा हो जाते हैं। लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई खड़ा हो जाता है और बोलता है। वे जो रिकार्ड्स हैं उनके बोलने के वे बड़े अदभुत हैं।

क्योंकि तब वह आदमी की भाषा ही नहीं होती, वह आदमी की बात ही नहीं है, वह हैपनिंग हो रही है। उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है।
तो बैठें और शून्य हो जाएं, और जो होता है होने दें। बाहर सड़क पर कुत्ते की आवाज होगी, हॉर्न बजेगा, बच्चे चिल्लाएंगे, सड़क चलेगी, आवाजें आएंगी, आने दें! विचार चलेंगे, आने दें। मन में भाव उठेंगे, उठने दें। जो भी हो रहा है, होने दें। आप कर्ता न रह जाएं। आप बस साक्षी रह जाएं, देखते रहें, यह हो रहा है, यह हो रहा है, यह हो रहा है। जो हो रहा है, देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें।
इसी देखने में वह क्षण आ जाता है जब अचानक आप पाते हैं कि कुछ भी नहीं
हो रहा, सब ठहरा हुआ है। और तब वह आपका लाया हुआ क्षण नहीं है। और तब आप एकदम समर्पित हो गए हैं और आप उस मंदिर पर पहुंच गए, जिसको खोज कर आप कभी भी नहीं पहुंच सकते थे। और वह मंदिर आ गया सामने और द्वार खुल गया है। और जिस परमात्मा के लिए लाखों बार सोचा था कि मिलना है, मिलना है, मिलना है, और नहीं मिला था, उसे बिना सोचे वह सामने खड़ा है, वह मिल गया है। और जिस आनंद के लिए लाखों उपाय किए थे और कभी उसकी एक बूंद न गिरी थी, आज उसकी वर्षा हो रही है और बंद नहीं होती। और जिस संगीत के लिए प्राण प्यासे थे वह अब चारों तरफ बज रहा है और बंद नहीं होता।
यह घटना घटती है, यह आपके घटाए नहीं घट सकती है। इसलिए आप अपने को हटा लेना और घटना को घटने देना। अपने को हटा लेना, अपने को बीच में खड़ा मत करना। आप हट ही जाना और घटना को घटने देना। बस इसको ही मैं भक्त का भाव कहता हूं या साधक की चेष्टा कहता हूं। कहना नहीं चाहिए, क्योंकि चेष्टा नहीं है यह, लेकिन भाषा में कोई और उपाय नहीं है।

जीवन रहस्य
दूसरा प्रवचन

मौन का द्वार

परमात्मा के संबंध में जितने असत्य कहे गए और गढ़े गए हैं, उतने और किसी चीज के संबंध में नहीं। परमात्मा के संबंध में जितना झूठ प्रचलित है, उतना किसी और चीज के संबंध में नहीं। परमात्मा के संबंध में जितने असत्य, जितने झूठ, जितनी कल्पनाएं प्रचलित हैं, उतनी किसी और चीज के संबंध में नहीं। और कुछ बात ऐसी है कि शायद परमात्मा के संबंध में सत्य कहा ही नहीं जा सकता है। जो भी कहा जाता है, वह कहने के कारण ही असत्य हो जाता है।
कुछ है, जिसे कहना संभव नहीं है। कुछ है, जिसे जाना जा सकता है, लेकिन कहा नहीं जा सकता। और आश्चर्य की बात है कि जिस परमात्मा के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, उसके संबंध में इतने शास्त्र लिखे गए हैं जिनका हिसाब लगाना मुश्किल है!
शब्द असमर्थ हैं। हम जो कह सकते हैं, वह संसार के आगे नहीं जाता है। शब्द में, भाषा में संसार से आगे की बात नहीं कही जा सकती है। और इसलिए ईश्वर के संबंध में भी जो हम कहते हैं--चाहे उसे पिता कहें, चाहे मित्र कहें, चाहे प्रेमी कहें--कोई भी बात सच नहीं है। क्योंकि प्रेमी से हम जो समझते हैं, मित्र से हम जो समझते हैं, पिता से हम जो समझते हैं, परमात्मा उससे बहुत भिन्न और बहुत ज्यादा है।
लेकिन हमारे पास और शब्द भी नहीं हैं। जीवन के कामचलाऊ शब्द हमारे पास हैं, उन्हीं को हम उसके संबंध में भी प्रयोग कर लेते हैं। और इसलिए जो भी सोचा-विचारा, कहा, लिखा-पढ़ा जाता है, वह हमें उसकी जरा सी भी झलक नहीं दिखा पाता।
मैंने सुना है, एक फकीर एक रास्ते से गुजरता था। सर्द रात थी और उसके हाथ-पैर ठंडे हो गए। उसके पास वस्त्र न थे। वह एक वृक्ष के नीचे रुका। सुबह जब उसकी नींद खुली, तब हाथ-पैर हिलाना भी मुश्किल था। उसने किसी किताब में पढ़ा था कि जब हाथ-पैर ठंडे हो जाते हैं तो आदमी मर जाता है। किताबें पढ़ कर जो लोग चलते हैं वे ऐसी ही भूल में पड़ जाते हैं। उसने सोचा कि शायद मैं मर गया हूं। उसे पता था कि मरे हुए लोग कैसे हो जाते हैं। तो वह आंख बंद करके लेट रहा। कुछ लोग रास्ते से गुजरते थे, उन्होंने उस आदमी को मरा हुआ समझ कर उसकी अरथी बनाई और उसे वे मरघट की तरफ ले चले। वे एक चौरस्ते पर पहुंचे जहां चार रास्ते फूटते थे और वे चिंता में पड़ गए कि मरघट को कौन सा रास्ता जाता है? वे अजनबी लोग थे, उस गांव के रास्तों से परिचित न थे। वे चारों विचार करने लगे कि कोई मिल जाए गांव का रहने वाला तो हम पूछ लें कि मरघट को रास्ता कौन सा जाता है? फकीर तो जिंदा था। उसने सोचा कि बेचारे बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। अब पता नहीं गांव वाला कोई आएगा कि नहीं आएगा। तो वह अरथी से बोला कि जब मैं जिंदा हुआ करता था, तब लोग बाएं रास्ते से मरघट जाते थे। हालांकि मैं मर गया हूं और अब बताने में असमर्थ हूं, लेकिन इतनी बात तो कह ही सकता हूं।
उन चारों ने घबड़ा कर अरथी छोड़ दी! वह फकीर नीचे गिर पड़ा! उन्होंने कहा, तुम कैसे पागल हो? तुम बोलते हो? कहीं मरे हुए आदमी बोलते हैं?
उस फकीर ने कहा, मैंने ऐसे जिंदा आदमी देखे हैं जो नहीं बोलते हैं, तो इससे उलटा भी हो सकता है कि कुछ मुर्दे ऐसे हों जो बोलते हों। अगर कोई जिंदा आदमी चाहे तो नहीं बोले, तो कोई मुर्दा आदमी चाहे तो बोल नहीं सकता है? इसमें इतनी आश्चर्य की क्या बात है? वह फकीर कहने लगा।
मैंने जब यह कहानी सुनी तो मेरे मन में एक ख्याल आया और वह यह कि असलियत और भी उलटी है। यह तो हो भी सकता है कि मुर्दा आदमी बोलता हुआ मिल जाए; यह जरा मुश्किल ही है कि जिंदा आदमी और चुप हो जाए। जिंदा आदमी न बोले, यह जरा मुश्किल ही है। यही ज्यादा आसान मालूम पड़ता है कि मरा हुआ आदमी बोल जाए।
हम सब जिंदा हैं, लेकिन हमने जिंदगी में एक भी क्षण न जाना होगा जब किसी न किसी रूप में हम नहीं बोल रहे हैं--या बाहर, या भीतर। हमने न बोलने

का, साइलेंस का, मौन का एक भी क्षण नहीं जाना है। हमने बहुत जन्म देखे होंगे, लेकिन वे सब जन्म शब्दों के जन्म हैं। और हमने इस जिंदगी में भी बहुत दिन व्यतीत किए हैं, लेकिन वे सब शब्द की यात्रा के दिन हैं। जब हम बोलते हैं; नहीं बोलते तो सोचते हैं; नहीं सोचते तो सपना देखते हैं--लेकिन शब्द, बोलना किसी न किसी तल पर जारी रहता है। और जिस आदमी के शब्द अभी जारी हैं, वह परमात्मा को नहीं पहचान पाएगा; क्योंकि उसकी पहचान निःशब्द में, मौन में, साइलेंस में ही संभव है।
इसलिए परमात्मा के संबंध में सब कहा गया झूठ हो जाता है। क्योंकि उसे
जब जाना जाता है तब शब्द नहीं होते, विचार नहीं होते; थॉट नहीं होता, थिंकिंग नहीं होती; सब समाप्त हो जाता है, तब उसका अनुभव होता है। और जब हम उसे कहने जाते हैं, बताने जाते हैं, तब शब्द वापस उपयोग करने पड़ते हैं। जिसे निःशब्द में जाना है, उसे शब्द में नहीं कहा जा सकता। जिसे मौन में जाना है, उसे वाणी कैसे प्रकट करेगी? और जिसे चुप्पी में, गहन चुप्पी में अनुभव किया है, उसे बोल कर कैसे बताया जा सकता है?
इसीलिए नास्तिक जीत जाते हैं, अगर आस्तिक से विवाद करें। आस्तिक की हार निश्चित है। आस्तिक नास्तिक से कभी भी जीत नहीं सकता। न जीतने का कारण है। नास्तिक इनकार करता है, इनकार शब्दों में हो सकता है। आस्तिक स्वीकार करता है, स्वीकृति को शब्दों में बताना कठिन है। इसलिए आस्तिक निरंतर मुश्किल में रहा है।
लेकिन आप अपने को आस्तिक मत समझ लेना, क्योंकि आस्तिक पृथ्वी पर मुश्किल से कभी कोई पैदा होता है। पृथ्वी पर दो तरह के नास्तिक हैंः एक वे जो जानते हैं कि नास्तिक हैं और एक वे जो जानते नहीं कि नास्तिक हैं और अपने को आस्तिक समझते हैं। पृथ्वी पर आस्तिक बहुत मुश्किल से पैदा होता है। क्योंकि आस्तिक तभी पैदा होता है जब वह परमात्मा को जान ले; उसके पहले कोई आस्तिक नहीं हो सकता। क्योंकि जिसे हमने जाना नहीं, उस पर आस्था कैसे आ सकती है? जिसे हम जानें, उसी पर आस्था आ सकती है।
लेकिन सारी दुनिया में बड़ी अजीब बातें सिखाई जाती हैं। आदमी को पता
ही नहीं परमात्मा का और हम उसे आस्था सिखा देते हैं, बिलीफ सिखा देते हैं, उसे कहते हैं--मानो! एक बच्चा पैदा हुआ, उसे हम कहते हैं कि मानो परमात्मा है!
ध्यान रहे, जिस चीज को भी कोई मान लेगा, वह फिर उसे जान नहीं सकता। मानना बहुत खतरनाक है, बिलीफ बहुत खतरनाक है।
मैं एक छोटे से अनाथालय में गया था। कोई सौ बच्चे थे। और अनाथालय के संयोजकों ने मुझे कहा, हमारे बच्चों को हम धर्म की भी शिक्षा देते हैं। मैं थोड़ा चकित हुआ! मैंने कहा, धर्म की शिक्षा? धर्म की साधना तो हो सकती है, शिक्षा नहीं होती। धर्म की शिक्षा हो ही नहीं सकती, सिर्फ साधना ही हो सकती है। शिक्षा उन चीजों की हो सकती है जो हमसे बाहर हैं। कोई दूसरा उन्हें हमें बता सकता है। लेकिन जो हमारे भीतर है, हमारे सिवाय और कोई उसे नहीं बता सकता। उसकी तरफ कोई इशारा ही नहीं हो सकता। और जो भी इशारा होगा, वह झूठ हो जाएगा। फिर भी, मैंने कहा, आप कहते हैं तो मैं चलूंगा।
मैं गया। उन्होंने कहा, आपको पता नहीं, हम सच में ही शिक्षा देते हैं।
सौ बच्चे थे। अनाथ बच्चे थे। अब अनाथ बच्चों को तो जो भी सिखाया जाए, सीखना ही पड़ेगा। उन संयोजक ने उन बच्चों से पूछा, ईश्वर है?
उन सब बच्चों ने हाथ ऊपर उठा दिए। जैसे कोई गणित का सवाल हो या जैसे कोई भूगोल या इतिहास की बात हो। उन बच्चों ने हाथ ऊपर उठा दिए कि हां, ईश्वर है। सौ बच्चों ने!
मैं बहुत चकित हुआ। मैंने कहा, आदमी मरते तक पता नहीं लगा पाता ईश्वर
के होने का, इन बच्चों को अभी से पता लग गया, यह बिल्कुल चमत्कार है।
उन संयोजक ने पूछा कि आत्मा है?
उन बच्चों ने फिर हाथ उठा दिए।
उन संयोजक ने पूछा, आत्मा कहां है?
उन बच्चों ने हृदय पर हाथ रख दिए कि यहां।
मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछा कि तुम बताओगे हृदय कहां है?

उसने कहा, यह तो हमें सिखाया नहीं गया। जो सिखाया गया है वह हम बता रहे हैं। यह हमारी किताब में ही नहीं लिखा हुआ है। आप पूछते हैं, हृदय कहां है? उसमें लिखा है, आत्मा यहां है, वह हम बता रहे हैं।
ये बच्चे कल बड़े हो जाएंगे, बूढ़े हो जाएंगे। सभी बच्चे एक दिन बूढ़े होते हैं। जो बूढ़े हो गए हैं, वे भी एक दिन बच्चे ही थे। ये बच्चे कल बड़े होंगे, बूढ़े होंगे और भूल जाएंगे कि वह हाथ, जो इन्होंने ईश्वर के लिए उठाया था, सिखाया हुआ हाथ था। सिखाए हुए हाथ झूठे हाथ होते हैं। बुढ़ापे में भी इनसे कोई पूछेगा, ईश्वर है? वह बचपन से सीखी गई बात उठ कर खड़ी हो जाएगी। ये कहेंगे, हां, ईश्वर है। लेकिन वह बात सरासर झूठी होगी, क्योंकि सिखाई गई है, जानी नहीं गई है।
रूस में बच्चों को वे दूसरी बात सिखाते हैं कि ईश्वर नहीं है। बच्चे वही सीख लेते हैं। बच्चों को सिखाते हैं कि ईश्वर नहीं है, तो बीस करोड़ का मुल्क कहता है कि ईश्वर नहीं है।
मेरे एक मित्र रूस गए थे। एक स्कूल में देखने गए थे। एक स्कूल के छोटे- छोटे बच्चों से उन्होंने पूछा, ईश्वर है? तो एक छोटे से बच्चे ने कहा... और सारे बच्चे हंसने लगे कि आप भी कैसी बातें पूछते हैं? एब्सर्ड! बेमानी! एक छोटे से बच्चे ने कहा, गॉड वा.ज, ईश्वर हुआ करता था, उन्नीस सौ सत्रह के पहले, अब कहां! जब दुनिया में अज्ञान था, तब ईश्वर था, अब कहां! रूस में अब कोई ईश्वर नहीं है।
हमको हंसी आएगी, लेकिन हम भी उन बच्चों से भिन्न नहीं हैं। भिन्नता इस बात में है सिर्फ कि उन्हें सिखाया गया है कि ईश्वर नहीं है, हमें सिखाया गया है कि ईश्वर है। लेकिन दोनों थोथी बातें हैं, क्योंकि दोनों सिखाई गई हैं। न वे जानते हैं कि ईश्वर नहीं है, न हम जानते हैं कि ईश्वर है। हमारी हालत बिल्कुल एक जैसी है। उन्हें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें लोग आस्तिक कहेंगे।
फिर आस्तिकों में भी हजार तरह के भेद हैं। हिंदू कुछ और सीख लेता है, मुसलमान कुछ और सीख लेता है, जैन कुछ और सीख लेता है, बौद्ध कुछ और सीख लेता है। जो भी हमें सिखा दिया जाता है, हम वही सीख लेते हैं।
तो फिर और कोई ज्ञान है? या कि जो सिखा दिया गया वही ज्ञान है? अगर सिखाया हुआ ज्ञान है, तब हो सकता है एक दिन दुनिया में ईश्वर न रह जाए, क्योंकि सारी दुनिया को सिखाया जा सकता है कि ईश्वर नहीं है। सिखाया हुआ ज्ञान नहीं है। सिखाया हुआ तोते की तरह रटन है। और इस तोते की तरह रटन करने वाले लोगों को हम आस्तिक समझ लेते हैं, इससे बड़ी भ्रांति हो जाती है। आस्तिक मुश्किल से ही पैदा होता है। असल में आस्तिक तब पैदा होता है, जब हम जान पाते हैं कि वह क्या है, सत्य क्या है, जो है वह क्या है, दैट व्हिच इ.ज, वह क्या है जो है--जब हम उसे जानते हैं।
लेकिन ध्यान रहे, जो पहले से विश्वास कर लेता है, वह कभी जान नहीं सकेगा। अगर आप जाने बिना ही नास्तिक बन गए हैं, आस्तिक बन गए हैं, हिंदू बन गए हैं, मुसलमान बन गए हैं, तो आप भटक गए, फिर आप कभी भी नहीं जान सकेंगे। क्योंकि आपने पहले ही उस बात को स्वीकार कर लिया है, जिसे आप नहीं जानते हैं। और जो व्यक्ति इतनी भी हिम्मत नहीं जुटा पाता कि कह सके जिस बात को नहीं जानता है, कह सके कि नहीं जानता हूं, वह व्यक्ति कैसे सत्य की खोज कर सकता है? सत्य की खोज की, परमात्मा की खोज की पहली शर्त यह है कि हम किन्हीं विश्वासों में न पड़ें, हम किसी पक्ष को स्वीकार न करें। हम खोजने निकलें।
मैंने सुना है, एक गांव में एक फकीर मेहमान हुआ। और उस गांव के लोग आए
और उस गांव के लोगों ने कहा कि हमारी मस्जिद में चलें और हमें समझाएं ईश्वर के संबंध में।
उस फकीर ने कहा, मुझे क्षमा कर दो! क्योंकि कितने लोग समझा चुके, कोई समझता ही नहीं है। अब मुझे परेशान मत करो।
लेकिन जितना उसने मना किया, जैसी कि लोगों की आदत होती है, जिस चीज के लिए मना करो, वे और आग्रहशील हो जाते हैं। जिस चीज के लिए मना करो, उनका मन और जोर से पकड़ने लगता है कि चलें, देखें, खोजें। इस दरवाजे पर लिख दिया जाएः यहां झांकना मना है। और फिर इस गांव में शायद ही ऐसा आदमी मिले जो

बिना झांके निकल जाए। लोगों के लिए निषेध निमंत्रण बन जाता है। इनकार करो, और उन्हें आमंत्रण हो जाता है।
वे फकीर के पीछे पड़ गए। फकीर टालने लगा है, वे और पीछे पड़ गए हैं। नहीं माने हैं तो फकीर ने कहा, चलो, मैं चलता हूं। वह उनके गांव की मस्जिद में गया है। वे सब गांव के लोग इकट्ठे हो गए हैं। वह फकीर मंच पर बैठा है। और उसने कहा, इसके पहले कि मैं कुछ बोलूं, मैं तुमसे एक बात पूछ लूंः ईश्वर है, तुम मानते हो? जानते हो ईश्वर है?
उन सारे लोगों ने हाथ हिला दिए। उन्होंने कहा कि हां, ईश्वर है। इसमें
शक की बात ही नहीं, संदेह का सवाल ही नहीं, हम सब मानते हैं ईश्वर है।
उस फकीर ने कहा, फिर मेरे बोलने की कोई जरूरत न रही। क्योंकि ईश्वर आखिरी ज्ञान है, जिसने उसे भी जान लिया, अब उससे बात करनी नासमझी है। मैं जाता हूं। वह नीचे उतर गया। उसने कहा कि जब तुम्हें ईश्वर तक का पता चल चुका है तो अब और मैं तुम्हें क्या बता सकूंगा? बात ही खतम हो गई, यात्रा का ही अंत आ गया, यह तो अंतिम अनुभव भी तुम्हें हो गया। और अब तुम्हारे सामने बातें करूं तो मैं अज्ञानी हूं। मुझे क्षमा कर दो!
मस्जिद के लोग बड़ी मुसीबत में पड़ गए, क्योंकि जानता तो कोई भी नहीं था
कि ईश्वर है। झूठे ही हाथ उठा दिए थे। उठाते वक्त ख्याल भी न था कि हम झूठे हाथ उठा रहे हैं।
अगर बहुत दिन तक झूठे हाथ उठाते रहें तो आदमी खुद ही भूल जाता है कि ये उठाए गए हाथ झूठे हैं। आप भी जब मंदिर की मूर्ति के सामने सिर झुकाते हैं तो कभी ख्याल किया है कि यह सिर सच में झुक रहा है या झूठा झुकाया जा रहा है? यह सिर्फ आदत है, सिखाई गई बात है? या आपने भी कभी जाना है कि इस मूर्ति में कुछ है?
और बड़े आश्चर्य की बात है कि जिसे मूर्ति में कुछ दिख जाएगा, उसे सारी दुनिया में कुछ नहीं दिखेगा फिर? वह एक मंदिर को खोजता हुआ सिर झुकाने आएगा? फिर तो जहां भी दिखाई पड़ जाएगा--सब वही है--वहीं सिर झुका लेगा। अधार्मिकों के सिवाय मंदिरों में शायद ही कोई कभी जाता है। धार्मिक तो कभी जाता नहीं देखा गया। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि जो नहीं जाते हैं वे धार्मिक हैं। न जाने से कोई धार्मिक नहीं होता, लेकिन धार्मिक शायद ही मंदिर जाता देखा गया है।
मस्जिद के लोग परेशानी में पड़ गए। लेकिन उन्होंने सोच-विचार किया कि
इस फकीर से सुनना तो जरूर था, बड़ी गलती हो गई। हमारा उत्तर ही ऐसा था कि आगे बोलने की जरूरत न रही। अब हम दूसरा उत्तर देंगे। फिर एक बार फकीर को किसी तरह बुला कर ले आओ।
दूसरे शुक्रवार को फिर उन्होंने प्रार्थना की। उस फकीर ने कहा कि मैं
तो गया था पिछली बार, लेकिन तुम तो सब जानते ही हो, अब आगे और क्या बताना है? जो जानता ही है, उसे जानने को शेष क्या रह जाता है? अब तुम जानते ही हो तो बात ही क्या करनी है?
पर उन लोगों ने कहा कि हम वे लोग नहीं, हम दूसरे लोग हैं।
फकीर उन्हें भलीभांति जान रहा था कि वे वही हैं। उसने कहा, ठीक है, धार्मिक आदमी का कभी कोई भरोसा नहीं, जरा में बदल जाए।
तथाकथित धार्मिक, वे जो सो कॉल्ड रिलीजस हैं, उनके बदलने का कोई भरोसा
भी नहीं। अभी कुरान पढ़ रहे हैं, अभी छाती में छुरा भोंक दें! अभी गीता पढ़ रहे थे, अभी किसी की स्त्री को लेकर भाग जाएं! इसमें कोई कठिनाई नहीं है। धार्मिक आदमी से ज्यादा गैर-भरोसे का आदमी ही पृथ्वी पर अब तक नहीं पाया गया। क्योंकि जिसको हम धार्मिक कहते हैं, सच में वह धार्मिक ही नहीं है। थोथा, सूडो रिलीजस, झूठा, सिर्फ माना हुआ धार्मिक है। धर्म का उसके जीवन में कोई संबंध नहीं। अगर धर्म का संबंध हो जाए तो आदमी न हिंदू रहेगा, न मुसलमान, न ईसाई।
धर्म भी दस हो सकते हैं? हजार हो सकते हैं? सत्य भी हजार तरह का हो सकता है?
गणित एक तरह का होता है--चाहे तिब्बत में, और चाहे चीन में, और चाहे हिंदुस्तान में हो, और चाहे रूस में--सब जगह गणित एक है। और केमिस्ट्री भी एक है और फिजिक्स भी एक है--साइंस एक है। लेकिन धर्म हजार हैं!

सिर्फ झूठ हजार तरह के हो सकते हैं, सत्य हजार तरह का नहीं हो सकता। अगर कोई कहने लगे कि हिंदुओं की केमिस्ट्री अलग है और मुसलमानों की केमिस्ट्री अलग है, तो समझ लो कि इन दोनों को पागलखाने में भर्ती करना पड़े। इसके सिवाय कोई उपाय न रहे। क्योंकि केमिस्ट्री कैसे अलग हो सकती है? पानी चाहे हिंदू गरम करे, चाहे मुसलमान, सौ डिग्री पर भाप बनता है। और कोई उपाय नहीं है कि कुरान पढ़ने वाला कम डिग्री पर भाप बना दे और गीता पढ़ने वाला ज्यादा डिग्री पर भाप बना दे। पानी सौ डिग्री पर भाप बनता है, यह सत्य है। यह सत्य सार्वलौकिक है, युनिवर्सल है।
धार्मिक आदमी सिर्फ धार्मिक होता है--जस्ट रिलीजस--न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई। ये सब अधार्मिकों के सिरों पर लगे हुए लेबल हैं। धर्म कैसे हो सकते हैं पचास तरह के? जब पदार्थ का नियम एक है, तो परमात्मा का नियम कैसे अनेक हो सकता है?
उस फकीर के फिर वे पीछे पड़ गए। उसने कहा, ठीक है, तुम कहते हो तो हम चलेंगे। वह गया। वह मंच पर खड़ा हुआ। उस गांव के लोगों ने सोच-विचार करके तय कर लिया था कि उत्तर अब दूसरा देना है। फकीर ने पूछा कि मैं पूछ लूं वही बात कि ईश्वर है, तुम मानते हो? जानते हो? तुम्हें उसका अनुभव हो गया है? सारे मस्जिद के लोग चिल्लाए, कैसा ईश्वर? हमें कुछ पता नहीं। न हम मानते हैं, न हम जानते हैं। अब आप बोलिए!
उस फकीर ने कहा, जिसे तुम मानते ही नहीं, जानते ही नहीं, उसके संबंध में बात करने से फायदा क्या है? जिसकी तुम्हें कोई खबर ही नहीं, उसका तुम प्रश्न ही कैसे उठाते हो? किस ईश्वर की बात कर रहे हो? किस ईश्वर की मैं बात करूं?
गांव के लोग फिर मुसीबत में पड़ गए कि यह तो बड़ा धोखेबाज आदमी मालूम पड़ता है। पिछली बार हमने हां भरी तो उसने कहा, तुम्हें पता ही हो गया, बात खत्म। अब हम इनकार करते हैं तो वह कहता है, जिसको तुम जानते नहीं, मानते नहीं, जिसका तुम्हें कोई पता नहीं, उसकी बात भी क्यों करनी? बात करने के लिए भी कुछ शुरुआत तो चाहिए। किसकी मैं बात करूं? किससे मैं बात करूं? मैं जाता हूं।
गांव के लोगों ने कहा, यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। यह आदमी कैसा है! फिर उन्होंने कहा, अब हम क्या करें? लेकिन इससे सुनना जरूर है। इस आदमी की आंखों से लगता है कि कुछ जानता है। इस आदमी के व्यक्तित्व से लगता है कि इसे कुछ खबर है। शायद हम ठीक उत्तर नहीं दे पा रहे, अब हम क्या करें? उन्होंने तीसरा उत्तर तैयार किया। फिर फकीर को समझा-बुझा कर ले आए।
उसने कहा कि तुम क्यों परेशान हो रहे हो?
उन्होंने कहा कि अब हम, दूसरा ही उत्तर है हमारे पास।
फकीर ने कहा, सोचे-विचारे उत्तर का कोई मतलब नहीं होता पागलो! तुम सोच-विचार कर तय करते हो, वह सब झूठ होता है। जो सच होता है उसे सोच-विचार कर तय नहीं करना पड़ता, वह तय होता है। और जिसे हम सोच-विचार कर तय करते हैं, वह कभी सच नहीं होता। सिर्फ असत्य के लिए सोचना पड़ता है, सत्य के लिए सोचना नहीं पड़ता है। और अगर सत्य के लिए भी सोचना पड़े, तो वह असत्य ही होगा। सत्य को जानना पड़ता है, सोचना नहीं पड़ता। असत्य को सोचना पड़ता है। इसलिए असत्य बोलने वाला सोच-विचार में, चिंता में, परेशानी में पड़ जाता है। सत्य बोलने वाले को परेशानी नहीं होती, क्योंकि चिंता का कोई कारण नहीं है। जो है वह है। जो नहीं है वह नहीं है।
फिर भी वे गांव के लोग नहीं माने। उन्होंने कहा, एक बार और चले चलें। बड़ी कृपा होगी।
वह गया। वह फकीर फिर मंच पर खड़ा हो गया है। उसने फिर पूछा है कि मित्रो, मैं फिर वही बात पूछ लूं--ईश्वर है, तुम मानते हो? जानते हो? पहचानते हो? कुछ खबर है उसकी?
तो मस्जिद के लोगों ने तय किया था... अगर हम भी होते, हम भी उस गांव में होते, या हो सकता है हममें से कुछ लोग उस गांव में रहे भी हों, तो हमने भी यही तय किया होता... आधी मस्जिद के लोगों ने कहा कि हां, हम ईश्वर को मानते हैं; आधे लोगों ने कहा, हम नहीं मानते। अब आप बोलिए!

उस फकीर ने कहा, तुम बड़े नासमझ हो! जिनको मालूम है, वे उनको बता दें जिनको मालूम नहीं। मेरी क्या जरूरत है? तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो? तुम मुझे क्यों परेशान करते हो? अब तो कोई जरूरत ही नहीं है मेरी, मैं बिल्कुल बेकार हूं यहां। कुछ जानते हैं, कुछ नहीं जानते। आपस में एक-दूसरे को समझा- बुझा लें। मैं यह चला। और फकीर ने चलते वक्त उनसे कहा कि हिम्मत हो, तो फिर चौथी बार आना!
गांव के लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गए। बहुत सोचा, लेकिन चौथा उत्तर न मिला। करते भी क्या? करते भी क्या, एक उत्तर हां का, एक न का, फिर दोनों उत्तर मिला कर दे दिए हां और न के, अब क्या करते? ये तीन तो विकल्प ही दिखाई पड़ते हैं, कोई चौथा अल्टरनेटिव भी तो नहीं है। बहुत परेशान हुए। फकीर कई दिन रुका रहा और गांव में घूम-घूम कर लोगों से कहता रहा, क्यों, अब नहीं आते? लेकिन गांव के लोग कुछ भी न सोच पाए कि अब क्या करें? आखिर उस फकीर को वह गांव छोड़ देना पड़ा।
किसी दूसरे आदमी ने दूसरे गांव में उससे पूछा कि हमने सुना है उस गांव
के लोग फिर न आए। अगर वे आते तो तुम समझाते फिर ईश्वर को?
उसने कहा, फिर मुझे समझाना ही पड़ता।
उस आदमी ने कहा, तो तुमने तीन बार में क्यों नहीं समझाया?
उसने कहा, मैं ठीक उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा।
क्या ठीक उत्तर हो सकता है?
तो उस फकीर ने कहा, अगर वे गांव के लोग चुप रह जाते और कोई उत्तर न देते, तो ही मैं कुछ बोल सकता था। क्योंकि तब वे ईमानदार होते, ऑनेस्ट होते। क्योंकि ईश्वर के संबंध में न तो हमें पता है कि वह है, न हमें पता है कि वह नहीं है। हम बेईमान हैं, अगर हम कोई भी उत्तर दे रहे हैं।
लेकिन यह बेईमानी धार्मिक किस्म की है। और जब बेईमानी धार्मिक किस्म
की होती है, तो पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है। अधार्मिक बेईमान आदमी तो पकड़ जाता है। धार्मिक और बेईमान आदमी को पकड़ना बहुत मुश्किल है। क्योंकि उसकी बेईमानी के चारों तरफ धार्मिकता की पर्त चढ़ाई हुई है।
हमारा उत्तर क्या है? अगर हम सच में ईमानदार हैं, ऑनेस्ट हैं, तो हम कहेंगे, कोई भी उत्तर तो हमारे पास नहीं, हमें कुछ भी तो पता नहीं। हम इतना भी तो नहीं कह सकते कि वह है, हम इतना भी नहीं कह सकते कि वह नहीं है। और जो व्यक्ति इतनी सच्चाई पर खड़ा हो जाए कि मुझे कुछ भी पता नहीं, उस व्यक्ति की सच्ची आस्तिकता की यात्रा शुरू हो जाती है। क्योंकि अगर हमें यह अनुभव हो जाए कि मुझे कुछ भी पता नहीं है, तो हम इतनी पीड़ा में, इतनी सफरिंग में, इतने कष्ट में पड़ जाएंगे कि वह पीड़ा, वह कष्ट, वह अज्ञान हमें धक्के देगा कि हम खोज पर निकलें, हम जाएं और पता लगाएं।
लेकिन हम बड़े अदभुत लोग हैं! हमें पता कुछ भी नहीं है और हम मान कर बैठ
गए हैं कि पता है, इसलिए यात्रा भी नहीं करते। अब कोई बीमार आदमी समझ ले कि मैं स्वस्थ हूं, तो फिर वह इलाज की क्या फिकर करे! इलाज की फिकर तो इस बात से शुरू होती है कि ज्ञात हो कि मैं बीमार हूं, तो हम स्वास्थ्य की तरफ भी जा सकते हैं।
पृथ्वी पर झूठी आस्तिकता है। और इसलिए धार्मिक जीवन निर्मित नहीं हो
पा रहा है। और झूठी आस्तिकता का आधार हैः विश्वास, बिलीफ। और सारी दुनिया में यही समझाया जाता है कि विश्वास करो, यकीन लाओ, श्रद्धा रखो; मानो, पूछो मत, संदेह मत करो, शक मत करो, अविश्वास मत करो। बड़ी उलटी बात सिखाई जा रही है। जो आदमी विश्वास में जीएगा, वह कभी भी अनुभव तक नहीं पहुंचता है। अनुभव तक केवल वे ही लोग पहुंचते हैं, जो झूठे विश्वासों में नहीं जीते, झूठे अविश्वासों में भी नहीं जीते। अविश्वास, डिसबिलीफ भी एक तरह का विश्वास है--विरोधी विश्वास है, निगेटिव बिलीफ है। ईमानदार आदमी चुप खड़ा हो जाता है कि मुझे पता नहीं।
डी.एच.लारेंस एक बगीचे में घूम रहा था। एक अदभुत आदमी था। एक छोटा बच्चा उसके साथ घूम रहा है। और वह लारेंस से पूछता है, जैसा कि छोटे बच्चे अक्सर सवाल उठा देते हैं, जिनका कि बूढ़े भी उत्तर नहीं दे सकते। लेकिन इतने हिम्मतवर बूढ़े कम होते हैं जो मान लें बच्चों के सामने इस बात को कि मुझे उत्तर पता नहीं। इसी तरह के कमजोर बूढ़ों ने दुनिया को परेशानी में

डाल रखा है। बच्चे ने प्रश्न उठा दिया एक सीधा सा। वृक्षों को देखा है और हाथ उठा कर लारेंस से पूछा, व्हाय दि ट्रीज आर ग्रीन? वृक्ष हरे क्यों हैं? लारेंस ने कहा, दि ट्रीज आर ग्रीन, बिकाज दे आर ग्रीन! वृक्ष हरे हैं, क्योंकि वृक्ष हरे हैं!
उस बच्चे ने कहा, यह भी कोई उत्तर हुआ! यह कोई उत्तर है! हम पूछते हैं, वृक्ष हरे क्यों हैं? आप कहते हैं कि हरे हैं, क्योंकि हरे हैं। यह कोई उत्तर हुआ!
लारेंस ने कहा कि उत्तर का मतलब सिर्फ इतना है कि मुझे पता नहीं है और मैं झूठ नहीं बोल सकता हूं।
इस आदमी का भाव देखते हैं? वह कहता है, मुझे पता नहीं। यह धार्मिक आदमी
का पहला लक्षण है कि वह साफ होगा इस बात में कि मुझे क्या पता है और क्या पता नहीं है।
क्या आप साफ हैं? आपने कभी लेखा-जोखा किया है कि मुझे क्या पता है और क्या पता नहीं है? आप बहुत हैरान हो जाएंगे। शायद ही जीवन का कोई परम सत्य पता हो! लेकिन जिन बातों का हमें बिल्कुल पता नहीं है, हम बहुत जोर से टेबल ठोंक-ठोंक कर कहते हैं कि हमें पक्का पता है। न केवल टेबल ठोंकते हैं, एक-दूसरे की छाती में छुरा भी भोंकते हैं--कि मुझे जो पता है वह ज्यादा ठीक है, तुम्हें जो पता है वह गलत है।
आश्चर्य है! जिन सत्यों के संबंध में हमें कोई भी बोध नहीं है, उनके संबंध में हम कितने फैनेटिक, कितने पागल, कितने आक्रामक, कितने अग्रेसिव हैं। समझ के बाहर है यह बात। लेकिन यही बात हमारी स्थिति बनी है। इस स्थिति को तोड़ना जरूरी है।
तो मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा, कभी एकांत क्षणों में इस पर सोचना
कि धर्म के संबंध में मुझे क्या पता है? निश्चित ही, गीता के सूत्र आपको याद होंगे, कुरान की आयतें भी याद हो सकती हैं, बाइबिल के वचन भी कंठस्थ हो सकते हैं। लेकिन ध्यान रखना, वह आपका ज्ञान नहीं है। गीता में जो है वह कृष्ण का ज्ञान रहा होगा, आप उसे पढ़ कर अपना ज्ञान नहीं बना सकते हैं। बारोड, उधार लिया हुआ ज्ञान अज्ञान से बदतर है। क्योंकि अज्ञान कम से कम अपना तो होता है। इतना तो है कि मेरा है। कम से कम प्रामाणिक, ऑथेंटिक तो होता है कि मेरा है। ज्ञान उधार है सब। और अज्ञान हमारा है।
ध्यान रहे, मेरे अज्ञान को, मैं सारी दुनिया के ज्ञान को भी इकट्ठा कर लूं, तो भी नहीं मिटा सकता। क्योंकि अज्ञान मेरा है और ज्ञान दूसरे का है। दूसरे का ज्ञान मेरे अज्ञान को मिटा नहीं सकता है। कैसे मिटा सकता है? दोनों कहीं कटते ही नहीं। दोनों कहीं एक-दूसरे को स्पर्श भी नहीं करते। दूसरे का ज्ञान, अज्ञान से भी खतरनाक हो सकता है।
मैंने सुना है, एक अंधा आदमी अपने एक मित्र के घर मेहमान है। रात बहुत-बहुत भोजन बने हैं, खीर बनी है। उस अंधे आदमी ने अपने मित्रों से पूछा, यह खीर क्या है? यह किस चीज को तुम खीर कहते हो? यह कैसी है? किससे बनी है? मुझे कुछ समझाओ, मुझे बहुत पसंद पड़ी है।
मित्र समझदार रहे होंगे। दुनिया में नासमझ आदमी तो मुश्किल से ही मिलता है, सभी समझदार हैं। वे भी समझदार थे। उन्होंने उस अंधे आदमी को बताया कि खीर जो है वह दूध से बनी है।
उस अंधे आदमी ने कहा कि यह दूध क्या है? कैसा होता है? क्या है रंग? क्या है रूप?
उन समझदारों ने कहा कि दूध बिल्कुल शुभ्र, सफेद होता है।
उस अंधे आदमी ने कहा, मुझे मुश्किल में डाले दे रहे हो। मेरा पहला प्रश्न वहीं का वहीं खड़ा रहता है, तुम जो जवाब देते हो उससे और नये प्रश्न खड़े हो जाते हैं। यह सफेदी क्या बला है? यह सफेदी क्या है? यह सफेदी कैसी होती है? यह शुभ्र किसको कहते हो तुम?
समझदार कम समझदार न थे। एक समझदार आगे बढ़ा और उसने कहा, कभी बगुला देखा है नदी के किनारे? तालाब के तट पर? झील के पास? सफेद बगुला? ठीक बगुले के पंखों जैसा सफेद होता है दूध!
उस अंधे आदमी ने कहा, तुम पहेलियों में उलझाए दे रहे हो। यह बगुला क्या बला है? और मेरे पहले प्रश्न तो अब कितने दूर छूट गए, तुम्हारे जवाब

मुझे बहुत आगे ले आए हैं, लेकिन हर बात वहीं की वहीं अटकी हुई है। यह बगुला क्या होता है? कैसा होता है? कुछ मुझे इस तरह समझाओ कि मैं समझ सकूं।
एक समझदार आदमी ने अपना हाथ आगे बढ़ाया, उस अंधे आदमी को कहा कि मेरे हाथ पर हाथ फेरो। अंधे आदमी ने हाथ पर हाथ फेरा। यह कुछ समझ में आने वाली बात थी, क्योंकि अंधे को स्पर्श अनुभव हुआ। उस समझदार आदमी ने कहा कि जैसे मेरे हाथ पर तुमको सुडौल मालूम होता है, ऐसे ही बगुले की गर्दन सुडौल होती है।
वह अंधा आदमी खड़े होकर नाचने लगा। उसने कहा, मैं समझ गया कि दूध सुडौल हाथ की तरह होता है। मैं बिल्कुल समझ गया।
वे सब मित्र कहने लगे, क्षमा करो! क्षमा करो! इससे तो बेहतर था कि तुम न जानते थे। यह जानना तो और मुश्किल में डाल देगा। नहीं, दूध सुडौल हाथ की तरह नहीं होता।
उस अंधे आदमी ने कहा, मुझे क्यों मुश्किल में डालते हो? तुम्हीं ने तो मुझे समझाया है।
असल बात यह है कि अंधे आदमी को सफेद रंग के संबंध में कुछ भी नहीं समझाया जा सकता। और जो समझाने जाता है वह निपट नासमझ है। अंधे आदमी की आंख का इलाज हो सकता है; सफेद रंग नहीं बताया जा सकता। आंख का इलाज हो जाए तो सफेद रंग दिखाई पड़ सकता है। और कोई उपाय नहीं है।

हम सब, जहां तक सत्य का संबंध है, अंधे हैं। हमें कुछ पता नहीं है। और
हम सबने किताबों में से कुछ समझ लिया है। वह उसी अंधे आदमी के हाथ की तरह। वह उसी अंधे आदमी की धारणा की भांति। हम उसको पकड़ कर बैठे हुए हैं। और हम जिंदगी-जिंदगी पकड़ कर बैठे रहें, उससे हम कहीं पहुंचेंगे नहीं।
पहली बात जाननी जरूरी है कि हम अंधे हैं और दूसरी बात जाननी जरूरी है
कि हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। जहां तक ईश्वर का, सत्य का संबंध है, हमें कुछ भी पता नहीं है, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। यह पहली सच्चाई होगी, जिसे हम स्वीकार कर लें, तो फिर आगे बढ़ा जा सकता है। तब हम पूछ सकते हैं कि यह आंख कैसे ठीक हो कि हम जान सकें?
लेकिन जिसने मान लिया, वह यह पूछता ही नहीं कि हम जान सकें। वह तो यह मान लेता है कि जान लिया। वह तो विश्वास को धीरे-धीरे, धीरे-धीरे ज्ञान बना लेता है, उसे पता ही नहीं चलता कि मैंने गीता में ऐसा पढ़ा था; कब वह समझने लगता है कि ऐसा मैं जानता हूं।
मैं देखता हूं, लोग बैठे हैं--धार्मिक लोग--आंख बंद करके सोच रहे हैंः अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं। किसी किताब में पढ़ लिया है। अब दोहरा रहे हैं कि मैं ब्रह्म हूं।
अब दोहराते रहिए। क्या दोहराने से पता चल जाएगा कि आप ब्रह्म हैं? कैसे पता चल जाएगा? जब पहली बार आपने दोहराया कि मैं ब्रह्म हूं, तब आपको पता नहीं था। जब आपने दूसरी बार दोहराया, तब भी आपको पता नहीं था। जब आपने तीसरी बार दोहराया, तब भी आपको पता नहीं था। और अगर पता ही हो गया था तो चौथी बार दोहराया किसलिए? तो चौथी बार दोहराया तब भी पता नहीं था। हजार बार, लाख बार, करोड़ बार दोहराइए, पता कैसे हो जाएगा? रिपीटीशन नॉलेज बन जाता है? दोहराने से ज्ञान पैदा हो जाता है?
तब तो बड़ा सस्ता मामला है; तब तो बहुत ही सस्ता मामला है। तब तो हिटलर
ने ठीक लिखा है अपनी आत्मकथा में। उसने लिखा है कि दुनिया में सफेद झूठ जैसी कोई चीज नहीं होती। जिस झूठ को बार-बार दोहराओ, वही सत्य हो जाता है। तब तो फिर हिटलर परम ज्ञानी है। और मजे की बात यह है कि हम हिटलर को कभी ज्ञानी न कहेंगे, लेकिन हम यही कर रहे हैं ज्ञान के लिए।
हां, यह बात जरूर सच है कि अगर असत्य को भी बार-बार दोहराया जाए, तो हम धीरे-धीरे यह भूल जाते हैं कि यह असत्य है। दूसरा नहीं, हम खुद भूल जाते हैं। अगर आप बचपन से एक असत्य को दोहराते रहें, दोहराते रहें, तो बुढ़ापे तक याद रखना जरा मुश्किल हो जाएगा कि यह असत्य था और मैंने जब पहली बार दोहराया था तो असत्य था, मुझे पता नहीं था। यह भूल जाएंगे आप। निरंतर दोहराने से सिर्फ भूल सकते हैं, लेकिन ज्ञान नहीं हो सकता। सिर्फ इतना भूल सकते हैं।

मैंने सुना है, एक पत्रकार मर गया और मरते ही से स्वर्ग के दरवाजे पर पहुंच गया--जर्नलिस्ट, अखबार वाला। अब अखबार वाला था, उसने कहा कि सीधे स्वर्ग में मुझे जगह मिलनी चाहिए। और यहां कोई मिनिस्टर या कहीं भी दरवाजा खटखटाए तो दरवाजा खुलता था, तो उसने कहा, भगवान भी क्यों, डरता होगा जरूर। अखबार वाले से कौन नहीं डरता! जाकर उसने सीधा दरवाजा खटखटाया। द्वारपाल ने बाहर झांक कर देखा। उसने कहा, दरवाजा खोलो! मैं एक बड़े अखबार का रिपोर्टर हूं और मैं मर गया हूं और मैं स्वर्ग में रहना चाहता हूं।
उस द्वारपाल ने कहा, माफ करिए! पहली तो बात यह है कि स्वर्ग में कोई घटना ही नहीं घटती, न्यूज ही नहीं घटती, क्योंकि न्यूज के लिए भी तो उपद्रवी आदमी चाहिए--राजनीतिज्ञ चाहिए, गुंडे चाहिए, बदमाश चाहिए। यहां कोई आते ही नहीं इस तरह के सब लोग। हालांकि जमीन पर जो भी मरता है, वे सभी स्वर्गीय लिखे जाते हैं। सब स्वर्ग चले जाते हैं, ऐसा हम मानते हैं। जाता मुश्किल से ही कोई कभी होगा। उस द्वारपाल ने कहा, यहां कोई घटना ही नहीं घटती। अखबार कहां चले? और यहां का एक निश्चित कोटा है, दस अखबार वालों को हमने जगह दे रखी है। लेकिन वह भी बेकार है, कोई काम ही नहीं है। और अखबार भी निकालो तो कोई पढ़ने को राजी नहीं होता। इसलिए वह ठप्प ही पड़ा है काम। अगर तुम्हें जाना ही है तो नरक चले जाओ, वहां बहुत अखबार चलते हैं, बड़े अखबार चलते हैं, बहुत सर्कुलेशन है अखबारों का। क्योंकि घटनाएं भी खूब घटती हैं, घटनाएं ही घटनाएं हैं वहां तो, जहां देखो वहीं घटना घट रही है।
पर उसने कहा कि मुझे तो स्वर्ग में रहना है। आप एक कर सकते हैं तरकीब, मुझे चौबीस घंटे के लिए भीतर ले लें। मैं दस अखबार वालों में से एक को राजी कर लूंगा कि वह नरक चला जाए। तो फिर तो जगह खाली होती है मुझे?
उस द्वारपाल ने कहा, आप आ जाएं, चौबीस घंटे आप कोशिश कर लें।
वह अखबार वाला भीतर गया। जो भी आदमी उसे मिला, उसने कहा, सुना तुमने? नरक में एक बहुत नया अखबार निकलने वाला है। उसके लिए एक बड़े संपादक की, चीफ एडीटर की जरूरत है। मोटर भी मिलेगी, बंगला भी मिलेगा, सब इंतजाम है, बड़ी तनख्वाह भी है। उसने पूरे स्वर्ग में खबर फैला दी। सांझ को वह वापस द्वारपाल के पास आया और उसने पूछा कि कहो, कोई गया?
द्वारपाल ने दोनों हाथ रोक कर उससे कहा कि ठहरो! वे दसों चले गए हैं और
अब तुम नहीं जा सकते, क्योंकि यहां हम तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। दस का कोटा है। वे दसों ही भाग गए हैं। वे कहते हैं, हमको नरक जाना है। सब चले गए।
लेकिन उस अखबार वाले ने कहा, रास्ते से हटो! मैं भी जाऊंगा।
उसने कहा, तुम कैसे पागल हो!
उसने कहा, कौन जाने, बात सच भी हो सकती है कि अखबार वहां निकल रहा हो। क्योंकि मैंने जिससे भी सुना है दिन में, सभी यही कह रहे हैं कि अखबार निकलने वाला है। पूरे स्वर्ग में एक ही चर्चा है। कौन जाने!
उस द्वारपाल ने कहा, पागल, सुबह तूने ही यह झूठ शुरू किया था।
उसने कहा, सुबह को बहुत देर हो गई, बात सच भी हो सकती है। मैं लेकिन यहां नहीं रहना चाहता। झूठ हो तो भी कोई हर्जा नहीं। जब दस आदमियों ने मान लिया, तो बात में कुछ न कुछ जान होनी चाहिए।
हम भी भूल जाते हैं कि हमने कब झूठ स्वीकार किया था खुद। और अगर बोलते
ही चले जाएं तो आखिर में पता ही नहीं रहेगा कि यह झूठ था।
दोहराने से कोई सत्य नहीं होता है। हम किताबें पढ़ लेते हैं--ईश्वर के संबंध में, ब्रह्म के संबंध में, आत्मा के संबंध में बातें सीख लेते हैं, फिर उनको दोहराने लगते हैं। और दोहराते-दोहराते मर जाते हैं, हम कुछ जान नहीं पाते।
क्या करें?
इसलिए मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूं, पहली बात तो यह समझें कि हम अज्ञानी हैं, परम अज्ञानी, एब्सोल्यूट इग्नोरेंट हैं सत्य के संबंध में। यह पहला सत्य होगा, यह पहला चरण होगा मंदिर का परमात्मा के। और जब परम अज्ञान है हमारा और दूसरे के ज्ञान से ज्ञान मिल नहीं सकता--कितनी ही गीता कंठस्थ करो और कितने ही ब्रह्म-सूत्र पढ़ो, ज्ञान नहीं मिल सकता है किसी किताब से, न किसी गुरु से। ट्रांसफरेबल नहीं है। वह कोई ऐसी चीज नहीं है कि

किसी ने मुट्ठी भरी और आपको दे दी। अगर ऐसा होता तो एक ही गुरु सारी दुनिया में ज्ञान बांट जाता। फिर कोई जरूरत न थी। कोई किसी को ज्ञान दे नहीं सकता। अगर मृत्यु को जानना है तो खुद मरना पड़ता है। और अगर ज्ञान को उपलब्ध करना है तो खुद उस मार्ग से गुजरना पड़ता है जहां ज्ञान उपलब्ध होता है।
क्या है वह मार्ग?
समस्त विचारों से मुक्त हो जाना, पूर्ण शून्य में ठहर जाना, मौन, पूर्ण मौन में उतर जाना वह मार्ग है। यदि हम क्षण भर को भी पूर्ण मौन में हो सकें, कंप्लीट साइलेंस में हो सकें, तो हम उसे जान लेंगे जो है।
क्यों? आखिर मौन में होने से क्यों जान लेंगे?
जब तक हमारा मन शब्दों से भरा है, विचारों से भरा है, तब तक बेचैन है।
तब तक ऐसा है जैसे झील पर तरंगें हों। चांद है आकाश में और झील तरंगों से भरी है, तो चांद का प्रतिबिंब नहीं बनता फिर झील में। और फिर झील शांत हो गई, कोई तरंग नहीं है, झील मौन हो गई, एक लहर भी नहीं है झील की छाती पर, झील बिल्कुल साइलेंट, शांत हो गई है, तो झील एक दर्पण बन जाती है और चांद उसमें प्रतिफलित हो जाता है, रिफ्लेक्ट हो जाता है, दिखाई पड़ने लगता है।
मौन की स्थिति में हम बन जाते हैं दर्पण, शांत; और जो है वह उसमें प्रतिफलित हो जाता है, उसमें दिखाई पड़ जाता है।
मनुष्य को बनना है दर्पण; चुप, एक लहर भी न हो मन पर। तो उसी क्षण में,
जो है... उसी का नाम परमात्मा हम कहें, सत्य कहें, जो भी नाम देना चाहें। नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता है। नाम के झगड़े सिर्फ बच्चों के झगड़े हैं। कोई भी नाम दे दें--एक्स, वाय, जेड कहें तो भी चलेगा। वह जो है, अननोन, अज्ञात, वह हमारे दर्पण में प्रतिफलित हो जाता है और हम जान पाते हैं। तब है आस्तिकता, तब है धार्मिकता, तब धार्मिक व्यक्ति का जन्म होता है।
अदभुत है आनंद उसका। सत्य को जान कर कोई दुखी हुआ हो, ऐसा सुना नहीं गया। सत्य को बिना जाने कोई सुखी हो गया हो, ऐसा भी सुना नहीं गया। सत्य को जाने बिना आनंद मिल गया हो किसी को, इसकी कोई संभावना नहीं है। सत्य को जान कर कोई आनंदित न हुआ हो, ऐसा कोई अपवाद नहीं है। सत्य आनंद है, सत्य अमृत है, सत्य सब कुछ है--जिसके लिए हमारी आकांक्षा है, जिसे पाने की प्यास है, प्रार्थना है। लेकिन हम दर्पण नहीं हैं, जिसमें सत्य प्रतिफलित हो सके। एक युवा फकीर सारी दुनिया का चक्कर लगा कर अपने देश वापस लौटा था। उस देश का सम्राट बचपन में उसके साथ एक ही स्कूल में पढ़ा था। वह फकीर सम्राट के पास गया। सारी पृथ्वी से घूम कर लौटा है फकीर--अर्धनग्न, फटे वस्त्र। सम्राट गले मिला है। बैठते ही सम्राट ने पूछा है, सारी दुनिया घूम कर आए, मेरे लिए कुछ लाए हो?
जिनके पास सब कुछ होता है, उनके मन में भी और कुछ की वासना तो बनी ही रहती है। एक सम्राट एक फकीर से मांगने लगा कि मेरे लिए कुछ लाए हो?
फकीर ने कहा कि मुझे ख्याल था निश्चित ही कि तुम जरूर मिलते ही पहली बात यही पूछोगे। जिनके पास बहुत है, पहली बात उनके मन में यही उठती है। तो मैं तुम्हारे लिए कुछ ले आया हूं।
सम्राट ने चारों तरफ देखा, फकीर के पास तो कुछ मालूम नहीं पड़ता। हाथ खाली हैं, झोला भी साथ नहीं। सम्राट ने कहा, क्या ले आए हो?
फकीर ने कहा, मैंने बहुत खोजा, बहुत खोजा, बड़े-बड़े बाजारों में, बड़ी- बड़ी राजधानियों में, लेकिन मैं यह सोचता था, कोई ऐसी चीज ले चलूं जो तुम्हारे पास न हो। लेकिन जहां भी गया, मुझे ख्याल आया, यह सब तुम्हारे पास जरूर होगा। तुम कोई छोटे सम्राट नहीं। और देखता हूं तुम्हारे महल में सभी कुछ है। भूल हो जाती बड़ी। मैं वह कुछ भी नहीं लाया। फिर एक चीज मुझे मिल गई, जो मैं लाया हूं।
सम्राट तो खड़ा हो गया! उसने कहा, ऐसी कोई चीज लाए हो जो मेरे पास नहीं है? देखें, जल्दी निकालो! मेरी उत्सुकता को ज्यादा मत बढ़ाओ।
उस फकीर ने खीसे में हाथ डाला, फटे कुर्ते से एक छोटा सा दो पैसे का दर्पण, दो पैसे का मिरर निकाल कर सम्राट को दे दिया। सम्राट ने कहा, पागल हो गए हो? मेरे पास बड़े-बड़े दर्पण हैं। यह तुम दो पैसे का दर्पण लाए हो कि मेरे पास नहीं होगा? कैसे पागल हो!

उस फकीर ने कहा, यह दर्पण साधारण नहीं है। इसमें अगर देखोगे, तो तुम अपने को ही देख लोगे। दूसरे दर्पण में सिर्फ शरीर दिखा होगा, इसमें तुम ही दिख जाओगे।
कागज में लिपटा हुआ है दर्पण। सम्राट ने कहा, मैं इसे खोल कर देखूं?
फकीर ने कहा, अकेले में देखना, क्योंकि इसमें तुम दिख जाओगे जैसे हो,
जो है।
फिर फकीर चला गया। एकांत होते ही सम्राट ने कागज फाड़ा। एक साधारण सा दर्पण है, जिसको दर्पण कहना भी मुश्किल है, अत्यंत दीन-दरिद्र दर्पण है। लेकिन उस दर्पण पर एक वचन लिखा हुआ है कि और सब दर्पण व्यर्थ हैं, एक ही दर्पण सार्थक है। और वह वही दर्पण है जो तुम बन सकते हो। मौन हो जाओ, चुप हो जाओ, चित्त की सब तरंगें बंद कर दो। उसी दर्पण में देख सकोगे कि तुम कौन हो। और जो स्वयं को देख ले, वह सबको देख लेता है। एक बार झलक मिल जाए शांत होकर जीवन की, सब मिल जाता है।
लेकिन हम खोजते हैं शास्त्रों में; शास्त्रों में कभी न मिलेगा। हम खोजते हैं गुरुओं के पास; कभी न मिलेगा। कोई किसी को दे सकता नहीं। है हमारे पास और हम खोजते हैं कहीं और, तो भटकते रहते हैं।
एक ही बात आपसे कहना चाहता हूं, वह यह, अज्ञान को समझें और अज्ञान को झूठे ज्ञान से ढांकें मत, उधार ज्ञान से अपने अज्ञान को भुलाएं मत। उधार ज्ञान को दोहरा-दोहरा कर जबर्दस्ती ज्ञान बनाने की व्यर्थ चेष्टा में न लगें। ऐसा न कभी हुआ है, न हो सकता है। एक ही उपाय है, और जिस उपाय से सबको हुआ है, कभी भी हुआ है, कभी भी होगा, और वह उपाय यह है कि कैसे हम दर्पण बन जाएं--जस्ट टु बी ए मिरर।
दर्पण पता है आपको, दर्पण की खूबी क्या है? दर्पण की खूबी यह है कि उसमें कुछ भी नहीं है, वह बिल्कुल खाली है। इसीलिए तो जो भी आता है उसमें दिख जाता है। अगर दर्पण में कुछ हो तो फिर दिखेगा नहीं। दर्पण में कुछ भी नहीं टिकता, दर्पण में कुछ है ही नहीं, दर्पण बिल्कुल खाली है। दर्पण का मतलब हैः टोटल एंप्टीनेस, बिल्कुल खाली। कुछ है ही नहीं उसमें, जरा भी बाधा नहीं है। अगर जरा भी बाधा हो, तो फिर दूसरी चीज पूरी नहीं दिखाई पड़ेगी। जितना कीमती दर्पण, उतना खाली। जितना सस्ता दर्पण, उतना थोड़ा भरा हुआ। बिल्कुल पूरा दर्पण हो, तो उसका मतलब यह है कि वहां कुछ भी नहीं है, सिर्फ कैपेसिटी टु रिफ्लेक्ट। कुछ भी नहीं है, सिर्फ क्षमता है एक प्रतिफलन की--जो भी चीज सामने आए वह दिख जाए।
क्या मनुष्य का मन ऐसा दर्पण बन सकता है?
बन सकता है! और ऐसे दर्पण बने मन का नाम ही ध्यान है, मेडिटेशन है। ऐसा
जो दर्पण जैसा बन गया मन है, उसका नाम ध्यान है, ऐसे मन का नाम ध्यान है। ध्यान का मतलब यह नहीं कि राम-राम, राम-राम, राम-राम कर रहे हैं। ध्यान
का कोई संबंध नहीं है। यह सब लहर चल रही है। राम-राम के नाम की चल रही है, इससे क्या फर्क पड़ता है? कि ओम-ओम, ओम-ओम कर रहे हैं, वह भी लहर चल रही है। ओम की चल रही है, इससे क्या फर्क पड़ता है? कोई लहर न रह जाए शब्द की, कोई विचार न रह जाए। कुछ भी न रह जाए, बस खालीपन रह जाए। तो उस खालीपन में हम उसे जान लेंगे जो चारों तरफ मौजूद है।
भगवान को खोजने कहीं कोई हिमालय पर, कोई एवरेस्ट पर थोड़े ही जाना है, न किसी चांद-तारे पर जाना है। वह है यहीं, सब जगह। सच तो यह है कि वही है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसलिए जो पूछता हैः कहां खोजने जाऊं? वह पागल है। कोई अगर यह पूछे कि कोई ऐसी जगह बताओ जहां भगवान न हो, तो समझ में आ सकता है कि यह आदमी कुछ खोजने निकला है। लेकिन कोई कहता है, मुझे वह जगह बताओ जहां भगवान है, तो समझना यह आदमी पागल है। क्योंकि ऐसी कोई जगह ही नहीं है जहां वह नहीं है। असल में होना मात्र वही है। जो भी है, वही है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ईश्वर का मतलब हैः अस्तित्व, एग्झिस्टेंस, जो है।
फिर कमी क्या है? हम खोज क्यों नहीं पाते उसे?
कमी शायद इतनी ही है कि हम दर्पण नहीं हैं, जिसमें वह झलक जाए। हम भीतर भरे हैं और वह नहीं झलक पाता, हम भीतर तरंगों से भरे हैं और वह नहीं झलक पाता। इसलिए कहीं खोजने न जाएं, सिर्फ चुप बैठें, मौन बैठें और धीरे-धीरे

इस दिशा में थोड़ा प्रयोग करें कि कैसे मन के विचार क्षीण होते चले जाएं, क्षीण होते चले जाएं, और एक दिन आ जाए जिस दिन मन में कोई विचार न हो। हम हों, वह हो और बीच में कोई विचार न हो। बस उसी क्षण मिलन हो जाता है। और यह भी कठिन नहीं है बहुत। कठिन है, बहुत कठिन नहीं है। कठिन तो है ही, लेकिन बहुत कठिन नहीं है, असंभव नहीं है।
कैसे यह संभव होगा, एक छोटा सा सूत्र, और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा।
एक छोटे से सूत्र को ध्यान में रख लें, यह संभव हो जाएगा। आधा घंटे को चुपचाप बैठ जाएं रोज चौबीस घंटे में। और कुछ भी न करें, बस मन को देखते रहें, सिर्फ देखते रहें, जस्ट ऑब्जर्वेशन, सिर्फ देखते रहें--यह हो रहा है, यह हो रहा है, यह हो रहा है। मन में यह विचार आया, वह विचार आया, आया-गया, आया-गया। भीड़ लगी है, रास्ता चल रहा है। बस चुपचाप देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें। कुछ भी न करें, माला भी न फेरें, राम-राम भी न जपें, मंत्र भी न दोहराएं, कुछ भी न करें, बस इस मन को देखते रहें कि ये विचार चल रहे हैं, ये चल रहे हैं, ये जा रहे हैं, ये आ रहे हैं। रोकें भी न किसी विचार को, झगड़ें भी न, दबाएं भी न, किसी विचार को निकालें भी न। क्योंकि किसी विचार को निकालने गए कि फिर कभी न निकाल पाएंगे, असंभव है वह बात। दबाया किसी को, तो फिर उससे कभी छुटकारा न होगा। वह छाती में दबा हुआ खड़ा ही रहेगा सदा। लड़े किसी से कि हारे। लड़ना ही मत विचार से! जो विचार से लड़ेगा वह हारेगा। क्यों? इसलिए नहीं कि विचार बहुत मजबूत है और हम बहुत कमजोर हैं। इसलिए कि विचार है ही नहीं; छाया है। और छाया से लड़ने वाला कभी नहीं जीत सकता। आप बड़े से बड़े दैत्य से भी जीत सकते हैं, लेकिन किसी छाया से लड़े, फिर न जीत सकेंगे। इसका यह मतलब नहीं कि छाया बहुत मजबूत है। इसका कुल मतलब कि छाया वस्तुतः है ही नहीं। उससे लड़े कि बेवकूफ बने, अपने हाथ से मूढ़ बने, और गए, और हारे, और मिटे।
लड़ना मत, जूझना मत, निर्णय मत करना, रोकना मत, चुपचाप बैठ कर देखते रहना मन को। और अगर थोड़ा साहस रखा और भयभीत न हुए, और भागे न, और देखते रहे... क्योंकि भय लगेगा। क्योंकि जब मन को देखने बैठेंगे तो पाएंगे, क्या मैं पागल हूं? अगर दस मिनट एकांत में बैठ कर मन में जो चलता हो उसे लिख डालें ईमानदारी से, तो पति अपनी पत्नी को न बता सकेगा, पत्नी अपने पति को न बता सकेगी, मित्र अपने मित्र को न बता सकेगा कि यह मेरे दिमाग में चलता है। और अगर बताया तो घर भर के लोग चौंक कर देखेंगे और कहेंगे कि जल्दी अस्पताल ले चलो। ये बातें तुम्हारे दिमाग में चलती हैं? हालांकि जो कहेगा कि तुम पागल मालूम पड़ते हो, वह भी दस मिनट बैठेगा तो यही उसको भी पता चलेगा। और जिस डाक्टर के पास वे ले जा रहे हैं, अगर वह भी दस मिनट बैठेगा तो यही उसको भी पता चलेगा।
भयभीत न हुए अगर, भागे न, डरे न, चुपचाप देखते रहे... मन बिल्कुल पागल जैसा मालूम पड़ेगा। पागल में और हममें कोई बुनियादी फर्क नहीं है, सिर्फ डिग्री का फर्क होता है। कोई अट्ठानबे डिग्री का पागल है, कोई सौ डिग्री का, कोई एक सौ दो की भाप पर निकल गया, आगे चला गया है। इसलिए तो देर नहीं लगती है--एक आदमी का दिवाला निकला, तब तक वह ठीक था कल तक, अभी दिवाला निकला, वह पागल हो गया। एक आदमी ठीक था, उसकी पत्नी मर गई, वह पागल हो गया। एक आदमी ठीक था, कुछ गड़बड़ हुई, पागल हो गया। डिग्री का फर्क है। एक डिग्री इधर था, जरा ही ताप बढ़ गया, उस तरफ हो गया।
पागलखानों में जो हैं और पागलखानों के जो बाहर हैं, उनके बीच दीवाल का
ही फासला है, ज्यादा फासला नहीं है। और कोई भी आदमी फौरन दीवाल के भीतर हो सकता है। हम सब उत्ताप के करीब ही रहते हैं, लेकिन सम्हाले-सम्हाले चलते हैं।
तो जब बैठ कर देखेंगे तो लगेगा एकदम मैडनेस, पागलपन। पर साहस रखना और देखते चले जाना, मत डरना, मत भागना। तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे पागलपन क्षीण हो जाता है। सिर्फ देखने से, कुछ भी न करने से धीरे-धीरे भीतर एक नई चेतना जगने लगती है--देखने वाले की, द्रष्टा की, साक्षी की--और विचार खोने लगते हैं। एक दिन आ जाता है, निश्चित आ जाता है, जब विचार धीरे-धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। सिर्फ हम रह जाते हैं और कोई विचार नहीं रहता। सिर्फ चेतना रह जाती है--एक फ्लेम की तरह, एक ज्योति की तरह। जरा भी कंपती नहीं, जरा भी

हिलती नहीं। बस उसी अकंप, अडोल, अचल चेतना में वह दर्पण बन जाता है, जिसमें प्रभु के दर्शन होते हैं।
परमात्मा करे, इस दिशा में ख्याल आ जाए।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन रहस्य
तीसरा प्रवचन

स्वरूप का उदघाटन

समझने में मुश्किल पड़ती है। पहली बात तो यह समझने में मुश्किल पड़ती
है कि कहीं जाना नहीं है। यह समझना ही मुश्किल हो जाता है। हमारे चित्त की पूरी की पूरी व्यवस्था ऐसी है कि वह कहता हैः कहीं चलो, यहां कुछ भी नहीं है। पूरा चित्त ही इस तनाव से बना है कि कहीं चलो, वहां कहीं दूर मंजिल है। चित्त का आधार ही यही है कि मंजिल दूर हो, नहीं तो चित्त गया। क्योंकि मंजिल दूर है तो पाने की कोशिश करनी पड़ती है, सोचना पड़ता है, योजना बनानी पड़ती है, ढंग खोजने पड़ते हैं। और मंजिल दूर है तो आज तो मिल नहीं जाती, कल मिलेगी। इसलिए आज से कल के प्रति तनाव जारी रखना पड़ता है।
मन जीता है तनाव में। और सब तनाव गहरे में कहीं पहुंचने का तनाव है-- चाहे वह धन, चाहे यश, चाहे धर्म, चाहे मोक्ष। मन मरा उसी वक्त, जिस वक्त आपने कहा, कहीं नहीं जाना, जाना ही नहीं है कहीं। तो मन के अस्तित्व की सारी आधारशिला हट गई।
और जब तक आप कहीं जाने में लगे हैं, तब तक एक बात पक्की है कि अपने को जानने में नहीं लग सकते। क्योंकि यह दूर ले जाने वाला मन पास नहीं आने देता। और यह दूर ले जाने वाला मन इतना कुशल है कि फिर अगर दूर आप चले जाएं, तो यह कहता है कि पास जाने के लिए भी कोई रास्ता चाहिए।
जैसे एक आदमी यहां सोया रात और उसने सपने में देखा कि वह कलकत्ता चला गया है, तो वह किसी रास्ते से लौटाना पड़ेगा उसे कलकत्ते से यहां वापस? वह गया ही नहीं है! क्योंकि सच बात यह है कि हम जहां हैं वहां से वस्तुतः हम जा ही कैसे सकते हैं? जो हम हैं उससे अन्यथा हम हो कैसे सकते हैं? हम वहीं हैं, सिर्फ हमारा मन चला गया है, सिर्फ कामना चली गई है। मन भी क्या जाएगा! कामना चली गई है, डिजायर चली गई है दूर, हम वहीं खड़े हैं।
अब सवाल कुल इतना है कि जहां हम खड़े हैं, वहीं हम अपनी सारी डिजायर को, सारे विचार को, सारी कामना को वहीं रोक लें जहां हम खड़े हैं, तो जो हम हैं वह हमें पता चल जाए।
तो एक तो यह समझ में नहीं आता साधारणतः, क्योंकि जीवन का सारा अनुभव
यह कहता है कि मंजिल दूर है। और आत्मिक अनुभव की बात बिल्कुल उलटी है कि मंजिल दूर बिल्कुल नहीं है, बिल्कुल ही पास है। पास भी नहीं है, तुम ही हो मंजिल। तो जो मंजिल दूर हो उसको जोड़ने के लिए रास्ता चाहिए, विधि चाहिए, मेथड चाहिए, टेक्नीक चाहिए और समय चाहिए। आज तो हो ही नहीं सकता वह, अभी तो हो नहीं सकता, कभी होगा। फिर गुरु चाहिए, फिर बताने वाला गाइड चाहिए, क्योंकि मंजिल आगे है, भविष्य अंधकारपूर्ण है, हम वहां गए नहीं हैं कभी। तो कोई चाहिए जो बताए। भविष्य में मंजिल है तो फिर गुरु अनिवार्य है, शास्त्र अनिवार्य है। गाइड होगा, व्यवस्था होगी, विधि होगी, टेक्नीक होगी।
लेकिन मजे की बात यह है कि मंजिल यहीं है--अभी, इसी वक्त। कहीं जाना नहीं है खोजने, सिर्फ ठहर जाना है। और ठहर वह जाएगा जो खोज बंद कर दे। क्योंकि खोजने वाला मन ठहर कैसे सकता है? वह खोज रहा है, खोज रहा है।
नहीं खोज रहे हैं आप, नो-सीकिंग की एक हालत है। कुछ भी नहीं खोजना है,
बस हैं। तो इस क्षण में होगा क्या? इस क्षण में जब आप कहीं दूर नहीं होंगे, तो चेतना वहीं होगी जहां है। और यहां उदघाटन, एक्सप्लोजन होगा।
सभी विधियां इस बात को मान कर चलती हैं कि आप कहीं चले गए हैं या कहीं आपको जाना है। तो विधि मात्र की जो भूल है, वह हमारे जाने वाले मन में लगी हुई है। और जब विधि सीखेंगे तो फिर गुरु चाहिए। फिर सब आएगा पीछे से--सारी गुरुडम आएगी, आश्रम आएगा, संप्रदाय आएगा, अनुयायी आएंगे, वह सब आएगा। दूसरी मजे की बात है जो ख्याल में नहीं आती और वह यह है कि अगर किसी क्षण में कोई व्यक्ति कुछ भी नहीं खोज रहा और कुछ भी नहीं कर रहा, तो भी कहीं तो होगा। होगा तो ही, न खोजता हो, न करता हो, न सोचता हो, तो भी कहीं होगा। कहां होगा? अपने से अन्यथा होने के सब दरवाजे बंद हैं। न तो वह कुछ

कर रहा है कि जिसमें उलझ जाए, न वह कुछ सोच रहा है जिसमें फंस जाए, न वह कुछ खोज रहा है जिसमें वह चला जाए। न खोज रहा है, न सोच रहा है, न कर रहा है--नॉन-डूइंग, नॉन-सीकिंग, नॉन-थिंकिंग। होगा कहां? जाएगा कहां? मिट तो नहीं जाएगा। होगा तो फिर भी।
वह फिर वहीं होगा जहां है। कोई उपाय नहीं रहा उसका, बाहर जाने के दरवाजे गए। ये सब दरवाजे बाहर ले जाने वाले हैं। तब वह किसी स्थिति में, जिस स्थिति में होगा, वह उसका स्वभाव होगा, स्वरूप होगा। उसका उदघाटन करना है। और स्वरूप के उदघाटन के लिए सब मेथड बाधाएं हैं और सब रास्ते बाधाएं हैं, क्योंकि वे दूर ले जाते हैं, कहीं खोज पर ले जाते हैं।
यह एकदम से ख्याल में आना अति कठिन मालूम होता है। एक बार ख्याल में आ जाए तो इससे ज्यादा सरल कुछ भी नहीं है। लेकिन हमारा जो माइंड है, उसकी पूरी की पूरी व्यवस्था इसी भाषा में सोचने की है--कहां जाना है? क्या पाना है? कैसे जाना है? और जब कोई रास्ता बताता है तो हमारी समझ में पड़ता है कि ठीक बात कही जा रही है--रास्ता होगा, टेक्नीक होगी, पहुंचना होगा। सत्यानंद जी ने बहुत बढ़िया बात कही पीछे। उन्होंने कहा कि चाहे विधि
से और चाहे अ-विधि से, मेथड से, चाहे नो-मेथड से पहुंचना हमको वहीं है, पाना हमको वही है।
अब इसे अगर गौर से देखेंगे तो बहुत मजेदार है यह वक्तव्य, सत्यानंद जी
ने जो कहा, बहुत महत्वपूर्ण है। इसका मतलब क्या होता है? अगर आप यह कहते हैं कि चाहे विधि से और चाहे ना-विधि से, मंजिल तो एक ही है। तो फिर आप विधि खोज ही लेंगे, फिर विधि से आप नहीं बच सकते। क्योंकि विधि जुड़ी है मंजिल के साथ। फिर आप ना-विधि की बात ही नहीं सोच सकते। और मैं यह कह रहा हूं... इसलिए वे कह सकते हैं कि जो मैंने कहा वही उन्होंने कहा; मैं नहीं कह सकता यह कि जो मैंने कहा वही उन्होंने कहा। वह तो बिल्कुल ही उलटा है जो उन्होंने कहा हुआ है। यह मैं नहीं कह सकता यह बात, क्योंकि मैं बात ही और कह रहा हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मेथड से भी पहुंच जाता है कोई, नो-मेथड से भी पहुंच जाता है। मैं यह कह रहा हूं कि मेथड वाला पहुंच ही नहीं सकता, क्योंकि मेथड हमेशा भविष्य की तरफ इंगित करता है, मंजिल की तरफ। नो-मेथड अपनी तरफ इंगित करता है। क्योंकि नो-मेथड में मंजिल का कोई उपाय नहीं है, जाइएगा कहां? रास्ता नहीं है कोई। रास्ता तो कहीं ले जाता है। वह हमेशा कहीं ले जाता है। और यहां कठिनाई यह हो गई है आत्मिक जीवन की कि यहां हमें कहीं जाना नहीं है; जहां हम हैं वहीं एक क्षण को भी हमें हो जाना है। तो किसी भी रास्ते पर हम गए तो हम भटके।
तो इधर लोग तो कहते हैं कि रास्ता पहुंचाता है; और मैं कहता हूं, रास्ता मात्र भटकाता है। और सब मामले में बिल्कुल ठीक है यह बात कि अगर आपको स्टेशन जाना है तो रास्ते से जाएंगे और बंबई जाना है तो रास्ते से जाएंगे। एक मामले भर में यह बात गलत है, अगर अपने पर आना है तो रास्ते से आप नहीं आ पाएंगे, क्योंकि रास्ते पर चलना ही दूर निकलने की शुरुआत हो गई। तब क्या करें? तब सवाल यह उठता हैः करें क्या?
तो मेरा कहना यह है कि हम इस स्थिति को समझें ठीक से। यह पूरी सिचुएशन हमारी समझ में आ जाए कि ऐसा उलझाव है, अगर रास्ता पकड़ा तो भटक गए।

वे ऐसा ही समझाते हैं--अंदर जाने के लिए भी रास्ता है।

यह जो कठिनाई है न, असल में मजा यह है कि रास्ता मात्र बाहर जाने का होता है, क्योंकि अंदर तो हम हैं।

वे ऐसा ही समझाते हैं।

जो कठिनाई है... ऐसा तो है नहीं कि हम बाहर हो गए हैं और अंदर आना है।
अगर इसको ठीक से हम समझें तो ऐसा तो हो नहीं गया है कि हम बाहर हैं और हमें अंदर आना है। हम तो अंदर हैं ही, इसमें कोई उपाय ही नहीं है बाहर होने का।
यानी इसमें अगर कोई उपाय भी होता तो फिर उलटा उपाय भी होता। यानी आप क्या करके बाहर हो सकते हैं, मुझे बताइए? आप बाहर हो कैसे सकते हैं? आप जहां भी

जाएंगे, भीतर ही होंगे। बाहर जाने का तो कोई उपाय नहीं। लेकिन बाहर की कल्पना भर हो सकती है। आप जा नहीं सकते बाहर।
आप यहां बैठे हैं, आप कलकत्ता नहीं जा सकते; लेकिन कलकत्ता जाने का सपना देख सकते हैं, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। आंख बंद करके आप कलकत्ते जा भी सकते हैं--इस अर्थ में कि विचार चला जाए। आप लेकिन फिर भी यहीं होंगे। आप होंगे यहीं, आप होंगे अपने भीतर ही।
तो समझने की बात यह है कि हम भीतर तो हैं ही, इसलिए भीतर जाने का सवाल नहीं है। हम बाहर किन-किन रास्तों से चले गए हैं, उन रास्तों को छोड़ देने का सवाल है। जो प्रॉब्लम है असल में, अगर मैं इसी कमरे में बैठा हुआ हूं, तो मुझे इसी कमरे में आना नहीं है; सवाल सिर्फ यह है कि मुझे यह कमरा मिट गया है और मुझे कलकत्ता दिखाई पड़ रहा है। तो मैं विचार की किसी यात्रा से कलकत्ता पहुंच गया हूं। हूं इसी कमरे में, लेकिन एक अर्थ में कलकत्ते में हूं, यह कमरा मुझे दिखाई ही नहीं पड़ रहा, मैं कलकत्ते की स्टेशन पर खड़ा हुआ हूं, वह स्टेशन मुझे दिखाई पड़ रही है। तो मेरे सामने सवाल है कि मैं अपने घर कैसे वापस लौट जाऊं? अगर सच ही मैं कलकत्ता पहुंच गया होता तो कोई ट्रेन पकड़नी पड़ती, कोई कार पकड़नी पड़ती, कोई रास्ता पकड़ना पड़ता। अगर सच ही कलकत्ता पहुंच गया होता तो फिर इस कमरे तक आने के लिए कोई रास्ता पकड़ना ही होता। लेकिन चूंकि मैं सच में पहुंचा नहीं हूं, सिर्फ ड्रीम कर रहा हूं, इसलिए आने के लिए न कोई रास्ता... और अगर मैंने रास्ता पकड़ा तो और भटकाने वाला होगा, क्योंकि ड्रीम में पकड़े गए रास्तों का क्या मतलब हो सकता है? सिर्फ सवाल इतना है कि मैं इस तथ्य के प्रति जाग जाऊं कि मैं तो भीतर हूं ही, सिर्फ मेरा विचार बाहर चला गया है और मैं कभी अपने भीतर के बाहर नहीं गया। तो फिर अब सवाल क्या है?
अब सवाल यह रह गया है कि विचार न जाए। और विचार चला क्यों गया है?
मैंने भेजा है इसलिए चला गया है। और मैंने भेजा इसलिए है कि कलकत्ते में कुछ मिलने को है जो यहां नहीं मिल रहा है, इसलिए चला गया है। कोई आकांक्षा है जो वहां तृप्त होती, यहां तृप्त नहीं हो रही है, इसलिए चला गया है।
विचार चला गया है वासना के वाहन पर बैठ कर और हम वहीं हैं। यानी यह जो बेसिक ट्रुथ अगर ख्याल में आ जाए कि हम वहीं हैं, वासना के वाहन पर बैठ कर विचार चला गया है।
समझ लें, एक आदमी यहां बैठा है, कलकत्ते में विचार है। अब वह कहता है, मैं कैसे घर लौटूं? तो उसको हम कहें कि तुम हवाई जहाज पकड़ो और लौट जाओ! तो वह कहां जाएगा? कहां का हवाई जहाज पकड़ेगा? वह जितना कलकत्ता झूठा है, उतना ही कलकत्ते में पकड़ा गया हवाई जहाज होगा। कलकत्ते में वह है ही नहीं आदमी। वह जितना झूठा हवाई जहाज होगा, उतनी झूठी टिकट होगी, उतना ही झूठा हवाई जहाज का पायलट होगा, उतना ही हवाई जहाज तक पहुंचाने वाला गाइड होगा। क्योंकि कलकत्ता में होना चूंकि बुनियादी रूप से झूठा है, इसलिए अब कलकत्ते में जो भी किया जाएगा वह सच तो हो नहीं सकता, वह झूठ ही होगा। और झूठ लौटाने वाला नहीं होता।
इसलिए सवाल सिर्फ इतना है कि हमें यह जानना है... यह हमें आना नहीं है अपने भीतर, आते तो हम तब जब हम बाहर चले गए होते। हम भीतर हैं, आना हमें है नहीं, गए हम हैं नहीं, सिर्फ विचार हमारा बाहर चला गया है। विचार न हो जाए, हम फौरन पाएंगे कि हम भीतर हैं। जैसे कि आप बैठे दिवा-स्वप्न में खो गए कि कलकत्ते थे और मैंने आपको आकर हिला दिया, तो आप कलकत्ते में थोड़े ही जगेंगे, आप जगेंगे यहां! और कलकत्ते से लौटने के लिए कोई वाहन काम में नहीं आएगा, कोई जरूरत नहीं वाहन की।
यह जो बुनियादी सत्य है कि हम कभी अपने से बाहर गए ही नहीं हैं! हम जिसके बाहर जा सकते हैं, वह हमारा स्वरूप नहीं हो सकता। जो हमारा बुनियादी स्वरूप है उससे हम बाहर जा कैसे सकते हैं? लेकिन हम गए हुए मालूम पड़ते हैं। एक तो भूल यह हो गई है कि हम गए हुए मालूम पड़ते हैं, एक झूठ यह हो गया। अब दूसरा झूठ इसमें यह पालना है कि हम लौटें कैसे? तो मेथड, रिलीजन, पूजा, रिचुअल, ये सब हम पकड़ेंगे। ये लौटने के रास्ते हम पकड़ रहे हैं।

अब यह बड़े मजे की बात है कि जिस आदमी का जाना ही भूल भरा है, उसके लौटने
की क्या बात है? उस आदमी को सिर्फ इतनी बात के प्रति सजग करना जरूरी है कि तुम कहीं गए ही नहीं हो, अनंत काल से तुम वहीं हो। लेकिन अनंत काल से तुम्हारा चित्त भटक रहा है, कल्पना भटक रही है, ड्रीम में तुम खो रहे हो। तो कृपा करो, थोड़ी देर के लिए ड्रीम मत लो, थोड़ी देर के लिए सोचो मत, थोड़ी देर को वहीं हो जाओ जहां हो। तो तुम पा लोगे, जो पाया ही हुआ है।
इसलिए सवाल मेथड का नहीं है, नो-मेथड का है। क्योंकि मेथड ले जाने वाला है, रास्ता ले जाने वाला है। इसलिए पाथ का सवाल नहीं है, नो-पाथ का सवाल है। गुरु कहीं पहुंचाने वाला है। हमें कहीं पहुंचना ही नहीं है, हम वहीं हैं। कौन गुरु हमको वहां पहुंचा सकता है? इसलिए गुरु की कोई जरूरत नहीं है, इसमें गुरु का कोई सवाल नहीं है। गुरु तो उसी ड्रीम-लैंड का हिस्सा है जिसमें हम भटकने को सच मानते हैं, फिर हम ले जाने वाले को भी सच मानते हैं। फिर उसके चरण को छूते हैं, फिर उसको गुरु मानते हैं। और वह जो हमको ले जा रहा है, वह कहां ले जाएगा हमको? क्योंकि कलकत्ते में हम हैं नहीं।
मेरी जो सारी बात है वह कुल इतनी है कि बीइंग हमारा सदा वहीं है जहां
है और चित्त हमारा सदा वहां है जहां हम नहीं हैं। ऐसे चित्त में और हमारे बीच में एक फासला पड़ गया है। यह फासला बिल्कुल काल्पनिक है। यह वास्तविक डिस्टेंस अगर होता, तो बिल्कुल ही रास्ते की जरूरत पड़ जाती। लेकिन यह फासला बिल्कुल झूठा है।
इस फासले को मिटाने के लिए कुछ और करने की जरूरत नहीं, यह जो चित्त के जाने की आदत है, इसको समझने की जरूरत है--कि क्यों, जाता क्यों है बाहर? क्यों जाता है?
जाता है इसलिए कि वहां कुछ मिल जाएगा। फिर एक गुरु आता है, वह कहता है, अगर मोक्ष पाना है... तो वह एक नई डिजायर पैदा करवा रहा है। वह यह कह रहा है, मोक्ष वहां है। संसार की चीजें तो यहीं मिल जाएंगी जमीन पर, वह मोक्ष यहां जमीन पर भी नहीं है। वह वहां, सिद्ध-शिला बहुत दूर है उसकी, वहां मोक्ष है। वह तुम्हें पाना है? वहां शांति है, वहां आनंद है, वहां परम अमृत बरस रहा है। आपका लोभ जगा, ग्रीड जगी। हुआ क्या आपके भीतर? आपके भीतर लोभ जगा कि ऐसी शांति मुझे भी चाहिए, ऐसा आनंद मुझे भी चाहिए, यह मोक्ष मुझे भी चाहिए। और मजा यह है कि लोभ ही आपको बाहर ले जाने का माध्यम था। और आपने कहा, मुझे मोक्ष भी चाहिए, रास्ता बताओ! तो अब मोक्ष बिल्कुल अंधेरे की बात है। इसलिए उसमें सब तरह के गुरु चल सकते हैं। उसमें किसी गुरु को कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकता। क्योंकि उसमें कहीं जाने को कुछ होता, तो उसमें अब तक एक गुरु जीत गया होता, उसमें कोई दिक्कत न थी। क्योंकि कहीं न कहीं हमने एक पक्की बात पकड़ ली होती कि भई यह रास्ता है। जैसे विज्ञान है, उसमें गुरु जीत जाता है एक, बाकी हार जाते हैं। क्योंकि मामला रियलिटी से संबंधित है। अब यह जो मोक्ष की आपकी आकांक्षा जग गई, लोभ जग गया--और शांति चाहिए, आनंद चाहिए, सौंदर्य चाहिए--लोभ जग गया, अब आप चले, और लंबी यात्रा पर निकले।
तो इस जमीन की यात्राएं तो फिर भी वास्तविक हैं, यह एक ऐसी यात्रा पर
आप जा रहे हैं जहां बिल्कुल अंधा खेल है, जहां गुरु जो कहेगा... इसलिए गुरु कहता है, ओबिडियंस चाहिए, शक नहीं चाहिए, डाउट नहीं चाहिए। क्योंकि डाउट और ओबिडियंस, अगर ओबिडियंस नहीं है और डाउट है, तो आपको गुरु कहीं ले जा नहीं सकता एक इंच। इसलिए पहले इनका इंतजाम करता है--कि शक किया कि भटके, संदेह किया कि गए। आज्ञा पूरी! गुरु जो कहे वह परम सत्य है। तुम जानते नहीं हो, हम जानते हैं। तो हम जो बताते हैं, तुम उस पर शक कैसे कर सकते हो? तुम जानते ही नहीं हो। जब तुम जान लोगे तब ठीक है। हमारे पीछे आओ! अब यह एक अंधेरा रास्ता शुरू हुआ, क्योंकि जहां हम गए नहीं थे, वहां से यह आदमी हमको लौटाने का रास्ता बताने लगा।
एक बात भर अगर ठीक से ख्याल में आ जाए तो सवाल सिर्फ इतना है कि हमने
जो विचार की किरणें बाहर भेज दी हैं, वे हमारी वापस लौट आएं। और वापस लौटने के लिए भी कुछ होना नहीं है, कि वे लौटेंगी सच में वापस। क्योंकि सच में लौटने की बात नहीं है। सिर्फ कल्पना में हम चले गए हैं। और कल्पना इसलिए चली गई है कि वह लोभ पर सवार हो गई है। और फिर लोभ पर सवार हो रही है--मोक्ष,

स्वर्ग, मुक्ति--फिर लोभ पर सवार हो रही है। और इसी लोभ का शोषण कर रहा है गुरु। गुरु जो है वह लोभ का शोषण कर रहा है।
इसलिए जिनकी धन की तृप्ति हो जाएगी, वे फिर धर्म के लोभ में पड़ जाएंगे। क्योंकि अब यह तो मिल गया, अब ठीक है, अब मोक्ष भी चाहिए। वह लोभ का शोषण कर रहा है गुरु। वह कह रहा है कि हम तुम्हें दिलवा देंगे जो चीज तुम्हें चाहिए। और इसीलिए मैं कहता हूं, सब गुरुडम भ्रांत है और खतरनाक है। ऐसा नहीं है कि कोई अच्छा गुरु होता है और कोई बुरा होता है, ऐसा नहीं; गुरु मात्र गड़बड़ है।
और दूसरी बात, बहुत सी बातें एकदम से इस ख्याल में न आने की बड़ी मुश्किल हो जाती है। अब जैसे कि कोई भी एक टेक्नीक है, कोई भी टेक्नीक है, करेंगे क्या टेक्नीक में? मन कुछ करेगा, कुछ भी करे! अगर राम-राम, राम-राम, राम-राम, राम-राम... वही सिखाते हैं कि इसको जपो। अल्लाह वाला है तो अल्लाह, और जीसस वाला है तो जीसस। इसकी कोई फिकर नहीं करते, जो तुम्हारा नाम है वही जपो। उसको जोर से जपते रहो, जपते रहो। इस पूरे जपने की प्रक्रिया में किसी भी एक शब्द पर अगर आदमी का मन ठहरा लिया जाए तो मूर्च्छित हो जाता है। हिप्नोसिस की तरकीब ही इतनी है कुल जमा। तो इससे आप अपने पर नहीं आते हैं। कलकत्ता तो चला जाता है, आप अपने पर नहीं लौटते, आप मूर्च्छा में चले जाते हैं। यानी स्वप्न से निद्रा में चले जाते हैं आप, स्वप्न से जागरण में नहीं आते। क्योंकि कोई भी पुनरुक्ति... अब वे बड़ी उलटी बात कर रहे थे... कोई भी पुनरुक्ति डल करती है दिमाग को। और इसलिए हम सबका दिमाग धीरे-धीरे डल होता जाता है, क्योंकि हमें चौबीस घंटे पुनरुक्ति करनी पड़ती है--रोज वही, रोज वही, रोज वही। उससे डलनेस आती चली जाती है। और जो ताजगी है मस्तिष्क की वह खत्म होने लगती है, क्योंकि सब रूटीन हो जाता है।
इसलिए नये का हमें इतना आनंद होता है। आप अगर अहमदाबाद से ऊब गए हैं
तो पहलगांव अच्छा लगता है। उसके अच्छे लगने का कारण पहलगांव कम है, अहमदाबाद ने डलनेस पैदा कर दी, रिपीटीशन, रोज-रोज वही, उससे आप ऊब गए। लेकिन यहां जो रह रहा है, उसको पहलगांव में कोई आनंद नहीं आ रहा। वह सोच रहा है कि कब अहमदाबाद देख ले, बंबई देख ले, पूना देख ले। और जिस दिन देखेगा, इतना ही आनंदित होगा जितना आप हुए हैं। क्योंकि उसकी यह रूटीन हो गई थी, उसको यह डल हो गया था, अब इसमें कुछ देखने की बात न थी, सब वही था--रोज वही सूरज था, रोज वही चांद था, रोज वही पहाड़ थे, रोज वही दरख्त थे। आपने भी पहले दिन जैसे दरख्त देखे होंगे, आज नहीं देखे होंगे। वह बात गई। अब वह रिपीटीशन हो गया। माइंड डल हो जाता है फिर रिपीटीशन से। ऐसा भी हो सकता है कि इस पहाड़ पर रहने वाला आदमी अब पहाड़ को देखता ही न हो। यह कोई कठिन बात नहीं है। आप भी यहां रह जाएंगे चार-छह महीने तो पहाड़ फिर नहीं दिखाई पड़ेगा और न पौधे दिखाई पड़ेंगे, माइंड डल हो जाएगा, रिपीट हो गई बात।
नये के प्रति माइंड जगता है और पुराने के प्रति डल हो जाता है। फिर, हम
जो भी करते हैं, वह सभी तो रिपीटीशन हो जाता है। सभी रिपीटीशन हो जाता है। कुछ भी करेंगे तो रिपीट करेंगे। रिपीटीशन में वह सब डलनेस आ जाएगी।
और मजे की बात यह है कि अगर हम कुछ न करें, सिर्फ हों, तो चूंकि वहां हम कुछ करते ही नहीं, इसलिए रिपीट करने का प्रश्न ही नहीं उठता। वह अनरिपीटेबल एक्सपीरिएंस है। क्योंकि हम कुछ करते ही नहीं जिसको हम रिपीट कर सकें। कुछ करते तो रिपीट हो सकता था। हम कुछ करते ही नहीं; हम सिर्फ होते हैं। तो एक रिजर्वायर हो जाता है माइंड का। कहीं नहीं जा रहा बाहर। जैसे कोई झरना कहीं नहीं जा रहा, ठहर गया। चारों तरफ बांध है, झरना एक झील बन गया। कहीं जा नहीं रहा, कहीं जाने की कोई बात ही नहीं। शांत झील है, एक लहर भी नहीं है। तो सारी शक्ति, सारी ताजगी, सारा युवापन उस स्थिति में पैदा हो जाएगा। वह युवापन, वह शक्ति, वह डायनेमिक फोर्स क्रिएट करेगी बहुत कुछ, लेकिन तब आप आकुपाइड नहीं होंगे। वह क्रिएट करेगी। वह उसका आटोमेटिक है। जैसे वृक्ष से फूल आ रहा है, ऐसा आपसे भी चीजें आएंगी। लेकिन आप फिर उनको कर नहीं रहे हैं, वे हो रही हैं। और जब हो रही हैं, तब आपके मन का बोझ गया, तब आपके मन पर कोई बोझ नहीं है, कोई भार नहीं है। ऐसी स्थिति में जो अनुभव होगा, वह अनुभव तो मुक्ति का है, निर्भार होने का है।

लेकिन चाहें तो इस तरह की शांति के झूठे अनुभव पैदा कर सकते हैं। और
मन की सबसे बड़ी ताकत यह है कि वह झूठे अनुभव प्रोजेक्ट कर सकता है। कोई भी अनुभव, वह चाहे तो प्रोजेक्ट कर सकता है।
केदारनाथ हिमालय में थे कोई तीस वर्ष तक। और तीस वर्ष में उनको पक्का अनुभव हो गया कि भगवान के दर्शन हो गए हैं। भगवान रोज दिखाई पड़ने लगे, बातचीत होने लगी, सब दर्शन हो गया। शक का कोई उपाय भी न था। जब सामने ही भगवान दिखते हों तो अब और क्या संदेह करना! बात होती हो, चीत होती हो। और अकेले थे! फिर वहां से लौटे। लौट कर उन्हें एक, नीचे आकर, क्योंकि जो भगवान उन्हें दिखते थे, उनके पड़ोसी को तो नहीं दिखते थे। तो उन्हें एक शक पकड़ा कि कहीं यह मेरा इल्यूजन ही तो नहीं है सिर्फ, यह जो मैं देख रहा हूं? तीस साल निरंतर भूखे-प्यासे, इसी-इसी की धारणा करने से कहीं दिखाई तो नहीं पड़ने लगा? तो उन्होंने कहा कि वह जो अभ्यास करता रहा हूं, उसे छोडूं कुछ दिन के लिए, और फिर भी अगर ये दिखाई पड़ते रहें तो समझूंगा कि अभ्यासजन्य नहीं हैं, सच में हैं। लेकिन अभ्यास गया कि भगवान गए। वह तो अभ्यासजन्य हैं।
एक सूफी फकीर को मेरे पास लाया गया। तो वह, सबमें भगवान दिखाई पड़ते हैं उसे--पौधे में, पत्थर में--सबमें भगवान दिखाई पड़ते हैं। चलता भी है रास्ते पर तो सब तरफ भगवान को ही देखता हुआ, बड़ा आनंदित! मेरे पास उसे कुछ मुसलमान लेकर आए। उन्होंने कहा कि ये बहुत अदभुत फकीर हैं! सब तरफ भगवान ही भगवान, कण-कण में वही दिखाई पड़ते हैं।
मैंने उनको कहा कि ये आपको अचानक दिखाई पड़े या आपने कोई इंतजाम और योजना की थी?
उन्होंने कहा कि अचानक तो कुछ भी नहीं हो सकता। और अचानक का भरोसा भी नहीं किया जा सकता। जैसा अभी महेश जी ने कहा, अचानक का भरोसा भी नहीं किया जा सकता। तो व्यवस्था की मैंने, साधना की, एक-एक चीज में भगवान देखना शुरू किया। फूल दिखे तो मैं कहूं भगवान है। लेकिन वह तीस साल पहले की बात है। फिर निरंतर अभ्यास करते-करते, करते-करते दिखाई पड़ने लगा। अब तो भगवान मुझे सब जगह दिखाई पड़ता है।
तो मैंने उनसे कहा कि आप तीन दिन मेरे पास रुक जाएं और अभ्यास बंद कर दें।
उन्होंने कहा, अभ्यास मैं कैसे बंद कर सकता हूं?
मैंने कहा, अब भी आप अभ्यास बंद नहीं कर सकते, जब कि भगवान दिखाई पड़ने लगा सब तरफ? तो अब भी आपके अभ्यास पर ही निर्भर है उसका दिखाई पड़ना? यानी अभी भी वह दिखाई नहीं पड़ा है!

मेंटल प्रोजेक्शन है!

हां, प्रोजेक्शन है। तो उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, ऐसा नहीं, मुझे तो दिखाई पड़ने लगा है।
तो मैंने कहा, तीन दिन रुक जाएं।
तो वे तीन दिन मेरे पास रुक गए। शायद दूसरे दिन की रात को ही कोई दो बजे रात उन्होंने रोना शुरू किया। तो मैं उठ कर गया, मैंने कहा, क्या हुआ? वे तो बहुत चिल्लाने लगे कि मेरा सब बर्बाद कर दिया! सब मेरा नष्ट हो गया! और मैं कैसे आदमी के पास आ गया, किन कर्मों के फल की वजह से मैं आपके पास आया। मेरा तो सब खो गया। कोई डेढ़ दिन से अभ्यास नहीं किया तो मुझे कुछ नहीं दिखाई पड़ता। फूल फूल दिखाई पड़ता है, पत्ता पत्ता दिखाई पड़ता है, मेरा सब अनुभव नष्ट हो गया।
मैंने उनको कहा कि जो अनुभव तीस साल साधने से दिखा और डेढ़ दिन न साधने
से खो जाए, उस अनुभव का मतलब समझते हैं? वह आपका प्रोजेक्शन है, जिसको कांसटेंटली प्रोजेक्ट करते रहो तो ही खड़ा रह सकता है, नहीं तो खड़ा नहीं रह सकता। आपने, जैसे कि हम फिल्म प्रोजेक्ट कर रहे हैं, तो वहां पर्दे पर कुछ है तो है नहीं, वह हम प्रोजेक्ट कर रहे हैं तो है। और एक सेकेंड को यहां प्रोजेक्शन का बंद किया काम कि वहां फिल्म नदारद हुई, वहां पर्दा खाली हो गया। जैसे पर्दे पर हम कुछ चीजें देख सकते हैं, वैसे ही मन के पर्दे पर

प्रोजेक्ट कर सकते हैं। लेकिन जब तक वह जारी रहेगा, तब तक वे दिखाई पड़ती रहेंगी।
अब मेरा कहना यह है कि वह दिखाई पड़ना चाहिए जो हमारे अभ्यास पर निर्भर
न हो। इसलिए मैं सिस्टम का विरोधी हूं, क्योंकि सिस्टम हमारी होगी, टेक्नीक हमारा होगा।
वह महेश जी ने जो कहा, उन्होंने ठीक कहा कि यह ज्यादा सेफर है, सुरक्षित है, व्यवस्थित है, सब गणित का हिसाब है। इसको ऐसा करोगे तो ऐसा होगा। और यह बिल्कुल ठीक कह रहे हैं वे, ऐसा करोगे तो ऐसा होगा।
लेकिन वह जो होगा, वह इस करने पर निर्भर है, वह इसकी बाइ-प्रोडक्ट है।
वह ऐसा कर रहे हैं, इसीलिए हो रहा है। यानी यह ऐसा है जैसे कि मैंने शराब पी और मुझे बड़े-बड़े फूल दिखाई पड़ने लगे और मैंने आपसे कहा कि आप भी शराब पीओ तो आपको भी बड़े-बड़े फूल दिखाई पड़ेंगे। अगर न दिखाई पड़ें तो मुझसे आप कहना। आपने भी शराब पी है और आपको भी बड़े फूल दिखाई पड़े। और आपने कहा कि बिल्कुल ठीक कहते थे, फूल बड़े दिखाई पड़ते हैं, फूल बड़े हैं।
शराब ने अगर फूल बड़े दिखा दिए तो फूल बड़े नहीं होते, शराब सिर्फ आपकी स्टेट ऑफ माइंड को हिप्नोटिक कर देती है, कुछ और नहीं होता। सवाल यह नहीं है कि हम क्या देख लें। सवाल यह है कि क्या है? यह सवाल नहीं है कि हम क्या रियलाइज कर लें। सवाल यह है कि व्हाट इ.ज? है क्या असल में? हमें कुछ नहीं रियलाइज करना है, हमें कुछ प्रोजेक्ट नहीं करना, हम कोई पक्का लेकर नहीं जाते कि हमको यह देखना है, यह अनुभव करना है, यह प्रतीति करनी है। पक्का करके जाएंगे तो सब हो जाएगा, क्योंकि माइंड का जाल इतना अदभुत है, खेल इतना अदभुत है कि माइंड सब चीजें दिखला देता है जो आप देखना चाहें। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।
तो वह जो दो-तीन उनकी महिलाएं कह रही थीं कि हमको तो हो रहा है, वे ठीक
कह रही हैं।

वे समझते नहीं; इल्यूजन है, ऐसा वे समझते नहीं।

नहीं, वे समझ कैसे सकते हैं? वे समझ ही नहीं सकते न। वे समझ इसलिए नहीं सकते, और डर है समझने में, वह जो भय है वह भय यह है कि अगर यह समझा कि इल्यूजन है, तो गया यह अभी हाथ से सब। और अभी चला जाएगा उनमें से आधे का तो। आपको ख्याल में नहीं है, वह आधे का गया, आज ही रात मुश्किल हो जाएगा उनका सोना। क्योंकि वह एक दफे ख्याल भर आ जाए--कि कहीं यह इल्यूजन तो नहीं है? यह मैं नहीं कह रहा कि है ही, मैं इतना ही ख्याल दिला दूं कि कहीं इल्यूजन तो नहीं है! और इतना ख्याल आपको पकड़ जाए, इल्यूजन कल सुबह ही नहीं आएगा। क्योंकि वह संदेह जो पड़ गया, वह इल्यूजन को काट देता है फौरन। वह कल सुबह ही दिक्कत पड़ जाएगी। गया वह। क्योंकि एक दफा डाउट आ जाए कि यह जो मैं देख रहा हूं, है भी? बस!
वह तो अनडाउटिंग माइंड ही इल्यूजन क्रिएट कर सकता है। जो शक करता ही नहीं कभी, संदेह करता ही नहीं, वही इल्यूजन क्रिएट कर सकता है।
फिर, ये जो, ये इल्यूजन, इनके एक्सपीरिएंस, सब फाल्स हो सकते हैं अगर मेंटली प्रोजेक्टेड हैं।
जैसे कि वहां अमरीका में और फ्रांस में कुवे का एक मत चलता है। फ्रेंच विचारक था--कुवे। तो वह कहता है, जो सोचो वही हो जाओ। वह कहता है कि अगर तुम बीमार हो, तो तुम सोचो कि मैं स्वस्थ हूं, मैं स्वस्थ हूं, मैं स्वस्थ हूं, तो तुम स्वस्थ हो जाओगे। और बड़े मजे की बात यह है कि बीमारी नहीं मिटती है और आदमी स्वस्थ अनुभव करने लगता है। यानी जो आदमी कल चल नहीं सकता था सड़क पर, वह चलने लगेगा। जो आदमी कल बिस्तर नहीं छोड़ सकता था, बिस्तर छोड़ देगा। ताकत आती हुई मालूम पड़ेगी। वह बीमारी अपनी जगह खड़ी है, बीमारी कहीं गई नहीं। बीमारी अपनी जगह खड़ी रहेगी। और यह आदमी अगर खाट पर ही पड़ा रहता तो शायद बीमारी मिटा सकता था किसी वास्तविक इलाज से। अब यह बीमारी का इलाज भी नहीं करेगा। क्योंकि एक इल्यूजन में अब खड़ा हो गया कि मैं स्वस्थ हूं! कौन कहता है कि मैं बीमार हूं? कुवे कहता है, कोई तुमसे कहे कि बीमार हो, तो

मानो ही मत। इनकार कर दो उसकी बात को। क्योंकि तुमने माना कि तुम बीमार हो जाओगे।
जरूर ऐसी बीमारियां हैं कि मानने से हो सकती हैं, लेकिन वे झूठी हैं।
और ऐसा स्वास्थ्य भी है जो मानने से हो सकता है, वह झूठा है। और असली और नकली स्वास्थ्य में फर्क करना बड़ा मुश्किल है, कि आप माने बैठे हैं कि आप सच में स्वस्थ हैं।
तो मेरा कहना है, फर्क एक हैः नकली स्वास्थ्य को आपको मान-मान कर पैदा करना पड़ता है, असली स्वास्थ्य को आपको मान-मान कर पैदा नहीं करना पड़ता। आप न मानो तो भी वह है। असली स्वास्थ्य जो है वह है, आपको मानना नहीं पड़ता। नकली स्वास्थ्य को मान-मान कर पैदा करना पड़ता है।
तो शांति भी पैदा की जा सकती है जो नकली है; स्वास्थ्य भी पैदा किया जा सकता है जो नकली है; प्रकाश भी पैदा किया जा सकता है; भगवान भी पैदा किए जा सकते हैं जो नकली हैं। और नकली का पैदा करना सरल है एकदम, क्योंकि माइंड उसके लिए एकदम राजी हो जाता है। वह माइंड के लिए बड़ा सरल है। असली को जानना कठिन है, क्योंकि उसके जानने के लिए माइंड को विदा करने की जरूरत है। और माइंड हमेशा सिक्योरिटी मांगता है। वह अगर इस कमरे में भी रात सोएगा, तो वह पता लगा लेगा कि सब ताले, दरवाजे बंद हैं, कोई खतरा तो नहीं है। वह अगर कोई किताब भी पढ़ेगा, तो पहले पक्का पता लगा लेगा कि किताब अच्छी है, कोई खराब बातें तो इसमें नहीं लिखी हुई हैं। वह अगर किसी गुरु को पकड़ेगा, तो पहले पचास लोगों से पूछ लेगा कि भई यह गुरु ठीक है, किसी को पहुंचाया है इसने। तो फिर मैं भी इसके पीछे जाऊं। माइंड जो है वह सिक्योरिटी मांगता है। क्योंकि वह डरता है कहीं मर न जाए। और मजा यह है कि अगर आप उसको सिक्योरिटी देते चले जाते हैं सब तरह की, तो वह मजबूत होता चला जाता है, सुरक्षित होता चला जाता है।
संन्यासी का मतलब हैः जो कहता है, हम कोई सिक्योरिटी नहीं मांगते, हम इनसिक्योरिटी में जीते हैं। हम नहीं कहते कि कल कुछ मिलेगा कि नहीं मिलेगा। कल सुबह देखेंगे। यह आदमी बुरा है या भला, हम क्यों सोचें? बहुत से बहुत यह होगा कि रात बिस्तर ले जाएगा उठा कर तो ले जाएगा। यह मैं काहे के लिए निर्णय करूं कि यह आदमी कैसा है? हम कुछ सोचते ही नहीं। हम जीते हैं चुपचाप एक-एक क्षण में। इतनी इनसिक्योरिटी में जो जीता है, उसके ही माइंड में एक्सप्लोजन हो सकता है। क्योंकि माइंड फिर जी नहीं सकता, माइंड को मरना पड़ेगा। माइंड को चाहिए थी सुव्यवस्था, वह व्यवस्था खतम हो गई। वह कहता था, खीसे में पैसे लेकर चलो। वह कहता था, बैंक में इंतजाम रखो। वह कहता था, भगवान के पास भी पुण्य की व्यवस्था रखो। सब हिसाब करके रखो ताकि कुछ गड़बड़ न हो जाए। और जितना ज्यादा हिसाब, उतनी मृत चीज उपलब्ध होती है। वे जो कह रहे थे न कि इतनी सेफ्टी, इतनी... तो बहुत लंबा हो गया था, कुछ बात करने का मतलब न था। वह जितनी सिक्योरिटी, जितनी सेफ्टी, उतना डेड आदमी। और जितनी इनसिक्योरिटी, जितनी जोखिम, जितनी रिस्क, उतना लिविंग आदमी। और मजा यह है कि भगवान के मामले में भी जोखिम लेने की तैयारी न हो, वहां भी हम पक्का ही करके चलें सब, तो फिर, फिर बहुत मुश्किल होगी।
भगवान का मतलब ही यह है, वह जो अननोन हमें चारों तरफ से घेरे हुए है। उसमें तो हमें कूद पड़ना पड़ेगा किनारे को छोड़ कर। किनारा सिक्योर था बिल्कुल। वहां कोई खतरा न था। डूबने का कोई डर न था किनारे पर। किनारा बहुत सुरक्षित है। और किनारे पर जो खड़ा है वह जिंदगी भर खड़ा रह सकता है। लेकिन सागर का अनुभव तो उसी को मिलता है जो कूद जाए किनारे से। खतरा है वहां। खतरा है इसलिए जिंदगी है वहां। और हमारा मन चूंकि निरंतर यह मांग करता है कि सब व्यवस्थित, सिस्टेमैटिक होना चाहिए...
और बड़े मजे की बात यह है कि जिंदगी बिल्कुल सिस्टेमैटिक नहीं है, जिंदगी बहुत अनार्किक है। और अनार्किक है इसीलिए लिविंग है।
आप फर्क कर लें! एक पत्थर बहुत सिस्टेमैटिक है, एक फूल उतना सिस्टेमैटिक नहीं है। फूल में जिंदगी है। पत्थर कल भी वहीं था, आज भी वहीं है, परसों भी वहीं होगा। और फूल सुबह वहां था, सांझ नहीं है। उसका कोई भरोसा नहीं है। अभी है, जोर की हवा चलेगी, गिर जाएगा। अभी है, सूरज निकलेगा, कुम्हला जाएगा। अभी है, वर्षा आएगी, मिट जाएगा। पत्थर वहीं होगा, पत्थर

बहुत सिस्टेमैटिक है। कहना चाहिए, पत्थर बहुत कंसिस्टेंट है, जैसा है वैसा ही सदा वहीं बैठा हुआ है। लेकिन पत्थर डेड है इसी अर्थों में। और फूल में एक लिविंग क्वालिटी है।
तो मेरा कहना यह है कि जिस व्यक्ति को जितने गहरे सत्य की तरफ जाना हो, उतने सुरक्षा के इंतजाम छोड़ कर जाना चाहिए। उसे जान लेना चाहिए कि खतरे में मैं जाता हूं। सुरक्षित तो जिंदगी यहीं है, वहां तो खतरा है। लेकिन जो परम खतरे में उतरने की तैयारी करता है, यह खतरे में उतरने की तैयारी ही उसके भीतर ट्रांसफार्मेशन बन जाती है। क्योंकि इस खतरे में जाना, बदल जाना है। सब व्यवस्था छोड़ कर, सब सुरक्षा छोड़ कर जो उतर जाता है अनजान में, यह उतरने की तैयारी ही, यह करेज ही उसके भीतर म्यूटेशन बनता है, उसके भीतर परिवर्तन हो जाता है। और जितनी बड़ी असुरक्षा में जाने को हम तैयार हैं, उतने ही हम वस्तुतः सुरक्षित हो जाते हैं, क्योंकि फिर कोई भय न रहा, फिर कोई डर न रहा।
यह जो सारा हमें लगता है न नाप-जोख कर चलना एक-एक इंच, उन्हीं सब नाप-जोख वालों ने तो स्वर्ग-नरक के नक्शे बना दिए हैं, योजन की दूरी बता दी है कि इतनी दूर फलानी जगह, ताकि पक्का रहे, कोई चीज अनजानी न रह जाए। लेकिन कुछ है जो अनजाना है निरंतर। और वही परमात्मा है। वही जीवन है जो अनजाना है। जो मृत है, वह कल उसके बाबत हम सुरक्षित हो सकते हैं। जो जीवित है, वह कल कैसा होगा, कुछ भी कहना मुश्किल है। जीवंत के साथ बड़ी कठिनाई है। और हम सब व्यवस्था जमा कर उसको मार लेते हैं।
और मजे की बात यह है कि जब भी सिस्टम बनाई जाए, तो वह झूठी हो जाती है। झूठी इसलिए हो जाती है कि उसमें कंट्राडिक्शंस बर्दाश्त नहीं किए जा सकते हैं। तो उसमें कंट्राडिक्शंस अलग कर देने पड़ते हैं। यानी वह ऐसा है, जैसे कोई पेंटर एक चित्र बनाए, तो वह काला रंग भी लाता है, सफेद रंग भी लाता है, और सफेद और काले को लाकर चित्र बना देता है। लेकिन वह कंट्राडिक्शन है। फिर एक पेंटर आए, वह कहे, भई, इसमें बहुत कंट्राडिक्शन है। कहीं सफेद, कहीं काला, यह कुछ भरोसे की बात नहीं मालूम पड़ती। या तो काला ही काला हो तो साफ मालूम होता है क्या है; या सफेद ही सफेद हो तो मालूम होता है क्या है। तो वह एक सफेद पेंटिंग बना दे, एक काली पेंटिंग बना दे। वे दो चीजें हो गईं, लेकिन दोनों में कोई पेंटिंग नहीं है। वे दोनों बिल्कुल ही साफ-सुथरी हो गईं, विरोधी है ही नहीं उनमें कोई।
जिंदगी पूरे विरोध से मिल कर बनी है। सब चीज में विरोध है। इसलिए जो पूरी जिंदगी को समझने जाएगा, वह सब तरह के विरोधों को स्वीकार करेगा कि वे हैं। वे दोनों हैं वहां। और दोनों हैं और दोनों एक के ही रूप हैं। ऐसा अगर कोई कहेगा तो कंट्राडिक्ट्री मालूम पड़ेगा कि यह तो बड़ी उलटी बात हो रही है।
जैसे कि समझ लें कि मैं कहता हूं कि उसे पाने के लिए कुछ भी नहीं करना है। लेकिन जो कुछ भी नहीं कर रहे हैं वे उसे पा लेंगे, यह मैं नहीं कहता। अब यह कंट्राडिक्शन मालूम होता है न! यानी मैं यह कहता हूं कि उसे पाने के लिए कुछ भी करना नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि जो कुछ भी नहीं कर रहे हैं वे उसे पा लेंगे। अब यह बिल्कुल कंट्राडिक्ट्री बात है। लेकिन अगर मेरी बात समझ में आए तो समझ में आ जाएगी।
जब मैं कहता हूं, नॉट डूइंग एनीथिंग, तो इसका मतलब यह नहीं है कि डूइंग नथिंग। नॉट डूइंग एनीथिंग, इसका यह मतलब नहीं है कि डूइंग नथिंग। फिर तो कोई भी आदमी जो कुछ भी नहीं कर रहे हैं, सड़क पर चल रहे हैं, उनको मिल जाना चाहिए। यह मैं नहीं कह रहा हूं। सड़क पर चलने वाला भी कुछ कर रहा है। जिसको हम कहते हैं कुछ नहीं कर रहा है, वह भी कुछ कर रहा है। मंदिर में बैठा आदमी भी कुछ कर रहा है। संन्यासी भी कुछ कर रहा है। सच में ऐसी दशा में कोई भी नहीं खड़ा हो रहा है, जब कोई कुछ भी नहीं कर रहा है। कोई खड़ा हो जाए, तो पा ले।
लेकिन यह न करना, जैसा मैंने कहा कि बहुत कठिन है। कठिन, इसलिए नहीं कठिन है कि कोई टेक्नीक से सरल हो जाएगा। यह कठिन इसलिए है कि हमारी करने की आदत मजबूत है। और टेक्नीक इसे सरल नहीं बनाएगा, इसे होने ही नहीं देगा, क्योंकि टेक्नीक फिर करने की आदत को मजबूत कर देगा। यह जो मामला है सारा,

यानी मैं जो कह रहा हूं कि यह जो न करना है... जैसे उन्होंने कहा कि न करने को हम टेक्नीक के द्वारा करेंगे, तो सरल हो जाएगा, क्योंकि कठिन है।
कठिन मैं इसलिए नहीं कह रहा हूं कि वह सरल हो सकता है। कठिन मैं इसलिए
कह रहा हूं कि हमारे मन की आदत करने की है, न करने की उसकी आदत नहीं है। और टेक्नीक भी करना है। मन उसके लिए राजी हो जाएगा कि चलो, करते हैं। लेकिन करे कोई कितना ही, करने से न करने पर कैसे पहुंच सकता है? डूइंग नॉन-डूइंग कैसे बन सकती है? वह तो किसी न किसी क्षण उसे जानना पड़ेगा कि डूइंग से नहीं होता। और डूइंग छूट जाएगी तो नॉन-डूइंग शेष रह जाएगी।
यह जो बहुत सारी कठिनाई न करने में ठहरने की है। तो कोई भी करना पकड़ा दिया जाए आपको कि राम-राम जपिए, तो आप ठहर सकते हैं, फिर कोई कठिनाई न रही। लेकिन वह बात ही खत्म हो गई। वह बात ही खत्म हो गई, वह न करने में ठहरना था। फिर कई दफा हमको बड़ी... जैसा उन्होंने कहा कि कोई सपना गहरा, कोई उथला। यह सवाल ही नहीं है। जैसे कोई आदमी कहे, एक आदमी ने दो पैसे की चोरी की और एक आदमी ने दो लाख की चोरी की, तो एक की चोरी छोटी और एक की चोरी बड़ी। अगर कोई ठीक से समझेगा तो चोरी छोटी-बड़ी हो सकती है? चोरी करना एक माइंड की बात है! चोर! वह दो पैसे चुराता है कि दो लाख, यह सवाल ही नहीं है बिल्कुल। दो पैसे चुराने में जितना चोर होना पड़ता है, उतना ही दो लाख चुराने में भी होना पड़ता है। चोर! जो आंकड़ा है वह दो पैसे और दो लाख का है, चोरी का नहीं है। चोरी करने वाले का जो चित्त है वह बिल्कुल समान है--चाहे वह दो पैसे चुराए, चाहे एक कंकड़ चुराए, चाहे दो करोड़ चुराए। कोई यह नहीं कह सकता है कि दो पैसे चुराने वाला छोटा चोर है, दो करोड़ चुराने वाला बड़ा चोर है। बड़े और छोटे चोर होते हैं कहीं? चोर होते हैं। छोटे और बड़े अवसर होते हैं, चोर छोटा-बड़ा नहीं होता। एक को दो पैसे चुराने का अवसर मिला है, एक को दो करोड़ चुराने का अवसर मिला है। चोर का माइंड है एक। चोरी छोटी-बड़ी नहीं होती। एक आदमी सपना देख रहा है, साधारण सा, हलका-फुलका। एक आदमी बहुत गहरा सपना देख रहा है। ये जो फर्क हैं, ये फर्क इसी तरह के हैं जैसे दो पैसे की चोरी के और लाख की चोरी के। सपना सपना है, नींद नींद है, उसका टूटना टूटना है। इन दोनों के बीच में सच में ही कोई सीढ़ी नहीं है। सोया हुआ आदमी सोया हुआ आदमी है, जागा हुआ जागा हुआ आदमी है। इन दोनों के बीच कोई गैप नहीं है। और जिसमें सीढ़ियां पार करनी हों, कि यह आदमी थोड़ा जग गया है, यह आदमी थोड़ा और जग गया है, यह आदमी थोड़ा और जग गया है, ऐसा नहीं है। जाग जो है, उसकी क्वांटिटी नहीं है कि छोटी-बड़ी हो सके। जाग! आप बिस्तर पर पड़े हैं, बाहर का आदमी कह सकता है कि यह आदमी थोड़ा सा जग गया, करवट बदलता है, आंख खोल कर देखता है। लेकिन आप पूरे जग गए हैं; पड़े रहें, यह दूसरी बात है। जाग ऐसी नहीं है कि थोड़े से जग गए हैं आप। जग गए हैं!
लेकिन आदमी को एकदम से यह बात कठिन मालूम पड़ती है। तो उसे स्टेप्स चाहिए। वह कहता है, सीढ़ियां बता दीजिए। तो पहली सीढ़ी, दूसरी सीढ़ी, तीसरी सीढ़ी, ऐसी सीढ़ियां बताइए। क्योंकि हमारी सामर्थ्य कम है, हम पूरी सीढ़ियों पर नहीं जाते, हम एक पर जाएंगे।
तो आदमी की यह मांग जो है, यह सीढ़ियां पैदा करवा देती है। और सीढ़ियां पैदा करने वाले हैं। जो जरा ही समझ का उपयोग कर सकते हैं, वे पचास सीढ़ियां बना दें। और तब वे सबको तृप्ति दे देते हैं--कि आप पहली सीढ़ी पर, वह दूसरी सीढ़ी पर, वह तीसरी सीढ़ी पर। सबको तृप्ति भी मिल रही है। लेकिन जहां सीढ़ियां होती ही नहीं हैं, वहां कहां पहली सीढ़ी? कहां दूसरी सीढ़ी? कहां तीसरी सीढ़ी?
अब मेरी दृष्टि में, अनुभूति सीढ़ियां चढ़ने जैसी नहीं है। अनुभूति छत
से कूदने जैसी है। उसमें कोई सीढ़ियां होती ही नहीं। कूदा आदमी, बस! लेकिन हमारा मन चढ़ना चाहता है, यह भी ध्यान रखना चाहिए। अहंकार चढ़ने में रस लेता है, उतरने में रस नहीं लेता। अहंकार कहता है, चढ़ाओ कहीं ऊपर--और एक सीढ़ी, और एक सीढ़ी, और एक सीढ़ी। वे सीढ़ियां किसी भी चीज की हों, अहंकार कहता है, ऊपर चढ़ाओ। और इसलिए अहंकार मार्ग पकड़ता, पथ पकड़ता, टेक्नीक पकड़ता, गुरु पकड़ता, शास्त्र पकड़ता, सब पकड़ता। और धर्म कहता है, कूद जाओ! चढ़ने का यहां कहां उपाय है? यहां तो बिल्कुल उतर जाओ आखिरी जहां उतर सकते हो। और उतरना भी हो

सकता था अगर सीढ़ियां होतीं। उतरना है नहीं, क्योंकि सीढ़ियां हैं नहीं; कूद ही सकते हो, छलांग लगा सकते हो।
यह जो छलांग लगाने की हमारी हिम्मत नहीं जुटती है, तो हम कहते हैं, भई
यह ज्यादा हो जाता है। तो थोड़ा सिम्पल करो, सरल करो। कोई टेक्नीक, कोई व्यवस्था, कोई विधि, जिसमें हम टुकड़े-टुकड़े में पा लें। एक खंड पहले पा लें, फिर एक खंड फिर पा लेंगे, इंस्टालमेंट में पा लें। वह हमारा ख्याल होता है। वह इंस्टालमेंट में मिलता नहीं।
और हर आदमी खोज रहा है--शांति खोज रहा है, सुख खोज रहा है, आनंद खोज रहा है। तो किसी आदमी को कहो, खोजो मत। तो वह कहता है, मर गए। क्योंकि जहां वह खड़ा है, वहां तो दुख ही दुख मालूम पड़ रहा है उसे। उसे लगता है कि अगर न खोजूं तो फिर गया; क्योंकि जो मैं हूं, वहां तो दुख, चिंता के सिवाय कुछ भी नहीं है। और आप कहते हो, मत खोजो। तो फिर मैं गया। फिर क्या होगा?
लेकिन उसे पता ही नहीं है कि न खोजने की चित्त-दशा क्या है। न खोजने की चित्त-दशा उसने कभी जानी ही नहीं, वह सदा ही खोजता रहा है। कभी खिलौने खोजता था, कभी पदवियां खोजता था, कभी मोक्ष खोजता था। छोटा सा बच्चा खोजना शुरू कर देता है, मरता बुड्ढा तक खोजता रहता है। एक क्षण को पता नहीं चलता उसे कि न खोजना क्या है। नो-सीकिंग क्या है। और तब वह कहता है, अगर नहीं खोजूंगा तो गए। तो हम खोज तो रहे ही नहीं थे पहले से।
मेरे पास कोई आता है, वह कहता है, हम आपके पास इसीलिए तो आए कि आप हमें खोज पर लगा दें। खोज तो हम पहले से ही नहीं रहे थे, अगर मिलना होता तो तभी मिल जाता।
मैंने कहा, तुम खोज तो नहीं रहे थे, लेकिन कुछ और खोज रहे थे, यह नहीं खोज रहे थे। न-खोज न थी वह।
यह न-खोज बात ही अलग है। और जैसे ही न-खोज में कोई ठहर जाए, एक्सप्लोजन
हो जाता है।
वह जो उन्होंने पीछे कहा कि उनका कोई गुरु नहीं है। यह बात ठीक है, मेरा कोई गुरु नहीं है। लेकिन इस वजह से मैं गुरु को इनकार नहीं कर रहा हूं। और न इस वजह से इनकार कर रहा हूं कि चूंकि मैं नहीं बता सकता कि सिस्टम क्या है, इसलिए भी इनकार नहीं कर रहा हूं। सिस्टम बनाने से आसान कोई चीज है दुनिया में? आदमी थोड़ा सोच-विचार जानता हो, सिस्टम बनाने में क्या तकलीफ है? बहुत सरल सी बात है व्यवस्था बना लेना तो। बड़ी बात तो अव्यवस्था में उतरना है। व्यवस्था बनाना तो बड़ी ही सरल बात है। अव्यवस्था में उतरना, अनार्की में उतरना ही बड़ी बात है। और उतने रेवोल्यूशन का ख्याल नहीं होता।
अब वे जितने लोग थे, उन सबको जो कठिनाई हो रही है, वह कठिनाई बहुत गहरी है। वह कठिनाई यह नहीं है, वे सब डिफेंस में लगे हुए हैं। वह सारा जो पूरा वक्त है, वे एकदम डिफेंस में लगे हुए हैं। क्योंकि गए, अगर यह बात ठीक है, तो यह गुरु और यह साधना और यह जो चल रहा है, यह सब गया। तो वे डिफेंस में लगे हुए हैं पूरे वक्त कि नहीं, यह बात ठीक नहीं हो सकती, यह हम मान नहीं सकते। इसको हम कैसे मान सकते हैं? समझने का सवाल नहीं है। यह डिफेंस चल रहा है पूरे वक्त माइंड में। समझने का सवाल हो तो एकदम से बात दिखाई पड़ जाए। और इसलिए मेरी बात थोड़ी कठिन तो है। थोड़ी कठिन इसीलिए है कि हमारा माइंड जो चाहता है, वह मैं नहीं दे रहा हूं। और वह मैं दे नहीं सकता, क्योंकि उसे देना माइंड को परिपुष्ट करना है, उसे मजबूत करना है। और वह टूटना चाहिए, मजबूत होना नहीं चाहिए।

वह डूइंग और अनडूइंग, यह जो आप बात कर रहे हैं, और क्रिया और अक्रिया में आप, और जैसा व्हील और एक्सेल, इन तीनों में भीतर से और बाहर से ऐसा लगता है कि जो नॉन-डूइंग है, तो बाहर से कुछ नहीं है, लेकिन सचमुच तो आप ऐसा बोल रहे हैं कि बाहर से मैक्सिमम क्रिया होगी और भीतर से...

बाहर की क्रिया का कोई संबंध ही नहीं है।

संबंध ही नहीं है?

हां, संबंध ही नहीं है।

लेकिन समझने में, जब आप नॉन-डूइंग बोलते हैं तो ख्याल ऐसा आ जाता है कि नॉन-डूइंग का मतलब नॉन-डूइंग। इम्प्रेशन ऐसा क्रिएट हो रहा है।

हां, समझा मैं, बिल्कुल गलत हो जाता है। असल में जो व्यक्ति भीतर जितना डूइंग में उलझा हुआ है, बाहर की उसकी डूइंग उतनी ही कमजोर होगी, क्योंकि उसकी शक्ति तो बंट रही है इस धंधे में, भीतर यह जो दिमाग में चल रहा है।

डूइंग कमजोर होगी कि जो मानने की है, लेकिन जैसे व्हील है, व्हील तो बाहर का फिरता ही रहेगा।

हां-हां, वह तो फिरता ही रहेगा, और तेजी से फिरेगा, मैक्सिमम फिरेगा, पूरा मैक्सिमम फिरेगा। क्योंकि जितना ही आप भीतर नॉन-डूइंग में उतर गए, उतना ही आपके चारों तरफ डूइंग का बहुत तीव्र भाव होगा। और तब आपके लिए डूइंग एक, जिसको हम कहें, एक्सप्रेशन होगा, एक पागल नीड नहीं होगी। आपकी डूइंग, आपके भीतर जो हुआ है, उसको क्रिएट करने, बांटने का एक्सप्रेशन होगा। बहुत रूपों में होगा। वैसा आदमी चौबीस घंटे सक्रिय होगा। लेकिन भीतर बिल्कुल निष्क्रिय होगा, भीतर कुछ भी नहीं होगा।

लेकिन जब आप नॉन-डूइंग बोलते हैं तब लोग का ख्याल हो जाता है कि नॉन-डूइंग में सपने जो देखता है कि क्रिया और नो-क्रिया, ऐसा ही जरा इम्प्रेशन हो जाता है।

कई दफा हो जाता है। कई दफा ख्याल हो जाता है, कई दफा ख्याल हो जाता है। बाहर की डूइंग से कोई वास्ता ही नहीं है। और मजा यह है कि कई लोग बाहर की डूइंग छोड़ कर भाग जाते हैं और भीतर की डूइंग जारी रखते हैं। लेकिन बाहर तो कोई संन्यासी हो जाता है दुकान छोड़ कर, लेकिन भीतर का काम जारी रखता है। वह जारी रहता है पूरे वक्त। कठिन है, लेकिन एक दफा ख्याल में आ जाए।

बी स्टिल का क्या ख्याल है जीसस का?

जीसस का ख्याल बिल्कुल वही है जो मैं कह रहा हूं। जीसस यही कह रहे हैं
कि बी स्टिल। बी स्टिल का असल में जो मतलब है वह यह है कि कोशिश मत करो स्टिल होने की, जस्ट बी स्टिल!
हां, अगर स्टिल होने की कोशिश करो, तकनीक लगाओ और साधन, प्रोसेस लाओ,
तब अभी तो स्टिल नहीं हो, अभी शांत नहीं हो। तो शांत कैसे हो जाओगे? तो शांत होने के लिए कुछ करो और करके तुम शांत हो जाओगे। और मजा यह है कि हम अशांत इसलिए हैं कि हम कुछ कर रहे हैं। यह जो प्रॉब्लम है, इसलिए है।
जीसस जो कहते हैं, बी स्टिल, वे कहते हैं कि बहुत मुश्किल मामला है। महेश जी तो बिल्कुल नहीं समझे। वह तो इस जल्दी में बात की है कि किसी तरह मैं उनको समझा दूं कि दोनों एक बात हैं। किसी तरह मैं बता दूं कि ये दोनों बातें एक ही हैं। उस कोशिश में पूरे वक्त उनका मन लगा हुआ था। और उनकी- हमारी बात का तालमेल ही कहां? कोई भी तालमेल नहीं है। यानी इससे ज्यादा उलटी बात ही नहीं हो सकती। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उनको वही पहुंच जाए जो मैं कह रहा हूं।
मगर वह एक तो सब मन में भरा होता है, पूरा का पूरा तैयार है; और उससे अन्यथा को तो बहुत कठिनाई है। और फिर शिष्यों के सामने तो और भी बहुत कठिनाई है। छोटा मामला नहीं है। यह जो बड़ा मकान बना कर आदमी खड़ा होता है न, तो सब गिर जाएगा कि आप जाकर कहते हैं कि मकान है ही नहीं, तो मानने का सवाल ही नहीं है। समझें तो भी समझना भी मुश्किल मामला है। और शब्दों में ऐसा मजा है कि जितनी गहरी बात हो, उतना ही शब्दों में कहना मुश्किल हो जाता है।

और जैसे ही कहते हैं, वैसे ही शब्द कंट्राडिक्ट्री हो जाता है। अब जैसे बी स्टिल है, अब इसका मतलब कुल इतना ही है।
जीसस के जीवन में एक उल्लेख है। वे एक नाव पर हैं गैलीली नाम की झील में और कुछ मित्र साथ हैं। गैलीली की झील में नाव पर वे सो गए हैं। झील में तूफान आ गया है बहुत जोर से। सारी नाव डूबने के करीब होने लगी है। मित्रों ने उन्हें जगाया कि क्या सो रहे हैं, हम मरे जाते हैं! तो उन्होंने कहा, जाओ, कह दो झील से कि शांत हो जा! और फिर सो गए। उन्होंने कहा, नदी को कहने से तूफान कोई शांत हो जाएगा? कहीं कहने से भी कोई शांत हुआ है? शांत करने के लिए कुछ करना पड़ेगा, जीसस से उन्होंने कहा। जीसस उठे हैं और झील के किनारे गए हैं... यह तो पैरेबल है... झील के किनारे जाकर उन्होंने कहा कि शांत हो जा! बी स्टिल! और झील शांत हो गई! वे मित्र बड़े चकित हुए। उन्होंने कहा, यह कैसे हुआ सिर्फ कहने से कि शांत हो जा!
यह तो पैरेबल है। यानी मतलब यह है कि हम जिस झील में हैं, जहां हमारी नाव भी डगमगा रही है, डोल रही है, वहां कुछ करना नहीं है, बल्कि यह समझ लेना है कि स्टिलनेस क्या है, तो बी स्टिल की बात हो जाएगी। और जब भी हमने चाहा कि शांत कैसे हों तो यह नई अशांति का सूत्रपात है, और कुछ भी नहीं है। जैसे कहा कि हाउ टु बी स्टिल? तो हमको एक मेथड चाहिए, फिर मेथड में लगें, शांति आएगी। अब यह अशांति का नया सिलसिला है।
अशांति का मतलब क्या है? अशांति का मतलब है कि जहां हम हैं, वहां न होने का हमारा मन है। यह हमारे चित्त की अशांति है, यह टेंशन है। और बी स्टिल का मतलब है कि जहां हो वहीं हो जाओ--बी व्हेयर यू आर। इतना ही मतलब है। अगर शांत हो तो फिर अशांत होओगे कैसे? यानी मतलब यह है कि अशांत होने की तरकीब ही यह है कि जहां हो, वहां मत रहो, हमेशा शुड में जीओ कि वहां होना चाहिए, यह होना चाहिए। तो फिर अशांति होगी। और शुड में जीओ ही मत कि यह होना चाहिए--जो है, है--और चुप हो जाओ, तो उसी वक्त शांत हो जाओगे।
वह समझ में आना सच में ही कठिन है, एकदम कठिन है।

हिप्नोसिस से जो शांति मिलती है, उससे खुश हो जाते हैं कि नहीं?

कितने दिन? तीन महीने से ज्यादा नहीं, छह महीने से ज्यादा नहीं। छह महीने बाद उनमें से एक आदमी लौटा लाएं! छह महीने बाद दूसरे आ जाएंगे, वह दूसरी बात है। छह महीने से ज्यादा नहीं। क्योंकि हिप्नोटिक जो शांति है, वह रूटीन हो जाती है। अगर होने लगी है आपको तो दो महीने के बाद प्रभाव जाता रहता है। रूटीन हो गई कि व्यर्थ हो जाती है। फिर गया वह, फिर उसका कोई मतलब न रहा। वह ट्रिक हो गई और आपको पता हो गया कि बैठ कर ऐसा राम-राम जपने से थोड़ा मन शांत हो जाता है, अब वह रोज होने लगा। पहले दिन आता तो अच्छा लगा, दूसरे दिन कम अच्छा लगा, तीसरे दिन और कम, और चौथे दिन और कम। पच्चीस दिन कोई फिल्म देख लें तो वह बेकार हो गई। ऐसे ही यह भी तीन महीने बाद बेकार हो जाने वाला है। इसलिए होता क्या है, असल में तीन महीने बाद वह खिसक जाएगा, फिर दूसरा कोई हाथ पड़ जाएगा। और दुनिया इतनी बड़ी है, इसलिए कहीं पता चल नहीं पाता इस बात का ठीक-ठीक कि किसको हो गया। वह होने का मामला नहीं है। जो चला गया वह चला गया। दूसरा आ गया है, अब वही बात उसको होने लगी है।
मेरा कहना यह है कि हिप्नोटिक ढंग से पैदा की गई शांति चूंकि झूठी है, इसलिए बहुत जल्दी उसका मुलम्मा उतर जाता है। वह दो-तीन-चार महीने में खत्म हो जाती है, उसके बाद फिर आप वहीं के वहीं खड़े हैं। अब आप फिर नया गुरु खोजेंगे। तब भी आपको यह ख्याल में न आएगा कि गुरु खोजने में ही गड़बड़ है। इसको छोड़ कर उसके पास चलें, इससे कुछ नहीं थमा। तब एक आश्रम से दूसरे आश्रम जाता है, तीसरे जाता है--एक गुरु, दूसरा गुरु, तीसरा गुरु बदलता रहता है। और हर गुरु उसको टेक्नीक बता देता है। उसको लगता है कि टेक्नीक ही गलत है। लेकिन यह ख्याल में नहीं आता है कि उसमें कुछ गड़बड़ होगी। मगर यह ध्यान में नहीं रहता है। कोई तरकीब होगी कि उस तक पहुंचा जा सके।

अच्छा हुआ, गुरु पर बातचीत अच्छी हुई। ऐसे चार-छह किस्म की बात की जरूरत है। चार-छह दिन में और तरफ देखेंगे, एक दिन में तो यह सब मुश्किल हो जाता है न!

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

सवाल यह है कि दो तरह की चीजें होती हैं। या तो ग्रेजुअल प्रोसेस होती
है किसी चीज की या एक्सप्लोजन होता है। एक्सप्लोजन का मतलब हैः ग्रेजुअल प्रोसेस नहीं, इवोल्यूशन नहीं; रेवोल्यूशन! तो ग्रेजुअल प्रोसेस होती है किसी एक चीज की और एक चीज की ग्रेजुअल प्रोसेस नहीं होती। जो चीज हमसे दूर है, उसे तो हमें ग्रेजुअल ही पाना होगा। एक्सप्लोजन का मतलब ही इतना है सिर्फ कि कोई चीज एकदम सडनली हो। और ज्यादा से ज्यादा जो कर सकते हैं वह यह कि होने की स्थिति बन जाए। तो उसके लिए मैं कह रहा हूं कि नॉन-डूइंग माइंड चाहिए।

कोई चीज मिलेगी?

मिलने का जो ख्याल है न, वही तो हमारे दुख की जड़ है--मिलेगी? मिलेगी?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

होता क्या है कि लोग खोलने को भी एक्ट समझते हैं, क्योंकि शब्द में तो... एक आदमी जो बीच में कह रहे थे, वे ठीक कह रहे थे... मैं कहता हूं कि मुट्ठी खोलो मत। तुम जो बंद करने की क्रिया कर रहे हो, वह मत करो, तो मुट्ठी खुल जाएगी। खुला होना मुट्ठी का स्वभाव है और बंद करना एक्ट है। तुम बंद मत करो तो मुट्ठी खुल जाएगी। लेकिन वह कहेगा, नहीं, खुल जाना तो एक क्रिया है। खोलेंगे तभी खुलेगी न। वह जो चूक हो जाती है, शब्दों में बड़ी चूक है। अगर समझने को तैयार हैं तो समझ में आ जाता है, नहीं तो फिर कोई उपाय नहीं है।

जीवन रहस्य
चौथा प्रवचन

प्रार्थना: अद्वैत प्रेम की अनुभूति

जीवन का अंतिम ध्येय आत्म-दर्शन, आत्म-बोध है, वह मान्य है। आप प्रार्थना के लिए विरोध करते हैं। लेकिन मैं समझती हूं कि प्रार्थना एक शुभ चिंतन है और समाज में सात्विकता और पवित्रता का असर उत्पन्न करने का एक साधन है। आपका हृदयपूर्वक दिया हुआ यह व्याख्यान प्रार्थना नहीं तो और क्या है? आप शुभ चिंतन करके उसका फायदा अन्य आत्मा को देने का प्रयास करते ही हैं। इसी अर्थ में प्रार्थना शुभकामनाओं का दूसरा नाम नहीं है क्या?

मेरी दृष्टि में, प्रार्थना की नहीं जा सकती, प्रार्थना में हुआ जा सकता है। आप प्रार्थना में हो सकते हैं, लेकिन प्रार्थना कर नहीं सकते। प्रार्थना कोई क्रिया नहीं, प्रेम की अवस्था है। साधारणतः हम कहते हैं, प्रेम करते हैं, यह वचन गलत है। प्रेम किया नहीं जा सकता; प्रेम में हुआ जा सकता है। आप प्रेम में हो सकते हैं, लेकिन प्रेम कर नहीं सकते। प्रेम कोई क्रिया नहीं, भाव की एक दशा है।
तो मेरा जो विरोध है वह प्रार्थना में होने से नहीं, प्रार्थना करने
से है। मेरा जो विरोध है वह प्रेम में होने से नहीं, प्रेम करने से है। शिक्षा दी जाती है--हम दूसरों से प्रेम करें। यह बात ही गलत है। क्योंकि किया हुआ प्रेम झूठा होगा। चेष्टा किया हुआ प्रेम मिथ्या होगा, वंचना होगा, डिसेप्शन होगा। जब हम प्रेम करेंगे तो क्या करेंगे? हम प्रेम का दिखावा करेंगे। प्रेम का दिखावा, प्रेम के शब्द या प्रेम की चेष्टा से किया गया व्यवहार सत्य नहीं होगा। जब हम प्रेम करने का विचार करते हैं तभी स्पष्ट है कि हमारे भीतर प्रेम नहीं है। प्रेम हो तो प्रेम किया नहीं जाता; प्रेम की एक चित्त-दशा है और प्रेम प्रवाहित होता है।
लेकिन साधारणतः हम प्रार्थना करते हैं। यह प्रार्थना झूठी होगी। इस प्रार्थना में आप क्या करेंगे? प्रभु की प्रशंसा करेंगे, स्तुति करेंगे। क्या आप सोचते हैं प्रभु कोई व्यक्ति है जिसकी स्तुति और प्रशंसा की जा सके? या कि आप सोचते हैं कि प्रभु कोई ऐसा व्यक्ति है जो प्रशंसा और स्तुति से प्रसन्न होगा?
अगर आप ऐसा सोचते हैं तो परमात्मा के संबंध में बड़ा निम्न दृष्टिकोण रखते हैं। आप सोचते हैं कि आपकी स्तुति से परमात्मा प्रसन्न होगा, तो आपने परमात्मा को किसी अहंकारी व्यक्ति की शक्ल में निर्माण कर लिया है। दूसरी बात है, क्या आप सोचते हैं कि परमात्मा कोई व्यक्ति है जिससे कोई बातचीत हो सके? जिससे हम कुछ कह सकें या कुछ निवेदन कर सकें?
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं वरन अनुभूति का नाम है।
प्रेम की स्तुति में अगर आप कुछ कहेंगे तो सुनने वाला कोई भी नहीं है। प्रेम की ही चरम अनुभूति का नाम परमात्मा है। जब प्रेम एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के बीच में होता है, तब जो अनुभव में आता है वह प्रेम है, दूसरा व्यक्ति प्रेम नहीं है। जो अनुभूति होती है वह। और जब एक व्यक्ति और समस्त सृष्टि के बीच, समस्त जगत के बीच प्रेम का ऐसा ही संबंध फलित होता है, तब जो भीतर अनुभूति होती है उस अनुभूति का नाम परमात्मा है। परमात्मा व्यक्ति नहीं है, अनुभूति है। एक कोई वस्तु नहीं है, बल्कि भीतर अनुभव की एक दशा है। परमात्मा की स्तुति और प्रार्थना नहीं हो सकती। हां, आप प्रार्थना में हो सकते हैं। आप प्रेम में हो सकते हैं। और वह होने का मार्ग है कि आप जिस भांति शून्य होते जाएंगे, उसी भांति आप प्रार्थना में होते जाएंगे।
तो मैं प्रार्थना के विरोध में नहीं हूं, प्रार्थना करने के विरोध में हूं। क्योंकि की हुई प्रार्थना झूठी होगी, सत्य नहीं हो सकती। किया हुआ प्रेम झूठा होगा, वह भी सत्य नहीं हो सकता। लेकिन हमारा सारा जीवन असत्य है। हम सारी बातें असत्य करने लगे हैं। हम प्रार्थना भी असत्य कर

रहे हैं। और वैसी ही प्रार्थना सिखाई जा रही है, वह हमारी कामनाओं का ही रूप है, हमारी मांग का रूप है।
जापान में एक बौद्ध भिक्षु था। सबसे पहले उसने ही चीनी भाषा से बुद्ध
के वचन जापानी भाषा में अनुवाद किए। बड़ा काम था, विराट साहित्य था, उसको अनुवादित करना था। फकीर के पास, भिक्षु के पास कुछ भी न था। वह गांव-गांव गया, दस वर्ष उसने भिक्षा मांगी, तब कहीं दस हजार रुपये इकट्ठे हुए और ग्रंथ का काम शुरू होने की संभावना बनी। लेकिन जैसे ही दस हजार रुपये इकट्ठे हुए, जिस क्षेत्र में वह रहता था वहां अकाल पड़ गया। अकाल पड़ गया तो उसने शास्त्र के अनुवाद का काम रोक दिया। उसने वे दस हजार रुपये अकाल पीड़ितों को भेंट कर दिए।
फिर भिक्षा मांगनी शुरू की, फिर दस वर्ष लग गए, दस हजार रुपये इकट्ठे हुए। तभी एक भूकंप आ गया। उसने वे दस हजार रुपये उस भूकंप में दान कर दिए। फिर भिक्षा मांगनी शुरू की। वह शास्त्रों का काम फिर रुक गया। जब उसने भिक्षा मांगनी शुरू की थी तब वह चालीस वर्ष का था। जब तीसरी बार भिक्षा पूरी हुई तो वह सत्तर वर्ष का था। फिर दस हजार रुपये इकट्ठे हुए, ग्रंथों का काम शुरू हुआ। मरते समय किसी ने उससे पूछा कि क्या इन ग्रंथों का यह पहला संस्करण है?
तो उसने कहा, नहीं; यह तीसरा संस्करण है, दो संस्करण पहले निकल चुके हैं।
वे लोग हैरान हुए! उन्होंने कहा... उसने ग्रंथ पर लिखवाया भी कि तीसरा संस्करण, थर्ड एडिशन... लोगों ने पूछा कि यह क्या है? पहले दो संस्करण कहां हैं?
उसने कहा, एक अकाल में लग गया, एक भूकंप में। और वे दो संस्करण इस तीसरे से श्रेष्ठ थे; वे दिखाई नहीं पड़ते हैं। वे दिखाई नहीं पड़ते; वे श्रेष्ठ संस्करण थे। वे बहुत डिवाइन थे, बहुत दिव्य थे।
हमको दिखाई पड़ेगा कि वे संस्करण हुए नहीं; लेकिन उसे दिखाई पड़ता है।
जो प्रार्थना दिखाई पड़ती है वह असली नहीं है; जो बहुत हृदय की दशाओं में उत्पन्न होती है वही असली है। निश्चित ही, तीसरा संस्करण कोई कीमत का नहीं है; असली संस्करण वे दो थे। लेकिन अगर यह अंधा पंडित होता, तो वह दस हजार रुपये का पहला संस्करण निकालता और मानता कि यही ठीक है; दूसरे का भी निकालता, मानता यही ठीक है। लेकिन उसके पास अंतर्दृष्टि थी, प्रेम था। उसे पता था प्रार्थना क्या है!
तो यह जो हम सामान्यतः प्रार्थना और पूजा समझते हैं, इसमें बड़ा धोखा है। आपका चित्त तो नहीं बदलता, कुछ बातें आप दोहरा कर निपट जाते हैं। एक काम को पूरा कर लेते हैं, एक रूटीन पूरी कर लेते हैं। फिर रोज-रोज उसे दोहराते रहते हैं और समझते हैं कि प्रार्थना कर रहे हैं।
प्रार्थना बड़ी क्रांति है, प्रार्थना आमूल जीवन परिवर्तन है, बड़ा ट्रांसफार्मेशन है। आपका पूरा चित्त परिवर्तित होगा, तो आप प्रार्थना में हो सकेंगे। और फिर ऐसा मत समझिए कि जो आदमी प्रार्थना में हो गया, वह प्रार्थना के बाहर हो सकता है। बाहर नहीं हो सकता। क्योंकि अगर प्रार्थना करते हैं, तो करेंगे तो प्रार्थना संबंध हो जाएगा, नहीं करेंगे तो प्रार्थना के बाहर हो जाएंगे। लेकिन जो मनुष्य प्रार्थना में प्रविष्ट कर जाता है--एक्शन की तरह नहीं, बीइंग की तरह; काम की तरह नहीं, सत्ता की भांति--वह फिर प्रार्थना के बाहर नहीं हो सकता। वह चौबीस घंटे प्रार्थना में जीता है। उसकी प्रत्येक क्रिया प्रार्थना हो जाती है। उसका उठना, बैठना, उसका चलना, उसका बोलना, सब प्रार्थना हो जाता है। प्रार्थना के भीतर जाकर कोई प्रार्थना के बाहर नहीं आ सकता। मंदिर के भीतर जाकर कोई मंदिर के बाहर नहीं आ सकता, अगर सही-सही मंदिर के भीतर गया हो। क्योंकि फिर वह जहां होगा वहीं मंदिर होगा। वह जो करेगा वही प्रार्थना होगी। वह जो भी उसके जीवन में होगा, सब प्रार्थनापूर्ण होगा, प्रेयरफुल होगा।
तो उसकी, उसी प्रार्थना की, उसी प्रेम की मैं बात कर रहा हूं। और ये जो चलती हुई प्रार्थनाएं हैं, निश्चित ही मैं उनके विरोध में हूं, क्योंकि मैं प्रार्थना के पक्ष में हूं। मैं धर्म के पक्ष में हूं, इसलिए सारे तथाकथित धर्म के विरोध में हूं। मैं चाहता हूं कि जगत में प्रार्थना हो,

इसलिए प्रार्थना के नाम से चलने वाले जितने थोथे बाह्य आडंबर हैं, चाहता हूं कि वे नष्ट हो जाएं, ताकि प्रार्थना का जन्म हो सके।
ये सब कुछ प्रार्थना नहीं हैं। प्रार्थना बड़ी... मेरी बात आप समझे? प्रार्थना बड़ी आंतरिक मनोदशा है। और जब वह हो तो जीवन में दृष्टिकोण बड़ा दूसरा होगा, बहुत दूसरा होगा। और अगर वह न हो, तो लोभी, कामी, सब प्रार्थना करते हुए दिखाई पड़ेंगे। अपने लोभ के लिए, अपनी कामना के लिए, इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना करेंगे कि परमात्मा प्रसन्न हो जाए, हम जो चाहते हैं वह हमें मिल जाए। उन्हें परमात्मा से कोई मतलब नहीं है, उनकी जो मांग है उससे उन्हें मतलब है। अगर वह मिल जाएगी तो वे मानेंगे कि परमात्मा है, अगर वह नहीं मिलेगी, वे कहेंगे कि हमें परमात्मा पर शक है, पता नहीं परमात्मा है या नहीं! अगर दस बार मांगा और फिर प्रार्थना पूरी न हुई, तो उन्हें परमात्मा पर संदेह हो जाएगा। यानी उनके लिए परमात्मा जो है वह उन वस्तुओं से कम मूल्य का है जिनको वे मांग रहे हैं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, प्रार्थना तो बड़ी सत्य है। क्योंकि हम नौकरी में नहीं थे, हमने प्रार्थना की और नौकरी मिल गई। कोई मुझसे कहता है, प्रार्थना तो बड़ी सत्य है। हम बड़ी दिक्कत में थे, प्रार्थना की और दिक्कत के बाहर हो गए।
मैं उनसे पूछता हूं, क्या तुम सोचते हो, जो लोग दिक्कत में होते हैं और प्रार्थना नहीं करते, वे कभी दिक्कत के बाहर नहीं होते? क्या तुम सोचते हो, जो लोग प्रार्थना नहीं करते और नौकरी में नहीं होते, क्या उन्हें कभी नौकरी नहीं मिलती? क्या तुम सोचते हो कि जो नास्तिक मुल्क हैं, जहां कोई प्रार्थना नहीं होती, वहां सब लोग नौकरी के बाहर हैं? और सारे लोग दिक्कत में हैं?
नहीं लेकिन, हम प्रार्थना से संबंध जोड़ लेते हैं। और हमारे लिए प्रार्थना का न कोई मूल्य है, न परमात्मा का। हमें तो हमारी कामना पूरी हो जाए तो मूल्य है। किसी को एक बच्चा पैदा हो जाए, वह परमात्मा से ज्यादा मूल्यवान है, क्योंकि उसने प्रार्थना की थी और बच्चा हुआ, इसलिए परमात्मा है। यह हमारा तर्क है! ये हमारे सोचने के ढंग हैं! हमें क्षुद्र चीजें मूल्यवान हैं। और हम उन क्षुद्र चीजों को मांग कर सोचते हैं कि कुछ होगा। असल में जहां भी मांग है, वहां किसी न किसी क्षुद्र बात की होगी। ऐसे लोग हुए हैं जो कहेंगे, प्रार्थना में वस्तुएं मत मांगिए; स्वर्ग मांगिए, मोक्ष मांगिए। ये भी सब कामनाएं हैं, ये भी सब वासनाएं हैं, ये भी सब डिजायर्स हैं। यह बहुत लोभ का गहरा अंग है। एक आदमी है जो जाकर कहता है, मुझे बच्चा चाहिए। एक संन्यासी कहेगा कि यह क्या क्षुद्र मांग मांगते हो! अरे, परमात्मा से मांगना है तो मांगो कि हमें अनंत आनंद चाहिए।
मेरी दृष्टि में, बच्चे को मांगने वाला कम लोभी है, अनंत आनंद को मांगने वाला ज्यादा लोभी है। इसकी ग्रीड, इसका लोभ बहुत ज्यादा है। लेकिन यह समझा रहा है कि क्या तुम मांगते हो! अरे मांगना, क्या क्षुद्र बातें मांगते हो!
असल में मांगना ही क्षुद्रता है। आप जो भी मांगेंगे, मांगने की वृत्ति ही क्षुद्रता है। फिर आप कुछ भी मांगें। जो भी मांगेंगे वह कामना होगी, कम लोभ की होगी या ज्यादा लोभ की होगी। यह सवाल नहीं। प्रार्थना में मांग नहीं होनी चाहिए। प्रेम मांगता नहीं, देता है। जहां प्रेम है वहां मांग नहीं होती; वहां दान होता है, देना होता है। और जहां प्रेम नहीं होता वहां मांग होती है, शोषण होता है। हम कुछ शोषण करना चाहते हैं। प्रार्थना के नाम से परमात्मा का शोषण करना चाहते हैं। यह मिल जाए, वह मिल जाए, यह हमारी इच्छा है। हमारी इच्छाएं पूरी करे, परमात्मा हमारा सेवक हो जाए। हम जो चाहते हैं वह हमारा काम करता रहे। अगर करता रहे तो बहुत ऊंचा परमात्मा है, दयालु है, परम कृपालु है, पतितपावन है, जमाने भर की हम प्रशंसा के पदक उसको देंगे। क्योंकि वह हमारे काम करता रहे।
ये सारी बातें प्रार्थनाएं नहीं हैं। प्रार्थना तो चित्त की प्रेम की गहरी दशा है। और प्रेम? प्रेम को समझना होगा तभी हम प्रार्थना को समझ सकते हैं। प्रेम क्या है? साधारणतः हम सोचते हैं जिसे हम प्रेम कहते हैं वह प्रेम है? वह प्रेम नहीं है। सामान्यतः प्रेम के नाम से हम दूसरे व्यक्ति

में अपने को भुलाने का उपाय करते हैं। किसी में हम अपने को भुला दें, भुला सकें--उसके सौंदर्य में, उसके शरीर में, उसके व्यक्तित्व में, और कोई कारणों में--तो हमें लगता है कि हमारा बड़ा प्रेम है। हम अपने को किसी व्यक्ति में भुलाने में जब समर्थ हो जाते हैं, वह व्यक्ति हमें जरूरी हो जाता है। हम चाहते हैं वह सुरक्षित रहे; नष्ट न हो जाए, मर न जाए।
अगर आपका कोई प्रेमी मर जाता है तो आपको जो दुख होता है, इस ख्याल में
मत रहना कि वह उसके मरने से होता है। वह दुख इसलिए होता है कि आप उसमें अपने को भूले रखते थे, अब क्या करेंगे? अब आप किसी में भूल नहीं सकेंगे अपने को। अब आप घबड़ा गए। आपकी एक एस्केप खो गई, आपका एक पलायन का स्थल था, एक व्यक्ति था जिसमें आप अपने को डुबाते थे, भूलते थे, वह नष्ट हो गया। अब आप क्या करेंगे? प्रेमी जो आत्मघात कर लेते हैं प्रेमियों के मरने पर, वह इसीलिए कि अब उन्हें जीवन में कोई अर्थ नहीं दिखाई देता। क्योंकि जिसमें भूलते थे वही उनका जीवन था।
यह कोई प्रेम नहीं है। ये सब मूर्च्छाएं हैं। ये सब चेष्टाएं हैं अपने को किसी में भुलाने की। और यही वजह है कि जिस व्यक्ति को आज आप प्रेम करते हैं, चार-छह महीने बाद पाएंगे कि अब उससे आपका प्रेम नहीं लग रहा है, किसी और की तरफ आपकी दृष्टि चली गई है। क्योंकि जिसके आप आदी हो जाते हैं उसमें अपने को भुलाना मुश्किल हो जाता है। अब आप दूसरे व्यक्ति को खोजते हैं। दूसरे के साथ भी यही होगा, तीसरे को खोजेंगे। तीसरे के साथ भी यही होगा, चौथे को खोजेंगे। जिस-जिस को आप अपने को भुलाने को खोजेंगे, थोड़े दिन तरकीब काम करेगी नये-नये, फिर वह तरकीब काम नहीं करेगी, आप आदी हो जाएंगे, आप परिचित हो जाएंगे।
यह सब प्रेम नहीं है। और इस सारे प्रेम में हम अधिकार करना चाहते हैं
उस व्यक्ति पर जिससे हम प्रेम करते हैं। सारा प्रेम पजेस करना चाहता है। हम मालिक हो जाना चाहते हैं उसके जिसको हम प्रेम करते हैं। क्यों? क्योंकि हमें डर है कि कहीं वह छिटक न जाए, कहीं वह किसी और के प्रेम के चक्कर में न पड़ जाए। नहीं तो हमारा क्या होगा? हम क्या करेंगे?
हमें अपने में तो कोई सुख नहीं मालूम होता, दूसरे व्यक्ति से मांगते हैं कि हमें सुख दे दो। सारे प्रेमी एक-दूसरे से सुख मांगते हैं। मुझे दिखाई पड़ता है, यह ऐसा ही है कि एक दुनिया हो जिसमें सब भिखमंगे हों और सब अपने भिक्षापात्र लिए एक-दूसरे के सामने खड़े हों कि हमें कुछ दे दो। तो दूसरा भी भिखमंगा है, वह भी भिक्षापात्र लिए खड़ा हुआ है। इस जमीन पर एक प्रेमी दूसरे प्रेमी से मांगता है--मुझे आनंद दे दो! इसको सोचता ही नहीं कि उसके पास आनंद अगर होता तो वह तुम्हारे पास भिक्षापात्र लेकर खुद ही क्यों आता! जिसके पास आनंद है वह किसी से आनंद नहीं मांगेगा।
अगर आप किसी से भी आनंद मांग रहे हैं, आपके पास आनंद नहीं है। जिससे आप मांग रहे हैं वह भी आपसे मांगने आया हुआ है। दोनों इस भ्रम में हैं कि दूसरे से हमें मिलेगा। इसीलिए प्रेम में फ्रस्ट्रेशन पैदा होता है, प्रेम में दिक्कत पैदा होती है, असफलता पैदा होती है। थोड़े दिन में पता लगता है कि प्रेमी हमें प्रेम नहीं दे रहा। देगा क्या? प्रेम तो आनंद का प्रकाशन है; जिसके भीतर आनंद होगा वही केवल प्रेम दे सकता है।
तो स्मरण रखें, अगर आप दूसरे से प्रेम मांगते हैं तो आप दुखी हैं और आप प्रेम देने में असमर्थ होंगे। अगर आप भीतर आनंदित हों तो आप प्रेम देने में समर्थ हो जाएंगे। आनंद का दान प्रेम है और दुख का दान प्रेम का मांगना है। जहां मांग है वहां भीतर दुख है; जहां दान है वहां भीतर आनंद है। तो जब तक आपके भीतर आनंद नहीं है, तब तक आप प्रेम कर ही नहीं सकते। अगर थोड़ा-बहुत आनंद होगा, तो लोगों को थोड़ा-बहुत प्रेम कर पाएंगे। जिस मात्रा में आनंद बढ़ेगा, प्रेम बढ़ेगा। जिस दिन आनंद पूर्ण हो जाएगा, उस दिन प्रेम पूर्ण हो जाएगा।
आनंद की परिपूर्णता पर जीवन में प्रेम उत्पन्न होता है। उसी प्रेम की परिपूर्णता का नाम प्रार्थना है। वही टु बी इन प्रेयर है। वही प्रार्थना में होना है। फिर चौबीस घंटे जीवन से प्रेम बरसने लगता है। उठते, बैठते, चलते, चारों तरफ प्रेम झलकने लगता है। भीतर आनंद होता है, तो उसकी ज्योति बाहर फैलती है। ज्योति, आनंद की ज्योति का नाम प्रेम है। भीतर आनंद का

दीया जलेगा, तो बाहर प्रकाश फैलेगा प्रेम का। फिर वह प्रेम किसी से संबंधित नहीं होता। जो प्रेम किसी से संबंधित नहीं उसका नाम प्रार्थना है। जो प्रेम किसी से संबंधित हो जाए वह प्रेम नहीं है। जो प्रेम किसी से संबंधित नहीं होता, अनंत के प्रति, सर्व के प्रति प्रवाहित होता है, वही प्रार्थना है, वही परमात्मा के प्रति प्रार्थना है।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। समस्त, सर्व, टोटेलिटी, यह जो सब है, यही परमात्मा है। इस सबके प्रति--वह जो पौधा लगा है, उसके प्रति; चौराहे पर पत्थर पड़ा है, उसके प्रति; वे जो आकाश में तारे हैं, चांद है, उनके प्रति; ये जो लोग हैं, पशु हैं, पक्षी हैं, यह जो सौंदर्य है, कुरूपता है, जो कुछ भी है--फूल हैं, कांटे हैं, सबके प्रति बिना किसी कंडीशन के, बिना किसी शर्त के, बिना किसी आग्रह के जो प्रेम का दान है वह प्रार्थना है। और जब व्यक्तित्व में वैसी घड़ी घटित होती है कि जहां भी आपकी दृष्टि जाए वहीं उससे प्रेम बरसे, जहां भी आपके प्राण कंपित हों वहीं प्रेम बरसे, जहां भी आपकी श्वास जाए वहीं सुवास जाए प्रेम की, जो भी आपसे हो--विचार में, कर्म में, भाव में--वह सब प्रेमपूर्ण हो, तो आप प्रार्थना में प्रवेश कर रहे हैं। प्रार्थना बड़ी मुश्किल बात है। प्रार्थना आसान बात नहीं है; वह तो प्रेम का परिपूर्ण परिष्कृत रूप है।
तो इसको मैं प्रार्थना नहीं कहता कि आप हाथ जोड़े किसी मंदिर में खड़े हैं, तो इसको मैं प्रार्थना कह दूं, कि आप किसी मूर्ति के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। यह तो वही पुराना मांगना है जो आप लोगों के साथ कर रहे हैं। एक आदमी दूसरे से प्रेम मांग रहा है। वही फिर जरा घबड़ाता है तो मंदिर में जाकर मांगने लगता है। इसमें कोई भेद नहीं है, इसमें कोई फर्क नहीं है, यह तो मांगना ही है।
प्रेम दान है। तो प्रार्थना अगर मांगना है तो समझ लेना कि वह प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना भी प्रेम का अनंत दान होनी चाहिए। और जब वह होगी तो फिर क्रांति घटित होगी।
एक मुसलमान सूफी फकीर औरत हुई राबिया। उसके धर्मग्रंथ में कहीं लिखा
था कि शैतान को घृणा करो। उसने वह पंक्ति काट दी। अब धर्मग्रंथ में सुधार करना बड़ा पाप है। क्योंकि धर्मग्रंथ में कौन संशोधन करे! अब आप उठाएं और गीता में संशोधन कर दें, कुछ लकीरें काट दें और कुछ लिख दें, तो लोग आपको कहेंगे, आपने यह क्या अनर्थ कर डाला!
एक फकीर उसके घर मेहमान था, हसन नाम का फकीर था। उसने कुरान पढ़ी। उसने कहा, यह किसने इसमें गड़बड़ कर दी? यह तो ग्रंथ अपवित्र हो गया! यह किसने काट दिया कि शैतान को घृणा करो?
राबिया ने कहा, मैंने ही काटा है।
तो उसने कहा, यह तुमने क्या भूल की है!
राबिया ने कहा कि अब मेरी बड़ी मुश्किल हो गई है। जब से मैं प्रार्थना में प्रविष्ट हुई हूं, अब मैं किसी को घृणा कर ही नहीं सकती। अब अगर शैतान मेरे सामने खड़ा हो जाए तो प्रेम करने को मजबूर हूं। ईश्वर भी खड़ा हो, शैतान भी खड़ा हो--मैं दोनों को प्रेम कर सकती हूं। असल में अब मैं पहचान ही नहीं पाऊंगी कि कौन ईश्वर है? कौन शैतान है? क्योंकि प्रेम भेद करना नहीं जानता। तो अब मैं कैसे उसको घृणा करूंगी? क्योंकि मैं उसको पहचान ही नहीं पाऊंगी कि यह शैतान है। क्योंकि प्रेम कोई भेद नहीं करता। घृणा भेद करती है। प्रेम अभेद करता है, प्रेम अद्वय, अद्वैत है। प्रेम ही अकेला अद्वैत है।
यह जो प्रेम की अद्वैत अनुभूति है, उस चरम अनुभूति का नाम प्रार्थना है। प्रेम का ही परिशुद्धतम रूप प्रार्थना है। इसका ही अंतिम विकास प्रार्थना है। उस प्रार्थना को चाहता हूं, इसलिए ये जो तथाकथित प्रार्थनाएं हैं, चाहता हूं कि ये न हों, तो शायद उस तरफ हमारी दृष्टि उठे। अगर इनसे हम मुक्त हो जाएं तो उस तरफ प्रवेश हो सकता है।

एक और प्रश्न है। पूछा हैः ज्ञान-इंद्रियों से साक्षीभाव शक्य है, ऐसा कर्म-इंद्रियों से शक्य है या नहीं?

साक्षीभाव का अर्थ यदि समझ गए हैं, तो चाहे ज्ञान-इंद्रियां हों, चाहे कर्म-इंद्रियां हों, साक्षीभाव संभव है। साक्षीभाव का अर्थ हैः जो भी हो रहा है--चाहे विचार में हो रहा हो, चाहे कर्म में हो रहा हो--हम उस होते क्षण में अपने भीतर ध्यान के एक बिंदु पर मात्र तटस्थ दर्शक हो सकें। सिकंदर हिंदुस्तान से वापस लौटता था। वापस लौटने लगा तो उसे स्मरण आया, जब वह सीमा को छोड़ने लगा तो उसे स्मरण आया, भारत आते वक्त यूनान में उसने लोगों से पूछा था, क्या-क्या चाहते हो जो मैं भारत से लूट कर लाऊं? तो धन था, संपत्ति थी, स्वर्ण थे, आभूषण थे, हिंदुस्तान की बड़ी-बड़ी ख्याति की चीजें थीं, लोगों ने कहा, वे लेते आना। एक पागल ने यह भी कहा कि हिंदुस्तान से एक संन्यासी को लेते आना। संन्यासी और कहीं होता नहीं। यह प्राणी यहीं पैदा होता है। तो उन्होंने कहा, एक संन्यासी को भी लेते आना। वह भी अजीब चीज होगी, हम जरा देखें, क्या मामला क्या है? संन्यासी क्या है?
सिकंदर जब सब लूट कर लौटने लगा, सीमा पर था, उसे ख्याल आया--एक चीज रह गई, लोग पूछेंगे, एक संन्यासी को और पकड़ लाओ। सिपाहियों को उसने कहा कि जाओ, पता लगाओ, आसपास कोई संन्यासी हो तो ले चलें।
सिपाही गांव में गए, गांव के वृद्धों से पूछा, पता चला गांव के बाहर एक संन्यासी है। लेकिन लोगों ने कहा, जिसे तुम पकड़ कर ले जा सको, समझ लेना वह संन्यासी नहीं है। और जो संन्यासी होगा, उसे ले जाना बड़ा कठिन है। फिर भी गांव के बाहर एक संन्यासी है, तुम जाओ और मिल लो। सिपाही गए, नंगी तलवारें उनके हाथ में थीं। एक नंगा फकीर वहां खड़ा हुआ था नदी के किनारे। उन्होंने उससे कहा, यही है क्या? इसकी क्या ताकत, बांधो और ले चलो! उन सिपाहियों ने कहा कि आज्ञा है महान सिकंदर की कि आप हमारे साथ यूनान चलें! संपत्ति देंगे, समादर देंगे, सुविधा देंगे, वहां कोई कष्ट न होने देंगे।
संन्यासी हंसने लगा, उसने कहा कि तुम्हें संन्यासियों से बात करने का ढंग मालूम नहीं। पहली तो बात, जिस दिन संन्यासी हुए उसी दिन से किसी की भी आज्ञा माननी छोड़ दी। नहीं तो संन्यासी का मतलब ही नहीं। अब हम अपनी ही आज्ञा मानते हैं इस जगत में, और किसी की भी नहीं। दूसरी बात, तुम कहते हो कि आदर देंगे, सुविधा देंगे। जिस दिन संन्यासी हुए, उसका अर्थ यह है कि प्रलोभन हमने छोड़ दिया। तुम हमें प्रभावित नहीं कर सकते।
सिपाहियों ने कहा, तो फिर स्मरण रखो, प्रलोभन से प्रभावित नहीं होओगे
तो दंड से तो प्रभावित हो ही जाओगे।
संन्यासी हंसने लगा। उसने कहा, तुम्हें पता नहीं, जो प्रलोभन से प्रभावित होता है, केवल वही दंड से भी प्रभावित होता है। दंड भी प्रलोभन का उलटा रूप है।
सिपाही हैरान हुए! उन्होंने कहा, तो हम महान सिकंदर को क्या कहें?
उस संन्यासी ने कहा कि जाओ और कह दो, संन्यासी अपनी मर्जी से चलता है, अपनी मर्जी से बैठता है। उसके ऊपर कोई मर्जी नहीं लादी जा सकती। संन्यासी पर कोई सत्ता नहीं चलाई जा सकती। कह देना, संन्यासी पर सत्ता इसलिए नहीं चलाई जा सकती कि संन्यासी वस्तुतः जीवित ही नहीं है। जीवित हो तो डर दिया जा सकता है कि मार डालेंगे। तो तुम जाओ, यह कह देना।
सिकंदर खुद आया और उसने कहा कि तुम भूल में हो। अगर मैं तुम और तुम्हारे पूरे मुल्क से भी कहूं कि चलो, तो चलना पड़ेगा। तुम्हारी क्या हस्ती है? देखते हो यह तलवार! गर्दन अलग कर दी जा सकती है।
संन्यासी हंसा और उसने कहा कि अगर तुम गर्दन अलग करोगे, तो जिस भांति तुम देखोगे कि गर्दन गिरी, उसी भांति हम भी गर्दन का गिरना देखेंगे। हम भी! क्योंकि न तुम यह गर्दन हो, न हम गर्दन हैं। तो तुम भी देखोगे, हम भी देखेंगे। तुम भी साक्षी बनोगे, हम भी साक्षी बनेंगे। इस तरह के हम साक्षी हैं। तो तुम गर्दन काट दो, लेकिन वह गर्दन मेरी नहीं होगी, हम तो साक्षी रहेंगे, पीछे देखते रहेंगे कि अब गर्दन काटी गई, अब चोट लगी, अब गर्दन गिर गई।
शरीर के प्रति साक्षी हुआ जा सकता है; क्योंकि भीतर चेतना पृथक है, अलग है। यह हाथ मैं उठाता हूं--इस वक्त एक क्रिया हो रही है कि मैंने हाथ उठाया, तो हमें केवल एक ही बात का पता है कि मैं हाथ के उठाने का कर्ता हूं। लेकिन भीतर ख्याल करें, जब हाथ को मैं उठा रहा हूं तो भीतर एक चेतना है जो

देख रही है कि हाथ उठ रहा है। जब रास्ते पर आप चल रहे हैं तो आपके भीतर कोई देख रहा है कि आप चल रहे हैं। जब आप कुछ भी कर रहे हैं तो आपके भीतर कोई देख रहा है कि आप कुछ कर रहे हैं। चौबीस घंटे आपके भीतर कोई देखने वाला बिंदु है। लेकिन आपको उसका होश नहीं है।
साक्षीभाव का अर्थ हैः उस बिंदु का हमें क्रमशः स्मरण आता जाए, उसकी रिमेंबरिंग आती जाए, उसका होश आता जाए। जैसे-जैसे उसका होश हमें आता जाएगा, जैसे-जैसे उस बिंदु में जागरण होता जाएगा, स्फुरणा होती जाएगी, बिंदु टूटने लगेगा, उसके ऊपर के आवरण हटने लगेंगे, आप पाएंगे कि आप प्रत्येक क्रिया के साक्षी हैं। यहां तक कि निद्रा के भी! जब आप सो जाएंगे तब भी आपके भीतर एक बिंदु अभी भी जागता रहता है।
कभी आपने ख्याल किया? आप सोए हैं, आपका नाम राम है। रास्ते पर कोई विष्णु-विष्णु चिल्ला रहा है, आपको पता नहीं चलेगा। लेकिन किसी ने कहा-- राम! आप उठ कर बैठ जाएंगे। नींद में भी कोई सुन रहा है कि आपका नाम क्या है। दूसरे का नाम कोई बुलाता रहे, आप सोए रहेंगे। आपका कोई नाम बुला दे, आप नींद में भी उठ आएंगे। मां अपने बच्चे को लेकर सोती है--बाहर इंजन चलते रहें, कारें चलती रहें, लेकिन बच्चा जरा ही रोया, जरा ही सरका, और मां उसे सम्हाल लेती है। कोई भीतर बोध को पकड़े हुए है। कभी रात में आप कह कर सो जाएं अपना ही नाम लेकर, आपका नाम राम है, तो कह कर सो जाएं कि राम, ठीक पांच बजे उठ आना। तो आप हैरान हो जाएंगे, ठीक पांच बजे आपकी नींद टूट जाएगी। कोई आपके भीतर है जो जागा हुआ है, जो पांच बजे आपको उठा देगा।
आप तो हैरान होंगे, हिप्नोसिस और सम्मोहन के प्रयोगों ने बड़ी अदभुत बातें सिद्ध की हैं। अगर किसी व्यक्ति को सम्मोहित करके मूर्च्छित कर दिया जाए और उससे कह दिया जाए कि सत्रह हजार मिनट बाद तुम ऐसा-ऐसा काम करना; इसके बाद उसे होश में ला दिया जाए। उसे कुछ भी याद नहीं रहेगा। अब सत्रह हजार मिनट अगर आपसे कह दिया जाए तो आप होश में भी सत्रह हजार मिनट नहीं गिन सकते कि कब यह वक्त आएगा। उसको तो बेहोशी में कहा गया; होश में आने पर उसे कुछ पता भी नहीं है। लेकिन ठीक सत्रह हजार मिनट बाद वही काम वह व्यक्ति कर लेगा। उसके भीतर कोई जागा हुआ है, जो मिनट-मिनट का भी हिसाब, जिसे इसका बोध है।
हमारे भीतर किसी बिंदु पर बड़ा साक्षी बिंदु है। और इसीलिए जिसका साक्षी जाग्रत हो जाता है वह रात में सोता भी है और नहीं भी सोता है। उसके भीतर एक बोध बना रहता है। शरीर सोता है, उसके भीतर कोई जागा रहता है। बुद्ध के संबंध में कहा गया है... उनके पास दस हजार भिक्षु हमेशा चलते थे। देखते थे उनका उठना, बैठना, सोना, सब देखते थे। भिक्षु बड़े हैरान थे, बुद्ध जिस करवट सोते थे, रात भर उसी करवट सोए रहते थे, करवट नहीं बदलते थे। जो पैर जहां रखते थे वहीं रखे रहते थे, रात भर पैर नहीं हिलाते थे। जो हाथ जहां रखते थे वहीं रखे रहते थे, रात भर हाथ नहीं हिलाते थे। अनेक लोगों ने अनेक बार सोचा कि मामला क्या है? रात भर एक ही करवट, एक ही तरह से, जहां पैर, जहां हाथ वहीं बुद्ध कैसे सोए रहते हैं? तो उनके एक भिक्षु आनंद ने एक दिन पूछा कि क्या हमें यह पूछने की आज्ञा आप देंगे कि रात भर आपका पैर भी नहीं कंपता! हाथ भी नहीं हिलता! करवट जिस सोते हैं वही बनी रहती है!
बुद्ध ने कहा, स्मृतिपूर्वक सोता हूं। बुद्ध ने कहा, स्मृतिपूर्वक सोता हूं। साक्षीभाव तब भी बना रहता है। तो इसलिए अपने आप हाथ-पैर नहीं यहां-वहां हो सकते जब तक मैं न चाहूं, जब तक मैं न बदलना चाहूं। मेरे भीतर कोई जागा है और देख रहा है।
यहां तक कि जागने की शारीरिक क्रियाओं में तो साक्षीभाव हो ही सकता है, निद्रा के समय भी हो जाता है। लेकिन जिस-जिस मात्रा में चेतना जगेगी उस-उस मात्रा में वैसा होगा। अभी तो हमें कोई साक्षीभाव नहीं होता। अभी तो हम सब किए चले जाते हैं। जब क्रोध आकर चला जाता है तब हमें पता चलता है कि क्रोध कर लिया। जब कोई आदमी किसी की हत्या कर देता है तब खून के फव्वारे छूटे देख कर ख्याल में आता है कि यह मैंने क्या कर दिया! होश ही नहीं था जब किया। होश ही नहीं था जब क्रोध किया। इसलिए पीछे पछताते हैं। क्रोध करने के बाद क्रोधी पछताता है कि यह मैंने क्या कर दिया! यह तो मैंने बहुत बुरा कर दिया!

लेकिन बड़ी आश्चर्य की बात है, तुम थे कहां? जब तुमने किया तब तुम कहां थे? फिर कल... आज पछताएगा, कल फिर क्रोध करेगा, फिर पछताएगा, कहेगा कि बड़ा बुरा हो गया। कितनी दफा तय करता हूं कि क्रोध न करूं, फिर न मालूम क्या हो जाता है!
असल में हो क्या जाता है, होश है ही नहीं। तो तय करते हैं, फिर बेहोशी पकड़ लेती है। तय करने का कोई परिणाम नहीं होता, संकल्प का कोई परिणाम नहीं होता। संकल्प का कोई परिणाम हो ही नहीं सकता जब तक कि भीतर जागरण न हो, होश न हो, साक्षीभाव न हो।
निश्चित ही, शरीर की क्रियाओं के प्रति साक्षी का भाव हो सकता है। किसी भी क्रिया के प्रति हो सकता है। भोजन करते हैं, साक्षीभाव से करें, देखते हुए करें, होश रखें कि भोजन कर रहा हूं। एक-एक क्रिया दिखाई पड़ेः कौर बनाया गया, उठाया गया, मुंह में ले जाया गया, पानी उठाया गया, पीया गया। एक-एक छोटे-छोटे बिंदु को जानते हुए करें, भीतर होश बना रहे, भीतर स्मरण, जागृति बनी रहे। तो शरीर की क्रियाओं में भी जागरण होगा। मन की क्रियाओं में भी जागरण होगा। और जब शरीर और मन, दोनों की क्रियाओं में जागरण होगा, तो एक अदभुत जागी हुई चैतन्य स्थिति आप सतत अनुभव कर पाएंगे। अभी तो ऐसा है, हम ऐसे घर हैं जिसका दीया बुझा हुआ है। तब हम ऐसे घर होंगे जिसका दीया जला हुआ है। साक्षीभाव हो तो दीया जल जाता है। और जब भीतर दीया जले तो जीवन में पाप विलीन हो जाता है।

दूसरा प्रश्न इसी संदर्भ में पूछा है कि पाप क्या है और पुण्य क्या है?

भीतर दीया जला हो चैतन्य का, तो जो कर्म होते हैं वे पुण्य हैं। भीतर दीया बुझा हो, तो जो कर्म होते हैं वे पाप हैं। समझ लेना आप! कोई कर्म न तो पाप होता है, न पुण्य होता है। पुण्य और पाप करने वाले पर निर्भर होते हैं। कोई कर्म पाप और पुण्य नहीं होता। आमतौर से हम यही मानते हैं कि कर्म पुण्य और पाप होते हैं। यह काम बुरा है और वह काम अच्छा है।
यह बात नहीं है। जिस आदमी के भीतर का दीया बुझा है वह कोई अच्छा काम कर
ही नहीं सकता। यह असंभव है। दिख सकता है कि अच्छा काम कर रहा है। जिनके भीतर दीये जले रहे हैं उनके कर्मों का अनुकरण कर सकता है। लेकिन अनुकरण में भी वासना उसकी विपरीत होगी। अगर वह मंदिर बनाएगा, तो वह परमात्मा का नहीं होगा, अपने पिता का होगा, उनका नाम लिखवा देगा। अगर वह किसी को दान देगा, तो फिकर में होगा कि अखबारनवीस, जर्नलिस्ट आस-पास हैं या नहीं। वे खबर छापते हैं या नहीं छापते। वह दान प्रेम और करुणा नहीं होगी, वह भी अहंकार का प्रकाशन होगा। अगर वह किसी की सेवा करेगा, तो वह सेवा सेवा नहीं होगी। वह सेवा के गुणगान भी करेगा, करवाना चाहेगा। वह कहेगा, मैं सेवक हूं! वह चाहेगा कि लोग मानें कि मैंने सेवा की है। वह जो भी करेगा, उसके करने के पीछे चूंकि दीया जला हुआ नहीं है, इसलिए काम अच्छे दिखाई पड़ें भला, पाप ही होंगे। भीतर दीया जला न हो, तो जो भी हो सकता है वह पाप ही हो सकता है। पाप मेरे लिए चित्त की एक दशा है, कर्म का स्वरूप विभाजन नहीं।
और अगर भीतर का दीया जला हो, तो वह जो भी करे वह पुण्य होगा। हो सकता है ऊपर से दिखाई पड़े कि यह तो पुण्य नहीं, यह कर्म तो पुण्य नहीं; लेकिन वह पुण्य ही होगा। असंभव है कि उससे पाप हो जाए। क्योंकि जिसका बोध जाग्रत है उससे पाप कैसे हो सकता है? उससे पाप नहीं हो सकता।
लेकिन हम कर्म के तल पर चीजों को नापते-तौलते हैं। कल या परसों मैंने आपसे कहा, आचरण बहुत मूल्यवान नहीं है, अंतस मूल्यवान है। तो अंतस पाप की स्थिति में हो सकता है यदि अंधकार से भरा है; अंतस पुण्य की स्थिति में होता है अगर वह प्रकाश से भरा है। प्रकाशपूर्ण चित्त पुण्य की दशा में है; अंधकारपूर्ण चित्त पाप की दशा में है। ये कर्म के लक्षण नहीं हैं। ये कर्म के बिल्कुल लक्षण नहीं हैं। कर्म का लक्षण, कर्म का लक्षण कुछ भी तय नहीं करता। क्योंकि व्यक्ति भीतर बिल्कुल दुर्जन हो सकता है, आचरण बाहर सज्जन का कर सकता है--अनेक कारणों से।

हम इतने लोग यहां बैठे हैं, हम शायद सोचते होंगे कि हम चोरी नहीं करते
तो हम बड़ा पुण्य करते हैं। लेकिन अगर आज पता चल जाए कि हुकूमत नष्ट हो गई, चौरस्ते पर कोई पुलिस का आदमी नहीं है, अब कोई अदालत न रही, अब कोई सिपाही नहीं, अब कोई कानून नहीं। फिर पता चलेगा कितने लोग चोरी नहीं करते हैं। आप सोचते होंगे कि हम चोरी नहीं करते तो बड़ा पुण्य का काम कर रहे हैं।
चोरी न करना काफी नहीं है, चित्त में चोरी के न होने का सवाल है। आपको अगर सबको सुविधा और पूरा मौका मिल जाए, मुश्किल से कोई बचेगा जो चोरी न करे। तो यह जो अचोरी है, यह फिर पुण्य नहीं है। यह केवल भय और दहशत और डर, कमजोरी, और अनेक बातें हैं जिनकी वजह से आप चोरी नहीं कर रहे हैं। आपको मौका नहीं है, भयभीत हैं, कमजोर हैं, डरे हुए हैं; उस डर को, भय को छिपाने के लिए, अदालत से, नरक से घबड़ाए हुए हैं, उसको छिपाने के लिए आप कहते हैं, मैं तो चोरी नहीं करता, चोरी करना बहुत बुरी बात है। मैं तो चोरी करने का बुरा काम करता ही नहीं।
जो आदमी कर रहा है चोरी, उसमें आप में हो सकता है केवल सामर्थ्य का और साहस का फर्क हो। केवल सामर्थ्य और साहस का फर्क हो, वह ज्यादा साहसी हो। या हो सकता है विवेकहीन हो! इसलिए विवेकहीन में ज्यादा साहस दिखाई पड़ जाता है। क्योंकि उसे समझ में नहीं आता कि मैं क्या कर रहा हूं, क्या परिणाम होगा! आप सब हिसाब-किताब सोचते हैं।
लेकिन अगर सारी चोरी की सुविधाएं हों, सारी चोरी की भीतर अनुकूल परिस्थिति हो, और फिर कोई आदमी चोरी न करे, तो बहुत अलग बात हो जाएगी, बहुत अलग बात हो जाएगी। अगर यह भी कोई कह दे कि चोरी करने वाले अब नरक नहीं जाएंगे बल्कि स्वर्ग जाएंगे; कोई धर्मशास्त्र यह भी कहने लगे कि अब चोरी करने वाले, अब कानून बदल गया परमात्मा का, अब वे उनको नरक नहीं भेजते, अब उनको स्वर्ग भेजते हैं; फिर भी कोई आदमी चोरी न करे। अगर यह पता चल जाए कि अब चोरी करने वालों को कष्ट नहीं दिया जाता बल्कि सम्मान मिलता है, और राष्ट्रपति जो हैं वह उनको पुरस्कार देते हैं और पदवियां देते हैं, और भगवान भी अब उनका सत्कार करने लगे हैं; फिर भी कोई चोरी न करे। अगर कोई यह कहे कि जो चोरी नहीं करेगा उसको नरक में डाला जाएगा और सड़ाया जाएगा; और फिर भी चोरी न कर सके। तब तो समझना कि उसके चित्त की स्थिति अचोरी की हो गई है। नहीं तो उसकी चित्त की स्थिति अचोरी की नहीं है। यह सारी बात है।
अब जैसे हिंदुस्तान-पाकिस्तान का झगड़ा हुआ या हिंदुस्तान-पाकिस्तान
का बंटवारा हुआ। जब बंटवारा हुआ, तो जो पड़ोस में थे, भले लोग थे, मंदिर जाते थे, मस्जिद जाते थे, वे एक-दूसरे की छाती में छुरा भोंकने लगे, क्योंकि मौका मिल गया। उसके पहले मौका नहीं था तो वे मस्जिद जाते थे; अब मौका मिल गया तो छुरा भोंकने लगे। मौका नहीं मिलता था तो मंदिर में प्रार्थना करते थे; मौका मिल गया तो मकान में आग लगाने लगे।
कल जब ये मंदिर जा रहे थे तब आप सोचते हैं ये दूसरे आदमी थे? यह छुरा भोंकने वाला आदमी कल भी मौजूद था। लेकिन परिस्थिति नहीं थी इसलिए प्रकट नहीं हो रहा था, छिपा हुआ था। आज परिस्थिति प्रकट होने की हो गई है, यह प्रकट हो गया। कल मालूम हो रहा था कि मंदिर जाना पुण्य है; आज पता चल रहा है कि दस हजार हिंदुओं को काट सकता है, आग लगा सकता है या मुसलमानों को आग लगा सकता है। यह वही आदमी है।
मेरे गांव में वहां हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए, तो मैंने देखा कि वे ही लोग जिनको हम समझते हैं भले हैं, जो रोज सुबह गीता उठ कर पढ़ते हैं, वे इकट्ठे करने लगे कि किस तरह मुसलमानों को काटा जाए। तो मैं मानता हूं, जब वे गीता को पढ़ते थे, यही के यही आदमी थे। गीता आगे पढ़ रहे थे, भीतर वही काटना-पीटना छिपा था, मौजूद था। परिस्थिति नहीं थी। परिस्थिति सामने आ गई, एक नारा खड़ा हो गया कि हिंदू-मुसलमान में दंगा हो गया। इतनी सी बात अखबार में छप गई और यह आदमी बदल गया! यह मकान जलाने की सोचने लगा! यह वही का वही आदमी है, मौका इसे नहीं था। अब बहाना मिल गया; अब एक मौका मिला कि अपनी हिंसा दिखा सकता है एक बहाने का नाम लेकर। एक स्लोगन--कि मैं हिंदू हूं और हिंदू धर्म खतरे में है, मुसलमान को खतम करो! अब यह बहाना मिल गया, अब यह खतरा कर सकता है।

इनको कोई भी बहाना मिल जाए--गुजराती और मराठी में झगड़ा हो जाए, हिंदी बोलने वाले और गैर-हिंदी बोलने वालों में विरोध हो जाए--तो ये आग लगाने लगेंगे, हत्या करने लगेंगे। इनका सब धर्म, इनकी सब अहिंसा, इनकी सब नैतिकता एक तरफ धरी रह जाएगी। तो इनकी जो नैतिकता चल रही थी वह बिल्कुल झूठी थी, उसका कोई मूल्य नहीं था। इनकी जो अहिंसा चल रही थी, बिल्कुल थोथी थी, उसका कोई मूल्य नहीं है। इनके भीतर ये सब चीजें छिपी थीं, अवसर की तलाश थी।
आप दुनिया को अवसर दे दें, यह जमीन इसी वक्त नरक हो सकती है इसी क्षण।
आप नरक का पूरा इंतजाम किए बैठे हैं। लेकिन मंदिर भी जाते हैं, दान भी करते हैं, ग्रंथ भी पढ़ते हैं, सदगुरु के चरणों में प्रणाम भी करते हैं। ये सब बातें भी हैं, और आप अभी नरक बना दें इसी जगह को इसी क्षण, एक सेकेंड में यह नरक हो जाए। एक नारा उठे और यह अभी नरक हो जाए। अभी जिस आदमी के पास बैठ कर आप बड़े धार्मिक बने बैठे हैं उसी की गर्दन दबा सकते हैं इसी वक्त। तो मेरा मानना यह है कि आप जब नहीं दबा रहे हैं तब भी आप दबाने की स्थिति में तो हैं; नहीं तो एकदम से कैसे स्थिति आ जाएगी?
पाप की स्थिति होती है, पाप का कर्म नहीं होता। वह स्टेट ऑफ माइंड है।
और जब तक हम उसको कर्म समझेंगे, तब तक दुनिया में बहुत क्रांति नहीं हो सकती। क्योंकि कर्म का कोई पता नहीं चलता। कर्म तो मौके-मौके पर प्रकट होते हैं और अच्छे-अच्छे बहाने लेकर प्रकट हो जाते हैं। अच्छे-अच्छे बहाने ले लेते हैं और प्रकट हो जाते हैं। इसीलिए यह संभव हुआ है कि दुनिया में कोई भी शैतान आदमी, कोई भी हुकूमत, कोई भी पोलिटीशियन, कोई भी राजनीतिज्ञ किसी भी क्षण दुनिया को युद्ध में डाल सकता है, किसी भी क्षण! क्योंकि सारे लोग तैयार हैं पाप करने को, बिल्कुल तैयार हैं। मौका नहीं है उनको। किसी भी क्षण, कोई भी बहाना--डेमोक्रेसी का, कम्युनिज्म का, भारत का, पाकिस्तान का, हिंदू का, मुसलमान का--कोई भी नारा, जरा सी आग पकड़ाने की जरूरत है और आप दुनिया को एकदम पाप से भर सकते हैं। फिर लाखों लोगों को काट सकते हैं और मजा लेंगे।
ये वे ही लोग जो पानी छान कर पीते हैं, यह खबर सुन कर प्रसन्न होते हैं
कि पाकिस्तान का फलां गांव बर्बाद कर दिया गया। या हिंदुस्तान का फलां गांव बर्बाद कर दिया गया; वही आदमी जो रोज नमाज पढ़ता है, वह प्रसन्न होता है कि अच्छा हुआ।
मैं यह समझ नहीं सकता कि यह आदमी जो पानी छान कर पीता था, अखबार में पढ़ता है, रात को खाना नहीं खाता था, अखबार में पढ़ता है कि इतने पाकिस्तानी मर गए, तो सोचता है बहुत अच्छा हुआ। यह आदमी अहिंसक है? इसका पानी छान कर पीना धोखा है, बेईमानी है। इसका रात को न खाना सब झूठी बकवास है। इसका कोई मतलब और मूल्य नहीं है। इसका स्टेट ऑफ माइंड तो पाप का है। यह कर्म-वर्म कुछ भी करे, इसकी चित्त की दशा तो पापपूर्ण है।
इसलिए दुनिया को कभी भी किसी भी भूकंप में डाला जा सकता है, किसी भी उपद्रव में डाला जा सकता है। लोगों के काम तो बड़े अच्छे मालूम होते हैं, लेकिन चित्त की दशा जरा ही, स्किनडीप, जरा सी चमड़ी उघाड़ो, भीतर पाप मौजूद है। और काम बड़े अच्छे-अच्छे कर रहे हैं।
टॉल्सटॉय ने लिखा है कि मैं एक दिन सुबह-सुबह चर्च में गया। अंधेरा था, सर्दी के दिन थे, बर्फ पड़ती थी, कोई नहीं था चर्च में, मैं गया। एक और आदमी था, वह कनफेशन कर रहा था भगवान के सामने। उसे पता नहीं कि कोई दूसरा भी अंधेरे में मौजूद है, नहीं तो कनफेशन करता ही क्यों? वह वहां कह रहा था कि हे परमपिता, मैं बड़ा बुरा आदमी हूं, मेरे मन में बड़े पाप उठते हैं, तू मुझे क्षमा कर! चोरी का भाव भी आता है, पर-स्त्री-गमन का भाव भी आता है, दूसरे के धन को हड़प लेने की वृत्ति भी पैदा होती है, तू मुझे क्षमा कर! उसे पता नहीं था कि यहां कोई और आदमी भी खड़ा है। वह चर्च से बाहर निकला, टॉल्सटॉय उसके पीछे हो लिया। जब बीच बाजार में पहुंचे, सुबह हो गई थी, लोग आ-जा रहे थे, उसने चिल्ला कर कहा कि ओ पापी, चोर, खड़ा रह!
वह आदमी बोला, अरे, कौन कहता है मुझसे पापी और चोर?
टॉल्सटॉय ने कहा कि मैं चर्च में मौजूद था, मैंने सुन लिया है।

उस आदमी ने कहा, अगर दुबारा मुंह से निकाला तो अदालत में अपमान का मुकदमा चलाऊंगा। वह बड़ा प्रतिष्ठित आदमी था गांव का। वह मैंने भगवान के सामने कहा था, तुम्हारे सामने नहीं कहा था।
टॉल्सटॉय ने कहा, मैंने तो यह सोचा कि तूने मान लिया है कि तू पापी है, चोर है। लेकिन तू मानने को राजी नहीं। अदालत में मुकदमा चलाएगा?
यह स्थिति है हमारे चित्त की। भीतर तो वह छिपा है और बाहर हम अदालत में मुकदमा चलाएंगे अगर कोई हमसे चोर कह दे, हम शिकायत करेंगे कि यह क्या आपने हमसे कह दिया! तो हमारा कर्म, हमारा ऊपर का आवरण मूल्य नहीं रखता। मूल्य तो अंतस रखता है। उस अंतस की क्रांति की बात है।
तो मैं मानता हूं, पाप-पुण्य कर्मों में नहीं होते, पाप-पुण्य होते हैं चित्त की दशाओं में। एक आदमी की चित्त की दशा पाप की हो, अंधकार की हो, तो वह कुछ भी करे, कुछ भी करे, कितना ही पानी छाने, कितनी ही बार छाने, उसकी हिंसा नहीं मिटेगी। और कितना ही रात को खाए, न खाए, कितना ही उपवास करे, न करे, कितनी ही पूजा करे, कितनी ही प्रार्थना करे--कुछ भी करे, लाख करे--अगर भीतर चित्त की दशा अंधकारपूर्ण है, उसका सब करना पापपूर्ण होगा। उसके भीतर पाप की स्थिति बनी ही रहेगी। वह जा नहीं सकती। वह किसी स्थिति में नहीं जा सकती।
उसे तो सीधी चोट करनी होगी कोई और उपायों से कि वहां भीतर परिवर्तन हो, अंधकार मिटे और प्रकाश आए। तब उसके कर्म परिवर्तित हो जाएंगे। तब हो सकता है वह रात को भी भोजन कर ले और हिंसक न हो; तब हो सकता है कि वह पानी भी बिना छाने कभी पी जाए और हिंसक न हो। वह तो चित्त की भीतर परिवर्तन की स्थिति है। वह वहां परिवर्तन होना चाहिए। और तब फिर जीवन का कर्म सहज ही ठीक होना शुरू हो जाता है, उसे ठीक करना नहीं होता। वह सहज ही ठीक होना शुरू हो जाता है। सहज ही भीतर जब ज्योति आनी शुरू होती है, कर्म का अंधकार गिरने लगता है और कर्म पुण्य होने लगते हैं।
मैं समझता हूं मेरी बात समझेंगे। कर्म नहीं मूल्यवान है; मूल्यवान अंतस की स्थिति है। और अंतस की स्थिति कैसे बदले, उसके मार्ग पर ही हम विचार कर रहे हैं। लेकिन यह दृष्टि आप ख्याल में रखें। कर्मों को दोष मत दें, दोष हमेशा भीतर बैठे व्यक्ति का है। लेकिन हम धोखा पैदा कर लेते हैं। हम सोचते हैंः क्या हर्जा है? थोड़ा-बहुत पाप भी होता है, तो थोड़ा-बहुत पुण्य भी करेंगे!
यह असंभव है। यानी यह संभव नहीं है कि आप सोचते हों कि अब चलो, कोई बात नहीं, इतना पाप करते हैं, एकाध-दो पुण्य भी कर लें, उस तरफ भी कुछ खाते में जमा हो जाए। यह असंभव है। या तो पाप होगा, या पाप नहीं होगा। बीच की कोई स्थिति नहीं है। यह नहीं हो सकता कि थोड़ा पाप करें और थोड़ा न करें, यह हो ही नहीं सकता। क्योंकि भीतर चित्त अखंड है, उसके टुकड़े नहीं हैं। उसमें ऐसा नहीं है कि आधा चित्त पाप से भरा है और आधा पुण्य से भरा है, ऐसा कोई कंपार्टमेंट, ऐसा कोई विभाजन नहीं है। चित्त इकट्ठा है। इसलिए जिस इकट्ठे चित्त से थोड़े से पाप निकल रहे हैं, उस चित्त से कभी भी किसी स्थिति में पुण्य नहीं निकल सकता। वह तो चित्त पापपूर्ण है। और अगर उसमें से पुण्य निकलने लगे, तो उसमें से पाप नहीं निकल सकता।
यानी मेरा मानना यह है कि एक आप प्रकाश का दीपक जलाएं तो ऐसा नहीं हो सकता उसमें कि अंधेरा भी निकल रहा है थोड़ा सा, थोड़ा प्रकाश भी निकल रहा है। ऐसा नहीं हो सकता। या तो प्रकाश ही निकलेगा, या फिर ज्योति बुझी रहेगी तो अंधकार ही निकलेगा।
लेकिन इस भ्रम में मत रहना आप कि थोड़ा-बहुत तो करते ही चलें। थोड़ा- बहुत नहीं होता। पूरा परिवर्तन करना होता है, थोड़ा-बहुत बिल्कुल नहीं होता। इससे भ्रम पैदा होता है, धोखा पैदा होता है। इसी तरह दुनिया भर के हत्यारे, बेईमान, शोषक संपत्ति इकट्ठी करते जाते हैं; थोड़ा-बहुत दान भी करते जाते हैं, इस ख्याल से कि चलो यह पुण्य भी हो गया।
इस भ्रम में कोई न रहे! क्योंकि संपत्ति को इकट्ठा करना इतना बड़ा पाप
है कि दान से कोई पुण्य नहीं हो सकता। संपत्ति को इकट्ठा करना इतना बड़ा पाप है, बहुत गहरे में, बहुत जड़ में, कि दान से कोई पुण्य नहीं हो सकता। कोई कितना ही दानवीर कहे, धोखे में मत आ जाना, वे सब दान खींचने की तरकीबें

हैं। वह दानवीर कहना और प्रशंसा देना कि बहुत बड़े दानवीर हैं, ऐसा है, वैसा है; इतना दान किया, उतना दान किया; वे सब दान खींचने की तरकीबें हैं। वे आपका खीसा खाली करने की तरकीबें हैं। लेकिन इस भ्रम में मत पड़ जाना कि आपसे दान हो जाएगा। आपकी सारी प्रवृत्ति संग्रह की है। उस संग्रह की प्रवृत्ति में से दान हो ही नहीं सकता।
और अगर होगा तो उसमें कोई न कोई आगे संग्रह करने का भाव होगा--कि चलो कुछ दो, कहीं भगवान हो तो थोड़ा ख्याल रखेगा; कहीं स्वर्ग हो तो जरा छोटी स्टूल न मिलेगी, जरा बड़ी कुर्सी मिलेगी। कोई न कोई भाव पीछे होगा, कोई न कोई भीतर बात होगी। क्योंकि यह असंभव है कि एक आदमी इधर से लोगों की हत्या करता रहे और इस तरफ अस्पताल बनवाता जाए। यह बिल्कुल असंभव है! यानी यह आदमी बिल्कुल गड़बड़ है, इसको पता ही नहीं कि यह क्या कर रहा है। यह हो ही नहीं सकता। यह बिल्कुल ही असंभव बात है कि एक ही आदमी से ये दोनों बातें एक साथ होती रहें, इनमें से एक बात झूठी होगी। एक बात सच्ची नहीं हो सकती, वह केवल आवरण होगी।
लेकिन हम यह धोखा खाते रहते हैं, अपने को देते रहते हैं। देते रहते हैं इसलिए कि हमें थोड़ी सुविधा हो जाती है। कोई आदमी अपने को पापी नहीं मानना चाहता। पापी मानने में बड़ी आत्मग्लानि होती है। तो थोड़ा-बहुत काम ऐसा कर लिया जिसको लोग पुण्य कहते हैं, तो आत्मग्लानि से बचना हो जाता है। आत्मग्लानि बच जाती है, थोड़ा ऐसा लगता है कि आखिर हम भी कुछ तो पुण्य करते ही हैं; कोई फिकर नहीं, थोड़ा करते हैं तो कुछ तो करते हैं। फिर धीरे-धीरे बढ़ेंगे, ऐसा धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते ज्यादा पुण्य कर लेंगे। तो अपनी आंखों में अपनी तस्वीर को बिल्कुल अंधकारपूर्ण, अंधेरा पुती हुई कोई नहीं देखना चाहता। सोचते हैं कि थोड़ा-बहुत तो सफेद रंग दिखाई पड़े। तो वह सफेद रंग दिखाने के लिए थोड़ा-बहुत करते हैं, उसको हम पुण्य कहते हैं।
यह सब झूठी बात है। वहां हमारे चित्त की जब तक आमूल-क्रांति न हो, तब
तक कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। तो या तो पाप होता है, या पुण्य होता है। पाप और पुण्य साथ-साथ किसी व्यक्ति से नहीं हो सकते।
मेरी दृष्टि मैं आपको कहता हूं। मेरी समझ मैं आपको कहता हूं। मुझे ऐसा ही दिखाई पड़ता है कि यह असंभावना है, यह बिल्कुल असंभावना है। हां, अगर व्यक्ति का अंतस आलोकित हो जाए तो उससे पाप असंभव है। उससे पाप बिल्कुल असंभव है। अगर आपको दिखाई भी पड़े कि यह पाप हुआ, तो आप ही भूल में होंगे, पाप उस व्यक्ति से हो नहीं सकता है।
एक छोटी सी कहानी कहूं, फिर यह चर्चा पूरी करूंगा। फिर रात्रि के ध्यान के लिए हम बैठेंगे।
एक छोटे से गांव के बाहर एक साधु ठहरा हुआ था। युवा साधु है, बहुत सुंदर है, बड़ा प्रतिभाशाली है, बड़ा प्रभाव है। गांव के लोग आदर करते हैं, प्रेम करते हैं, सम्मान देते हैं। सारा गांव सम्मान करता है।
एक दिन अचानक सारी हवा बदल गई। गांव में एक लड़की को बच्चा पैदा हुआ और
उस लड़की ने कहा कि वह साधु का बच्चा है। सारा गांव बदल गया।
आदर के अनादर में बदलने में बहुत देर थोड़े ही लगती है। क्योंकि जो आदर देते हैं उनके पीछे अनादर की पूरी तैयारी रहती है कि मौका मिल जाए तो अभी अनादर करें। इसलिए जब कोई कभी किसी को आदर दे तो बहुत सावधान रहना, वह अनादर की तैयारी भी कर रहा है--किसी भी वक्त! क्योंकि जिन कारणों से वह आदर दे रहा है वे बड़े बारीक हैं। जरा ही दूसरे कारण मौजूद हो जाएं, सब गड़बड़ हो जाएगा। इसलिए आदर देने वाले से हमेशा सावधान रहना चाहिए, वह अनादर कर सकता है।
सारा गांव बदल गया। गांव टूट पड़ा, उसके झोपड़े में आग लगा दी। वह अपना सुबह बाहर बैठा धूप ले रहा था। ठंड के दिन थे। उसने पूछा कि मामला क्या है? तो जाकर लोगों ने कहा, मामला पूछते हो? और वह बच्चा उसके ऊपर पटक दिया
और कहा कि मामला यह है! पहचानो, यह तुम्हारा बच्चा है!
उसने कहा, इ.ज इट सो? ऐसी बात है? बच्चा मेरा है? उसने उसे गौर से देखा, उसे कंधे से लगा लिया। वह रोता था, उसे समझाने लगा। गांव के लोग गाली-गलौज बकते वापस लौट गए।

फिर वही साधु भिक्षा मांगने गया। कल तक बड़े-बड़े लोग आकर कहते थे कि हमारे घर में पैर रख दें तो पवित्र हो जाए, उन्हीं लोगों ने दरवाजे बंद कर लिए। वह दरवाजे पर खड़ा है कि मुझे दो रोटी मिल जाएं। वही दरवाजे जो कहते थे कि तुम्हारे पैर पड़ जाएं तो पवित्र हो जाएगा हमारा घर, वही दरवाजे बंद हो गए। उन्होंने कहा, आगे बढ़ जाओ! कभी भूल कर इस द्वार पर दुबारा छाया मत डालना। गांव के बच्चों की, लोगों की भीड़ उसके पीछे गालियां देती हुई, पत्थर फेंकती हुई चली।
फिर वह उस दरवाजे के सामने पहुंचा, जिसकी बेटी का यह लड़का है। और उसने
उस दरवाजे के सामने आवाज लगाई कि कसूर मेरा होगा इसका बाप होने में, लेकिन इसका मेरे बेटे होने में तो कोई कसूर नहीं हो सकता। बाप होने में मेरी गलती होगी, लेकिन इसकी तो कोई गलती नहीं हो सकती। कम से कम इसे तो दूध मिल जाए।
वह लड़की द्वार पर खड़ी थी। उसके प्राण कंप गए! फकीर को भीड़ में घिरा हुआ, पत्थर खाते हुए देख कर--वह उस बच्चे को बचा रहा है, उसके माथे से खून बह रहा है--सच्ची बात छिपाना मुश्किल हो गई। उसने अपने बाप के पैर पकड़ कर कहा कि क्षमा करें, इस फकीर को तो मैं पहचानती भी नहीं। सिर्फ इसके असली बाप को बचाने के लिए मैंने इस फकीर का झूठा नाम ले लिया!
वह बाप आकर फकीर के पैरों पर गिर पड़ा और बच्चे को छीनने लगा और कहा, क्षमा कर दें।
उस फकीर ने पूछा, लेकिन बात क्या है? बेटे को छीनते क्यों हो?
उसके बाप ने कहा--लड़की के बाप ने--कि आप कैसे नासमझ हैं! आपने सुबह ही क्यों न बताया कि यह बेटा आपका नहीं है? आप छोड़ दें, यह बेटा आपका नहीं है, हमसे भूल हो गई।
वह फकीर कहने लगा, इ.ज इट सो? बेटा मेरा नहीं है? पर तुम्हीं तो सुबह कहते थे कि तुम्हारा है। और भीड़ तो कभी झूठ बोलती नहीं। अब तुम जब बोलते हो कि नहीं है मेरा, तो नहीं होगा।
लेकिन लोग कहने लगे कि तुम कैसे पागल हो! तुमने सुबह कहा क्यों नहीं
कि बेटा तुम्हारा नहीं है? तुम इतनी निंदा और अपमान झेलने को राजी क्यों हुए?
वह फकीर कहने लगा, मैंने तुम्हारी कभी चिंता नहीं की कि तुम क्या सोचते हो। तुम आदर देते हो कि अनादर। तुम श्रद्धा देते हो कि निंदा। मैंने तुम्हारी आंखों की तरफ देखना बंद कर दिया है। क्योंकि मैं अपनी तरफ देखूं कि तुम्हारी आंखों की तरफ देखूं! और जब तक मैंने तुम्हारी तरफ देखा, तब तक अपने को देखना मुश्किल था। क्योंकि तुम्हारी आंख तो प्रतिपल बदल रही है, और हर आदमी की आंख अलग है, ये हजार-हजार दर्पण हैं, मैं किस-किस में झांकूं? मैंने अपने में ही झांकना शुरू कर दिया है। अब मुझे फिकर नहीं कि तुम क्या कहते हो। अगर तुम कहते हो बेटा मेरा, तो सही, मेरा ही होगा। किसी का तो होगा! मेरा ही सही। अब तुम कहते हो, नहीं। तुम्हारी मर्जी, नहीं होगा मेरा। लेकिन मैंने तुम्हारी आंखों में देखना बंद कर दिया है।
और वह फकीर कहने लगा, मैं तुमसे भी कहता हूं कि कब वह दिन आएगा कि तुम दूसरों की आंखों में देखना बंद करोगे और अपनी तरफ देखना शुरू करोगे?

जीवन रहस्य
पांचवां प्रवचन

विश्वास--विचार--विवेक

कल दो सूत्रों पर कुछ बात मैंने आपसे की। उस संबंध में बहुत से प्रश्न
भी पूछे गए हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या विचार करना ही जीवन का ध्येय है? और क्या विचार से ही जीवन के सत्य का अनुभव हो सकता है?

विचार प्रक्रिया है, विचार सीढ़ी है। और सीढ़ी के साथ एक अदभुत बात है
जो समझ लेनी चाहिए। बहुत कम लोग समझ पाते हैं बहुत सीधे से सत्यों को भी। सीढ़ी के साथ एक अदभुत सत्य है कि अगर ऊपर पहुंचना हो मकान के तो सीढ़ी पर चढ़ना भी पड़ता है और उतरना भी पड़ता है। सीढ़ी पर पैर भी रखने पड़ते हैं और फिर सीढ़ी को छोड़ भी देना पड़ता है। अगर कोई कहे कि सीढ़ी पर हम चढ़ेंगे जरूर, लेकिन फिर सीढ़ी से उतरेंगे नहीं, तो भी वह आदमी मकान के ऊपर नहीं पहुंच सकेगा। और कोई अगर कहे कि जब उतरना ही है सीढ़ी से तो चढ़ने की जरूरत क्या है? तो वह आदमी भी मकान के ऊपर नहीं पहुंच सकेगा।
मैंने सुना है, एक स्टेशन पर ट्रेन खड़ी थी और हरिद्वार की तरफ जाती थी। हजारों लोग गाड़ी में बैठ रहे थे और पूरे स्टेशन पर एक ही आवाज थी कि किसी तरह गाड़ी के भीतर बैठो, सामान भीतर पहुंचाओ, सीट पकड़ो, जगह बनाओ। एक मित्र को घेर कर कुछ लोग समझा रहे थे। वह मित्र यह पूछ रहा था कि इस ट्रेन में बैठने से फायदा क्या जब हरिद्वार पर उतरना ही पड़ेगा? जब उतरना ही है तो बैठें क्यों? और दलील उसकी सच थी, तर्क उसका ठीक था। कई बार तर्क बिल्कुल ठीक होते हैं। सिर्फ ठीक दिखाई पड़ते हैं, बुनियाद में ठीक नहीं होते। वह ठीक कह रहा था कि जिस ट्रेन से उतरना है उसमें चढ़ना क्यों? लेकिन मित्रों ने कहा, गाड़ी जा रही है और हमें समझाने का मौका नहीं है,
हम जबरदस्ती तुम्हें अंदर बिठा लेते हैं। जबरदस्ती उस आदमी को उन्होंने अंदर बिठा लिया।
फिर हरिद्वार पर फिर विवाद शुरू हो गया। उस आदमी ने कहा, जब मैं चढ़ ही गया तो अब मैं उतरूंगा नहीं। कि जब चढ़ ही गए तो उतरना क्या? और जब चढ़ाया था इतनी मेहनत से तो क्या उतारने को चढ़ाया था?
फिर मित्र समझाने लगे कि गाड़ी छूटने को है, उतरते हो कि नहीं उतरते! तुम आदमी पागल हो।
उसकी दलील में तो कोई गलती न थी। लेकिन जिंदगी दलीलें नहीं मानती, जिंदगी की अपनी दलीलें हैं। इस जिंदगी में सबसे बड़े मजे की बात यह है कि जिस चीज को भी सीढ़ी बनाना हो, उसे पकड़ना भी पड़ता है और छोड़ना भी पड़ता है। विचार प्रक्रिया है, विचार को पकड़ना जरूरी है, आत्यंतिक रूप से विचार
को पकड़ना जरूरी है, ताकि सारा चित्त विचार की अग्नि से गुजर जाए। फिर एक घड़ी आती है कि विचार को छोड़ भी देना पड़ता है। सत्य का चरम अनुभव तो निर्विचार चित्त को होता है। जहां विचार भी नहीं रह जाते वहां सत्य का पता चलता है।
लेकिन आप कहोगे कि जब निर्विचार चित्त को सत्य का अनुभव होता है, तो
हम विचार करें ही क्यों? जब विचार को एक क्षण छोड़ देना पड़ेगा और निर्विचार होना पड़ेगा, तो फिर विचार में पड़ना ही क्यों? हम बिना विचार के ही क्यों न रह जाएं?
लेकिन हरिद्वार के स्टेशन पर उतरना गाड़ी से एक बात है और किसी दूसरे स्टेशन से न चढ़ना बिल्कुल दूसरी बात है। क्योंकि वह न चढ़ा हुआ आदमी हरिद्वार नहीं पहुंच जाएगा।
विचार को जो करता ही नहीं वह विश्वास पर अटका रह जाता है। विश्वास अंधापन है, और अंधा आदमी सत्य को कभी नहीं जान सकता। जो विचार नहीं करता वह बिलीफ और विश्वास में खड़ा रह जाता है। और जो आदमी विश्वास में बंधा रह जाता है वह अंधा है, उसकी आंखों पर पट्टी है, उसका शोषण हो सकता है, उसको

भटकाया जा सकता है। लेकिन वह कभी सत्य तक नहीं पहुंच सकता। सत्य तक पहुंचने की पहली शर्त हैः विश्वास से मुक्त हो जाओ।
विश्वास का मतलब क्या है? विश्वास का मतलब हैः कोई कहता है और हम मान लेते हैं, हम नहीं जानते। विश्वास का मतलब हैः कोई जानता है और हम मानते हैं। विश्वास का मतलब हैः आंखें किसी और की हैं, प्रकाश की खबर किसी और ने दी है। न हमें प्रकाश दिखाई पड़ता है, न हमारे पास आंखें हैं, हम सिर्फ मान लेते हैं। हमारा यह मानना बहुत खतरनाक है।
रामकृष्ण कहते थे, एक आदमी था अंधा, उस अंधे आदमी को कुछ मित्रों ने एक दिन भोजन पर निमंत्रित किया था। जब वह भोजन कर रहा था, वह पूछने लगा, यह क्या है? यह क्या है? यह क्या है? बहुत स्वादिष्ट मिठाइयां बनाई थीं। वह पूछने लगा, यह मिठाई कैसे बनी है? कहां से बनी है? मुझे कुछ समझाओ! यह मुझे बहुत ही अच्छी लगी है। मित्रों ने कहा, यह मिठाई दूध से बनी है। वह अंधा आदमी पूछने लगा, यह दूध क्या है? पहले मुझे दूध के संबंध में समझाओ! मित्रों ने कहा, दूध भी नहीं जानते हो? उस आदमी ने पूछा, कैसा होता है दूध? क्या है दूध का रंग? मित्रों ने कहा, दूध का रंग बगुले की तरह है। बगुला देखा है? उड़ता है पक्षी। उस बगुले की तरह शुभ्र होता है दूध।
उस अंधे आदमी ने कहा, क्यों पहेलियों में पहेलियां पैदा कर रहे हो? अब मुझे यह भी पता नहीं कि बगुला कैसा होता है। अब तुम थोड़ा मुझे यह समझाओ कि बगुला कैसा होता है?
लेकिन मित्र बिल्कुल भी न सोचे कि जिसके पास आंख नहीं है उसे न दूध समझाया जा सकता, न बगुला समझाया जा सकता। उसे रंग के संबंध में कुछ भी नहीं समझाया जा सकता।
फिर एक मित्र को सूझ आई। उस अंधे ने कहा, कुछ इस तरह समझाओ कि मैं समझ सकूं। अभी मिठाई क्या है, मैं नहीं जान पाया; और तुमने कह दिया दूध। अब दूध क्या है, मैं नहीं जान पाया; और तुमने कह दिया बगुला। अब यह बगुला क्या है? अब तुम कहते हो शुभ्र होता है, सफेद। अब यह शुभ्रता क्या है? यह सफेदी क्या है?
एक मित्र पास आया, वह अपना हाथ उस अंधे के पास ले गया और कहा, मेरे हाथ
पर हाथ फेरो! जैसा सुडौल मेरा हाथ है, मुड़ा हुआ, ऐसी बगुले की गर्दन होती है।
उस अंधे आदमी ने हाथ फेरा, वह अंधा आदमी खड़े होकर नाचने लगा और कहा, मैं समझ गया, मैं बिल्कुल समझ गया कि दूध मुड़े हुए हाथ की तरह होता है। उसके आंख वाले मित्रों ने सिर फोड़ लिया और कहा, बड़ी भूल हो गई, इससे तो तुम यही जानो कि तुम नहीं जानते हो, वही ठीक था। कम से कम सच तो था कि तुम नहीं जानते हो। यह जानना तो और खतरनाक हो गया। यह जानना तो न जानने से बदतर हो गया।
दूसरों का ज्ञान खुद के अज्ञान से बदतर होता है, क्योंकि दूसरों का ज्ञान कभी भी खुद का ज्ञान बन ही नहीं सकता। अंधे आदमी की आंख नहीं है, तो दुनिया भर के लोग प्रकाश को देखते हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हम सारे दुनिया के लोग भी एक अंधे को नहीं समझा सकते कि प्रकाश कैसा है। प्रकाश सिर्फ जाना जा सकता है, समझा नहीं जा सकता। और विश्वास समझने पर खड़े होते हैं, जानने पर खड़े नहीं होते। इसलिए सब विश्वास झूठे हैं और सब विश्वास खतरनाक हैं।
हम मानते हैं कि ईश्वर है। वह झूठा है। वह ऐसा ही झूठा है जैसा उस अंधे आदमी का यह कहना कि मुड़े हुए हाथ की तरह होगा दूध। हमने सुनी हैं बातें ईश्वर की--कृष्ण कहते हैं, राम कहते हैं, क्राइस्ट कहते हैं, मोहम्मद कहते हैं, वे बातें हमने सुनी हैं। उनकी बातों को सुन कर हमने ईश्वर की कोई धारणा बना ली है। यह धारणा उतनी ही झूठी है जैसे उस अंधे आदमी की धारणा। हमारी धारणा का ईश्वर कहीं भी नहीं है, कभी नहीं था, कभी नहीं होगा। अंधे की धारणा का प्रकाश कहीं नहीं है, कभी नहीं होगा, कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि अंधे की धारणा प्रकाश की हो ही नहीं सकती। अंधा सिर्फ विश्वास कर सकता है, जानता नहीं।
एक बार और ऐसा हुआ है, एक गांव में बुद्ध ठहरे हैं और उस गांव के कुछ लोग एक अंधे आदमी को लेकर बुद्ध के पास आए और कहने लगे कि हम समझा-समझा कर

हार गए! इस मित्र को समझाते हैं कि प्रकाश है, यह मानता नहीं। और यह ऐसी दलीलें करता है। और अंधे आदमी बहुत दलीलें करते हैं, क्योंकि अंधे आदमी के पास जानना तो होता नहीं, सिर्फ दलीलें हो सकती हैं। यह बहुत दलीलें करता है। यह कहता है, प्रकाश है तो मैं छूकर देखना चाहता हूं, स्पर्श करा दो मुझे! अब हम कहां से प्रकाश का स्पर्श करा दें? और हम स्पर्श नहीं करवा पाते, फिर भी प्रकाश है। लेकिन इसको कैसे समझाएं? यह कहता है कि मैं चख कर भी देख सकता हूं, मैं सुगंध भी ले सकता हूं! प्रकाश को ठोको, बजाओ, मैं उसकी ध्वनि सुन लूं। लेकिन हमारे पास कोई उपाय नहीं है, क्योंकि प्रकाश को सिर्फ आंख से जाना जा सकता है, न कान से, न हाथ से, न नाक से, न स्वाद से। हम क्या करें? हम हार गए हैं इस अंधे आदमी से। हमें पता है कि प्रकाश है, हम देखते हैं कि प्रकाश है, लेकिन हम सिद्ध नहीं कर पाते।
आंख वाला आदमी अंधे आदमी के सामने क्या सिद्ध कर सकता है? कुछ भी सिद्ध नहीं कर सकता। हां, अंधा मानने को राजी हो जाए तो बात दूसरी है। और अंधा मानने को राजी हो जाए तो वह गलती करता है। क्योंकि जिस चीज को मानने को वह राजी हो रहा है उसको उसने जाना नहीं है और मानने से कभी जान भी नहीं सकता।
बुद्ध ने कहा, मेरे पास क्यों लाए हो इसे? अगर मैं भी अंधा होता तो मैं
भी यही कहता कि मैं छूकर देखना चाहता हूं। तुम भी अंधे होते, तुम भी यही कहते। मेरे पास लाने की जरूरत नहीं। इसे किसी विचारक के पास मत ले जाओ, इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ। इसे उपदेश की जरूरत नहीं है, इसे उपचार की जरूरत है। इसकी आंख ठीक होनी चाहिए।
एक ही उपाय है प्रकाश को जानने का, वह है आंख। आंख की जगह विश्वास काम नहीं कर सकता। और अगर कोई मान भी ले अंधा तो क्या फर्क पड़ता है? मानने से दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा? मानने से आंख खुल जाएगी? मानने से प्रकाश का अनुभव हो जाएगा? मानने से कुछ भी नहीं होगा। मानने से सिर्फ एक बात होगी कि अंधा आदमी अंधा रहते हुए समझने लगेगा कि मैं प्रकाश को जानता हूं, जो कि बहुत खतरनाक है।
वे मित्र उसे एक वैद्य के पास ले गए। संयोग की बात थी, उसकी आंख पर जाली थी, वह छह महीने में दवा से कट गई। वह आदमी नाचता हुआ गांव भर में घूमा और एक-एक घर में जाकर द्वार खटखटाया और कहा कि प्रकाश है! वह बुद्ध के पास भी आया, उनके पैर पकड़ लिए और रोने लगा और कहने लगा, प्रकाश है! लेकिन बुद्ध ने कहा, मुझे स्पर्श करा कर दिखाओ। वह आदमी कहने लगा, प्रकाश का कहीं स्पर्श हो सकता है? बुद्ध ने कहा, मैं उसका स्वाद लेकर देख लूं। वह आदमी कहने लगा, मत करिए मजाक मेरे साथ। वे अंधे आदमी की दलीलें थीं। अब मेरी आंख खुल गई, अब मैं जानता हूं वे दलीलें गलत थीं। लेकिन वह मेरे अंधेपन का कसूर था, मेरा कसूर न था। और अगर मैं मान लेता, तो वह मानना भी झूठ होता; क्योंकि जो मैंने आज जाना है, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था, इनकंसीवेबल है। अंधे आदमी के लिए प्रकाश की कल्पना भी असंभव है। आप तो कहते हैं प्रकाश की, अगर आप जानते हों तो आपको पता होगा कि अंधा आदमी अंधेरे की कल्पना भी नहीं कर सकता, प्रकाश की कल्पना तो बहुत दूर है। अंधे आदमी को अंधेरे का भी पता नहीं होता अंधे आदमी को। क्योंकि अंधेरे के पते के लिए भी आंख चाहिए, अंधेरा भी आंख को दिखाई पड़ता है। अगर आंख न हो तो अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता।
आप ने सुना होगा, सोचा होगा कि अंधे को प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता, तो आप गलती में हैं। अंधे को अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता! क्योंकि अंधेरा भी आंख का ही अनुभव है, अंधेरा भी प्रकाश के अभाव का अनुभव है, वह भी आंख को ही होता है। अंधा आदमी अंधेरे की कल्पना भी नहीं कर सकता, तो हम प्रकाश की कल्पना को उसे कैसे पकड़ा सकते हैं?
लेकिन हम सारे लोग जीवन के संबंध में विश्वासों को पकड़े हुए हैं। ये विश्वास खतरनाक हैं। विश्वास को जाने दें, विचार को आने दें। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि विचार करने से सत्य का पता चल जाएगा। नहीं, विचार का प्रयोग निगेटिव है, नकारात्मक है। विचार करने से, क्या असत्य है, यह पता चल जाएगा। विचार करने से, क्या सत्य नहीं है, यह पता चल जाएगा। विचार करने से यह पता चल जाएगा कि यह-यह सत्य नहीं है, यह-यह सत्य नहीं है। जैसा उपनिषद

कहते हैंः नेति-नेति, नॉट दिस, नॉट दैट। विचार करने से यह पता चल जाएगा--यह भी सत्य नहीं है, यह भी सत्य नहीं है। लेकिन विचार करने से, सत्य क्या है, यह कभी पता नहीं चलेगा।
एक घड़ी आएगी कि क्या-क्या असत्य है, वह पता चल जाएगा। और विचार थक जाएगा, हार जाएगा खोज-खोज कर और सत्य का पता नहीं चलेगा। तब अंतिम स्थिति में विचार भी गिर जाता है। और तब जो जाग्रत होता है उसका नाम विवेक है। उस विवेक को सत्य का अनुभव होता है।
विचार है प्रक्रिया, विचार है मार्ग, जो विवेक तक पहुंचा देता है; और विवेक है वह द्वार जहां से सत्य का अनुभव होता है।
तो जो मैंने कल आपसे कहा, विचार करना जरूरी है, विश्वास पर रुक जाना जरूरी नहीं है। समाज में क्रांति करनी हो या व्यक्ति में, सब में क्रांति करनी हो या स्वयं में--क्रांति का सूत्र एक ही है। कोई चाहे तो एक गिलास भर पानी को भाप बनाए या कोई चाहे तो पूरे समुद्र को भाप बनाए, लेकिन पानी को भाप बनाने का सूत्र एक है। कितने पानी को आप भाप बनाते हैं, यह सवाल नहीं है।
एक व्यक्ति की जिंदगी में क्रांति लानी हो तो, पूरे समाज की जिंदगी में क्रांति लानी हो तो, सूत्र एक हैः विश्वास पर ठहरा हुआ समाज कभी क्रांतिकारी नहीं होता, विश्वास पर ठहरा हुआ व्यक्ति कभी क्रांतिकारी नहीं होता; विचार की अग्नि से गुजरना जरूरी है। लेकिन विचार मात्र से भी कभी कोई सत्य तक नहीं पहुंच जाता है। एक घड़ी आती है कि विचार की सीढ़ी चढ़नी पड़ती है और एक घड़ी आती है कि विचार की सीढ़ी भी छोड़ देनी पड़ती है। जिस दिन विचार भी छूट जाता है, उस दिन जो शेष रह जाता है उसका नाम है विवेक, उसका नाम है प्रज्ञा, उसका नाम है ध्यान, उसका नाम है समाधि। वहां हम जानते हैं जो है। और जो है उसे जान लेना एक क्रांति से गुजर जाना है।
अंधा आदमी जिस दिन प्रकाश को जानता है, आप समझते हैं वही आदमी रह जाता
है जो प्रकाश को नहीं जानता था? नहीं; प्रकाश को जानते ही अंधा आदमी और ही हो जाता है जो वह कभी नहीं था।
ज्ञान रूपांतरण लाता है। हम जितना जानते हैं उतने हम रूपांतरित होते हैं, हम नये होते चले जाते हैं। थोड़ी देर को सोचोः आंखें बंद हों हमारी, कान बंद हों, नाक बंद हो, हाथ स्पर्श न करता हो, हमारी सारी इंद्रियां बंद हों, हम क्या होंगे? हमारा क्या अनुभव होगा? हमारी क्या स्थिति होगी? हम में और पत्थर में क्या फर्क होगा?
यह जो पशुओं की दुनिया में हमें विकास दिखाई पड़ता है, वह इंद्रियों का विकास है। जिसकी जानने की क्षमता जितनी बढ़ गई है, वह पशुओं में उतना ऊपर आ गया है। लेकिन इंद्रियों के अतिरिक्त भी अतींद्रिय जानने के द्वार हैं, जो विचार से मुक्त होकर, विश्वास से मुक्त होकर विवेक के खुलने पर उपलब्ध होते हैं। उस विवेक के च्रु में जो जाना जाता है उसका नाम ही परमात्मा है। उस विवेक के मार्ग से जो पहचाना जाता है उसी का नाम सत्य है। और सत्य, सत्य क्रांति कर देता है, रूपांतरित कर देता है पूरे जीवन को, फिर चाहे वह जीवन समाज का हो।
इसलिए मैंने कल आपसे कहा कि विश्वास को जाने दें, विचार को आने दें।
और विचार कब आता है? विचार तब आता है जब हम संदेह करने का साहस जुटाते हैं। संदेह करने का साहस विचार का प्राण है। वही आदमी विचार कर सकता है जो संदेह कर सकता है।
लेकिन हमें तो हजारों साल से सिखाया गया हैः संदेह मत करना; संदेह करना ही नहीं, संदेह करना गलत है। आंख बंद करके मान लेने की दीक्षा दी गई है हमें। और इसीलिए विचार पैदा नहीं हो पाता। संदेह बहुत अदभुत है, संदेह किसी भी विचारशील आदमी का लक्षण है। और जो आदमी संदेह नहीं कर सकता वह आदमी धार्मिक भी नहीं है।
अब तक यही कहा गया है कि विश्वास करने वाला धार्मिक है। और मैं आपसे कहना चाहता हूं, विश्वास करने वाला धार्मिक नहीं है, संदेह करने वाला ही धार्मिक है।
लेकिन क्यों? क्योंकि जो संदेह करता है वह विचार करता है। और यह बहुत हैरानी की बात है कि संदेह करने वाला एक दिन सत्य तक पहुंच जाएगा, विश्वास

करने वाला कभी सत्य तक नहीं पहुंचता। क्योंकि विश्वास का मतलब है कि हमने यात्रा बंद कर दी। विश्वास का मतलब क्या होता है? विश्वास का मतलब होता है कि हमने मान लिया, यात्रा समाप्त हो गई। जो नहीं मानता उसकी यात्रा जारी रहती है। वह कहता है, यह नहीं, यह नहीं। अभी और आगे मैं खोजूंगा, खोजूंगा, और आगे जाऊंगा।
एक गांव में एक फकीर ठहरा हुआ था। उस गांव के लोगों ने आकर उस फकीर को कहा कि चलें और हमें ईश्वर के संबंध में कुछ समझाएं।
उस फकीर ने कहा, ईश्वर के संबंध में कभी किसी ने कुछ भी नहीं समझाया है। मैं क्या समझाऊंगा? मुझे छोड़ दो, क्षमा कर दो।
फिर भी वे गांव के लोग नहीं माने तो वह फकीर उनकी गांव की मस्जिद में गया। मस्जिद में लोग इकट्ठे थे, पूरा गांव इकट्ठा था। उस फकीर ने खड़े होकर मंच पर कहा कि मैं पहले कुछ कहने के यह पूछ लेना चाहता हूं, ईश्वर है? तुम मानते हो? तुम जानते हो कि ईश्वर है? तो हाथ उठा दो।
उस मस्जिद के सारे लोगों ने हाथ ऊपर उठा दिए। उस फकीर ने कहा, बात खतम
हो गई। जब तुम जानते ही हो, तो अब मुझे कहने की कोई जरूरत नहीं। और ईश्वर को जानने के आगे तो कुछ भी जानने को शेष नहीं रह जाता। इसलिए अब मैं क्या कहूं!
कोई भी नहीं जानता था, हाथ झूठे थे। हमारे सब हाथ भी झूठे उठते हैं। लेकिन हमें पता ही नहीं है कि धर्म के नाम पर भी कितना झूठ चलता है! और जो आदमी धर्म के नाम पर भी झूठ पर हाथ उठाता है, वह आदमी जिंदगी में कैसे सच हो सकता है? जब हम से कोई पूछता है, ईश्वर है? और हम कहते हैं, हां। तो हमने कभी सोचा कि हम बिना जाने हां भर रहे हैं! और यह हां झूठ है। और जब यह बुनियादी हां झूठ है, तो हमारी और धार्मिक जिंदगी सारी की सारी झूठ हो जाएगी। इसलिए मंदिर जाने वालों की, तीर्थयात्रा करने वालों की सारी जिंदगी सरासर झूठ होती है। क्योंकि बुनियादी आधार, फाउंडेशन झूठ होता है। उन्होंने उस चीज पर हां भर दी है जिसे नहीं जानते हैं। उन्होंने बिना खोजे, बिना सोचे, बिना जाने, बिना पहचाने हां भर दी है।
उस फकीर ने कहा, बात खतम हो गई।
अब कुछ कहने को भी न था, गांव वालों ने हाथ उठा दिया था। उन्होंने कहा कोई फिकर नहीं। अगले रविवार को फिर उन्होंने जाकर प्रार्थना की कि चलें मस्जिद में।
उस फकीर ने कहा, लेकिन मैं गया था पिछली बार और सब लोग वहां ईश्वर को जानते हैं, मेरी वहां कोई जरूरत नहीं है। जहां सभी ज्ञानी हों वहां ज्ञान की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
इस देश में ऐसा ही हुआ है, यहां सभी ज्ञानी हैं, इसलिए ज्ञान की कोई जरूरत नहीं रह गई। इसलिए ज्ञान ठहर गया, ज्ञान आगे नहीं बढ़ता। सब जब ज्ञानी हों तो ज्ञान आगे कैसे बढ़ेगा? जिनको इस बात का बोध है कि हम अज्ञानी हैं, वे ज्ञान को आगे बढ़ाते हैं, क्योंकि वे खोज करते हैं। जिनको यह पता चल गया कि हम जानते हैं, उनकी खोज बंद हो गई।
हिंदुस्तान कोई तीन हजार साल से रुका है, उसका ज्ञान नहीं बढ़ता आगे, क्योंकि सब ज्ञानी हो चुके हैं। अज्ञानी ज्ञान को आगे बढ़ाते हैं। जिनको बोध है कि अज्ञान है, हम नहीं जानते, वे जानने की कोशिश करते हैं। जिनको पता है कि सब जान लिया गया, वे ठहर जाते हैं; जीते हैं, मरते हैं, लेकिन ज्ञान की कोई गति नहीं होती।
उस फकीर ने कहा, क्या करूंगा मैं जाकर?
लेकिन वे लोग बोले, हम दूसरे लोग हैं। वे तय करके आए थे कि अब बदलने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है। उन्होंने कहा, हम गांव के दूसरे लोग हैं, हम वे लोग ही नहीं हैं जो पिछली बार आए थे।
उस फकीर ने कहा, चेहरे तो पहचाने मालूम पड़ते हैं, लेकिन ठीक है। धार्मिक आदमी का कोई भरोसा नहीं, कभी भी बदल सकता है। अभी गीता पढ़ रहा है, अभी छुरा निकाल सकता है। अभी कुरान पढ़ रहा है मस्जिद में, और देखो तो बहुत भोला मालूम पड़ता है, थोड़ी देर में मकान में आग लगा सकता है निकल कर।
धार्मिक आदमी का कोई भरोसा नहीं है।

तथाकथित धार्मिक आदमी से ज्यादा बेईमान और डिसऑनेस्ट व्यक्तित्व खोजना मुश्किल है। लेकिन हम इसी को धार्मिक आदमी कहते हैं। अधार्मिक आदमी में भी एक ऑनेस्टी, एक सिंसियरिटी होती है। धार्मिक आदमी में वह भी नहीं होती। नास्तिक में भी एक तरह का बल और सच्चाई होती है, आस्तिक में वह भी नहीं होती। इसीलिए तो नास्तिकों के नाम पर दुनिया में कोई पाप नहीं है, कोई न मकान जलाया है उन्होंने, न किसी की हत्या की है। लेकिन आस्तिकों के नाम पर इतनी हत्या और इतने पाप का सिलसिला है कि अगर कोई सोचे तो हैरान होगा! कि सोचे तो भगवान से कहे कि यह दुनिया कब नास्तिक हो जाएगी, ऐसा कुछ उपाय करो। नहीं तो ये पाप और अपराध बंद नहीं होंगे। यह हैरानी की बात है! उस फकीर ने कहा, ठीक है। तुम पक्के धार्मिक मालूम पड़ते हो, बदल गए! मैं आऊंगा।
लोग चले गए वापस, वह मस्जिद पहुंचा, वह मंच पर खड़ा हुआ। लोगों ने तय कर रखा था कि आज जब वह पूछे, कहना हम जानते नहीं। फकीर ने पूछा, ईश्वर है? मानते हो?
उन्होंने कहा, न ईश्वर है, न हम मानते, न हम जानते। अब बोलिए!
फकीर ने कहा, बात खतम हो गई। जो है ही नहीं उसके संबंध में बोलना क्या? बात ही टूट गई। और फकीर ने कहा कि तुम सोचते हो कि तुमने मामला बदल लिया। तुमने बदला नहीं। उस बार भी तुमने ज्ञान का दावा किया था कि हम जानते हैं; अब भी तुम ज्ञान का दावा कर रहे हो कि नहीं है। नहीं है ईश्वर, यह भी ज्ञान का ही दावा है। यह भी तुम कहते हो कि हम जानते हैं कि ईश्वर नहीं है। खैर, बात खतम हो गई है, तुम ज्ञानी हो और मैं कुछ भी नहीं कर सकता।
ज्ञानियों के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। ज्ञानियों से ज्यादा मरे हुए लोग नहीं होते। पंडित से ज्यादा व्यर्थ आदमी नहीं होता। क्योंकि जिसको भी यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं, उसमें जीवन नष्ट हो जाता है। क्योंकि जीवन परिवर्तन है, जीवन और जानने की खोज है, और जानने की। और अनंत खोज है यह, कभी ऐसा क्षण नहीं आता कि कोई कहे कि बस, जानना खतम हो गया।
फकीर तो चला गया, गांव के लोग बहुत परेशान हुए। यह आदमी कैसा है! अब हम क्या करें? लेकिन इस आदमी ने रस पैदा कर दिया था और लगता था कि यह कुछ कहेगा तो अर्थपूर्ण होगा। क्योंकि उसके दोनों गेस्चर, दोनों बार उसका यह कहना बहुत अर्थपूर्ण मालूम हुआ था। बात तो सच कह रहा था वह। लेकिन अब हम क्या करें? उन्होंने आखिर... एक ही उपाय और बचा था, तीसरा विकल्प। एक बार कहा था हां, एक बार कहा था नहीं, अब कुछ दोनों के बीच समझौता करने का रास्ता था।
वे फिर गए तीसरी बार। फकीर ने कहा, क्यों भाई?
उन्होंने कहा, हम फिर आए हैं प्रार्थना करने, लेकिन हम तीसरे ही लोग हैं।
लेकिन उसने कहा, मित्रो, चेहरे बिल्कुल पहचाने हुए मालूम पड़ते हैं। उन्होंने कहा कि वह आपकी गलती है, आपका भ्रम है। हम तीसरे ही लोग हैं, गांव बड़ा है। हम पूछने आए हैं, आप चलें।
फकीर गया, वह मंच पर खड़ा हुआ। उसने फिर वही सवाल किया, ईश्वर है कि नहीं है?
मस्जिद के लोगों ने तय किया था कि आधे लोग कहेंगे--है; आधे लोग कहेंगे-- नहीं है। आधे लोगों ने हाथ उठा दिया कि ईश्वर है, हम मानते हैं, हम आस्तिक हैं; आधे लोगों ने कहा, हम निपट नास्तिक हैं, हम नहीं मानते। अब आप बोलिए! फकीर ने कहा, कैसे पागल हो! जो जानते हैं वे उनको बता दें जो नहीं जानते हैं। मेरी क्या जरूरत है? मेरा क्या प्रयोजन है यहां बुलाने का? मुझे तुम किसलिए बुला कर लाए हो? इस मस्जिद में दोनों लोग मौजूद हैं--जो जानते हैं वे, जो नहीं जानते हैं वे। तुम आपस में निपटारा कर लो। वह फकीर उतर कर चला गया।
गांव के लोग चौथी बार नहीं गए, क्योंकि चौथा कोई उन्हें उत्तर नहीं सूझा। फिर वह फकीर कई महीने रुका रहा उस गांव में और राह देखता रहा कि शायद वे आएं। कई बार उसने लोगों से कहा, अब नहीं आते? कई बार लोगों को खबर भेजी,

अब नहीं आते? लेकिन लोगों ने कहा, हम क्या आएं, हम कैसे आएं? चौथा उत्तर नहीं मिलता है। तुम फिर वही पूछोगे, हम थक गए, चौथा उत्तर नहीं है।
फिर गांव से जिस दिन वह फकीर विदा होता था, गांव के लोग उसे विदा देने
आए और उससे पूछने लगे, चौथा उत्तर भी हो सकता था क्या? क्योंकि तुमने बार-बार पूछा कि हम आएं, हम फिर से आएं।
फकीर ने कहा, हो सकता था। और अगर तुमने चौथा उत्तर दिया होता तो मैं जरूर बोलता।
फिर गांव के लोग कहने लगे, तो बताओ न वह चौथा उत्तर क्या है?
लेकिन उसने कहा, मेरा बताया हुआ उत्तर तुम्हारा उत्तर नहीं हो सकता; लेकिन मैं जाते वक्त तुम्हें बताए जाता हूं। लेकिन ध्यान रखना कि मेरा उत्तर तुम्हारा उत्तर नहीं हो सकता। अपना उत्तर ही अपना होता है।
फिर भी, उन्होंने कहा, बता दें।
तो उस फकीर ने कहा, मैं पूछता और तुम चुप रह जाते और कोई उत्तर न देते,
तो मुझे बोलना जरूरी हो जाता। क्योंकि तब तुम बताते कि हम कुछ भी नहीं जानते--न हां, न ना। हमें बिल्कुल अज्ञात है, हम उस संबंध में कुछ भी नहीं कह सकते हैं, हम धारणा भी नहीं कर सकते हैं कि ईश्वर यानी क्या! अगर तुम चुप रह गए होते, मौन रह गए होते, तो मुझे बोलना पड़ता। लेकिन तुम बोलते चले गए। तुम्हारे बोलने ने बताया कि तुम जानने के भ्रम में हो। और जो जानने के भ्रम में है उसे ज्ञान कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता है।
अज्ञानी जान सकता है, पंडित कभी नहीं जान सकता है। क्योंकि अज्ञानी
को एक ह्युमिलिटी, अज्ञानी को एक विनम्रता है कि मैं नहीं जानता हूं। अज्ञानी के द्वार खुले हैं। लेकिन ज्ञानी के द्वार बंद हैं। जो जान लेता है वह द्वार पर ताला लगा कर अंदर बैठ जाता है।
इसलिए मैं कहता हूं, विश्वास झूठा ज्ञान पैदा करता है। ज्ञान नहीं; सूडो नॉलेज है, मिथ्या ज्ञान है। और मिथ्या ज्ञान खतरनाक है। विचार करो और मिथ्या ज्ञान को नष्ट कर दो। विचार से ज्ञान नहीं मिल जाएगा, मिथ्या ज्ञान नष्ट होगा। जैसे पैर में एक कांटा लगा हो, और हम दूसरे कांटे को उठा कर उस कांटे को निकाल कर फेंक देते हैं। लेकिन दूसरे कांटे को घाव में नहीं रख लेते, दूसरा कांटा भी फेंक देते हैं।
विश्वास के कांटे को निकाल डालो विचार की प्रक्रिया से। फिर विचार की प्रक्रिया भी व्यर्थ हो जाती है। दोनों कांटे फेंक दिए जाते हैं। फिर क्या रह जाता है? फिर जो रह जाता है उसी का नाम है चेतना, उसी का नाम है कांशसनेस, उसी का नाम है विवेक, उसी का नाम है प्रज्ञा। उस प्रज्ञा को सत्य का अनुभव होता है। सत्य का अनुभव क्रांतिकारी है। चाहे समाज का सवाल हो, चाहे व्यक्ति का, सत्य के अनुभव के बिना कोई क्रांति नहीं है। और इसलिए मैं कहता हूं, अब तक दुनिया में कोई क्रांति नहीं हुई है, सिर्फ क्रांति के नाम पर सूडो रेवोल्यूशंस हुई हैं, मिथ्या क्रांतियां हुई हैं। बड़ी से बड़ी क्रांति भी दुनिया की क्रांति नहीं थी। रूस में जो क्रांति हुई वह, चीन में जो क्रांति हो रही है वह, या फ्रांस में जो क्रांति हुई, ये कोई भी क्रांतियां नहीं हैं। सब सूडो रेवोल्यूशंस हैं, सब मिथ्या क्रांतियां हैं।
क्यों इनको मिथ्या क्रांति कहता हूं? क्योंकि ये क्रांतियां जिंदगी
को बदलती नहीं, सिर्फ जिंदगी के बोझ को एक कंधे से दूसरे कंधे पर कर देती हैं। बीमारी के नये नाम शुरू हो जाते हैं। रूस में गरीब मिट गया, अमीर मिट गया। गरीब और अमीर की जगह दो नये वर्ग आ गएः जनता का और सत्ताधिकारियों का। और वे वर्ग वैसे के वैसे हैं। कल जो आदमी मालिक की हैसियत से फैक्ट्री चलाता था, अब वह मैनेजर की हैसियत से फैक्ट्री चलाता है, ताकत उसकी उतनी की उतनी है। कोई क्रांति नहीं हो गई, सिर्फ वर्गों ने रूपांतरण कर लिया। सिर्फ वर्ग बदल गए, नाम बदल गए, दूसरे वर्ग उनकी जगह स्थापित हो गए। क्योंकि जो क्रांति हुई वह क्रांति किसी सत्य के साक्षात से नहीं निकली; वह क्रांति केवल विश्वासों के आधार पर निकली। पुराने विश्वास बदल गए, नये विश्वास पकड़ लिए गए। लेकिन फिर विश्वास पकड़ लिए गए, और फिर जो क्रांति हुई, वह फिर पुराने ढांचे को नई शक्लों में, नये नामों में स्थापित कर गई।

हम नाम बदल लेने को भी क्रांति समझते हैं। नाम बदल जाते हैं, और हम समझते हैं सब कुछ बदल गया। अछूत को कहने लगते हैं हरिजन और समझते हैं सब कुछ बदल गया।
अछूत शब्द बेहतर था, क्योंकि उस शब्द में एक चोट थी और वह चोट कभी क्रांति करवा सकती थी। हरिजन शब्द खतरनाक है, उसमें चोट नहीं है, वह बड़ा मधुर और मीठा है। और मीठे शब्दों के खिलाफ क्रांति नहीं होती। अब हरिजन को गौरव मालूम होता है यह कहने में कि हम हरिजन हैं। अछूत कहने में उसे गौरव नहीं मालूम होता था, अछूत कहने में चोट लगती थी। चोट से क्रांति आ सकती थी। हरिजन कहने में वह अकड़ कर कहता है कि हम हरिजन हैं। और ऐसा लगता है कि बाकी कोई हरिजन नहीं हैं, बाकी लोग भगवान के लोग नहीं हैं, यह आदमी भगवान का आदमी है। शब्द खतरनाक सिद्ध होते हैं।
उन्नीस सौ बावन के करीब, वहां हिमालय की तराई में नीलगाय होती है, तो नीलगाय ने बहुत उपद्रव मचाया खेतों में, उसकी संख्या बहुत बढ़ गई थी। लेकिन नीलगाय में गाय जुड़ा हुआ है शब्द, तो उस गाय को गोली नहीं मारी जा सकती; क्योंकि गाय को गोली मारना, वह हिंदू की जो जड़ता है उसमें एकदम आग लग जाएगी। तो फिर क्या किया जाए? तो पार्लियामेंट में एक होशियार आदमी ने सुझाव दिया कि पहले नीलगाय का नाम नीलघोड़ा रखो, फिर गोली मारेंगे। और यह सुझाव स्वीकृत हो गया। नीलगाय नीलघोड़ा हो गई और फिर गोलियां मारी गईं और किसी ने कुछ भी नहीं कहा। उस जानवर को पता भी नहीं चला होगा कि अब हम नीलगाय नहीं रहे, नीलघोड़ा हो गए हैं।
लेकिन आदमी की बेईमानी, आदमी की डिसऑनेस्टी हद की है! फिर किसी ने भी बात ही नहीं की--कि नीलघोड़े को मारने में क्या हर्जा है? मरने दो, घोड़ों से क्या लेना-देना है! हिंदुओं की तो गाय माता है, बस उसको भर बचाना है, और किसी से कोई मतलब नहीं है। अगर गाय का भी नाम बदल दो, उसको भी गोली मारी जा सकती है। क्योंकि हमारी किताब में तो लिखा हैः गाय माता है। अगर गाय का नाम बदल दिया तो फिर कोई दिक्कत नहीं है।
यह जो आदमी का दिमाग है, यह क्रांति-व्रांति नहीं करता, यह शब्दों को बदलता है, वर्गों के नाम बदलता है, नीचे की चीज ऊपर करता है, इस कोने की चीज उस कोने में रखता है और सोचता है क्रांति है। यह क्रांति-व्रांति नहीं है। नई जमावट पैदा कर लेता है और कहता है क्रांति हो गई।
क्रांति तब तक नहीं होगी मनुष्य के जगत में जब तक विचार की ऊर्जा समग्र जीवन को घेर न ले, विचार की आग न पकड़ ले, हम जीवन के एक-एक मूल्य को संदेह न करने लगें--और संदेह की आग में सब जल जाए और विवेक जाग्रत हो। उस विवेक से आएगी क्रांति।
और लोग पूछते हैं कि वह क्रांति कैसे लाएंगे?
क्रांति लानी नहीं पड़ती; विवेक जागे तो क्रांति आती है, कांसिक्वेंस
है क्रांति विवेक का।
जैसे कि एक घर में अंधे आदमी रहते हों, तो अंधा आदमी पूछता है कि दरवाजा कहां है? लेकिन आंख वाले आदमी रहते हों, तो कोई नहीं पूछता कि दरवाजा कहां है। जब निकलना होता है, निकल जाता है। उसे खुद भी पता नहीं चलता अपने को कि मैं दरवाजे से निकल रहा हूं। उसे यह भी पता नहीं चलता कि मैं दरवाजा खोजूं। आंखें देखती हैं, आदमी दरवाजे से निकल जाता है। दरवाजे से निकलना देखने वाले आदमी के लिए इतना सहज है। लेकिन अंधा आदमी पूछता है, दरवाजा कहां है? बाएं कि दाएं? लकड़ी कहां है मेरी? मेरा हाथ पकड़ो, मैं दीवाल से न टकरा जाऊं! अंधा आदमी यह भी पूछ सकता है... हम उससे अगर कहें कि जब तेरी आंख ठीक हो जाएगी तो तुझे लकड़ी की जरूरत नहीं रहेगी... वह कहेगा, ऐसा कैसे हो सकता है? फिर मैं दरवाजा कैसे खोजूंगा? अंधा आदमी यह भी कह सकता है... हम उससे अगर कहें कि जब तेरी आंख ठीक हो जाएगी तो तू बस बिना पूछे दरवाजे से निकल जाएगा... वह कहेगा, ऐसा कैसे हो सकता है? बिना पूछे कोई कैसे निकल सकता है?
मनुष्य पूछता हैः क्रांति कैसे होगी? मैं नहीं कहता क्रांति कैसे होगी। यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि वह क्रांति करने वाला तत्व भीतर जग जाए, फिर क्रांति हो जाती है। फिर आप वही आदमी हो ही नहीं सकते जो आप थे। आपको चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं। और कोई आदमी देखते हुए सिर नहीं टकराता

है दीवाल से, कोई आदमी नहीं टकराता। जिस आदमी का विवेक जग जाएगा, उसी दिन वह हिंदू नहीं रह जाएगा, उसी दिन मुसलमान नहीं रह जाएगा। क्योंकि हिंदू और मुसलमान अंधे आदमी के लक्षण हैं। उस दिन वह सिर्फ आदमी रह जाएगा। और वह यह नहीं पूछेगा कि मैं हिंदू होना कैसे भूलूं, मैं मुसलमान होना कैसे बंद करूं। उस आदमी को दिख जाएगाः ये दीवालें थीं, दरवाजे नहीं थे; जिनसे टकराते थे, सिर फूटते थे, खून बहता था; और कुछ भी नहीं होता था। न हिंदू से कोई मतलब है धर्म का, न मुसलमान से, न जैन से। धार्मिक आदमी हिंदू, मुसलमान और जैन कैसे हो सकता है? धार्मिक आदमी सिर्फ आदमी हो सकता है। और अगर धार्मिक आदमी हो तो भारत और पाकिस्तान बच्चों के खेल मालूम पड़ने लगेंगे। जमीन कहीं बंटी हुई नहीं है, सिर्फ नक्शों में बंटी है।

जीवन रहस्य
छठवां प्रवचन

उधार ज्ञान से मुक्ति

एक बड़े राज्य का मुख्यमंत्री मर गया था। उस राज्य का नियम था कि मुख्यमंत्री का चुनाव, देश में जो सर्वाधिक बुद्धिमान आदमी हो, उसकी खोज करके किया जाता था।
सारे देश में परीक्षाएं हुईं। तीन बुद्धिमान लोग खोजे गए। अंतिम परीक्षा होगी, और उन तीन में जो सर्वाधिक बुद्धिमान सिद्ध होगा वह बड़ा वजीर बनेगा। अंतिम परीक्षा के लिए वे तीनों व्यक्ति राजधानी आए।
तीनों चिंतित रहे होंगे, जीवन-मरण का सवाल था। वे तीनों यह चाहते थे
कि शायद कहीं से पता चल जाए कि परीक्षा में क्या प्रश्न आने को है। वे नगर में आए तो और भी हैरान हुए, नगर में एक-एक राजधानी के निवासी को पता था कि परीक्षा क्या होने वाली है। जिससे भी पूछा उसने कहा, निश्चिंत रहो। राजा ने बहुत दिनों से एक भवन बना रखा है। उस भवन में तुम तीनों को कल बंद कर दिया जाएगा। उस भवन के द्वार पर उसने एक ऐसा ताला लगवाया है जिसकी कोई चाबी नहीं है, वह ताला गणित की एक पहेली है। उस पहेली के अंक ताले पर खुदे हुए हैं। जो इस पहेली को हल कर लेगा वह दरवाजा खोल कर बाहर निकल आएगा। और जो पहले बाहर निकलेगा वही बड़ा वजीर हो जाने को है।
वे तीनों ही न तो कोई चोर थे कि ताले के संबंध में समझते हों, न कोई इंजीनियर थे, न ही गणित के कोई जानकार थे। इनमें से एक तो जाकर, जहां ठहराया गया था, वहां चुपचाप चादर ओढ़ कर सो गया। दो मित्रों ने सोचा कि शायद इसने परीक्षा देने का ख्याल छोड़ दिया। दो बहुत परेशान थे, भागे हुए राजधानी में गए, ताले वालों से मिले, गणितज्ञों से मिले, इंजीनियरों से मिले, कुछ किताबें पहेलियों की लाए। रात भर किताबें पढ़ते रहे। अजीब सी बात थी; कभी तालों के संबंध में सोचा नहीं था, कैसे ताला खोलेंगे! रात भर सोए नहीं। एक ही रात की बात थी और कल जीवन भर के लिए एक बड़ी संपत्ति, एक बड़ा सम्मान, एक बड़ा पद मिल जाता। दोनों ने रात भर बहुत तैयारी की। इतनी तैयारी की, रात भर सोए नहीं, किताबें-किताबें, पहेलियां, गणित--कि सुबह उनकी ऐसी हालत हो गई जैसी परीक्षा देने वाले की अक्सर हो जाती है। उनसे अगर कोई पूछता कि दो और दो कितने होते हैं, तो वे नहीं बता सकते थे।
फिर वे राजमहल की तरफ चले। वह जो साथी सोया रहा था वह उठा, गीत गाता रहा, स्नान किया, वह भी उनके पीछे हो लिया। उन दोनों ने सोचाः यह आदमी क्या करेगा? इसने कोई तैयारी नहीं की है। लेकिन कई बार ऐसा होता है कि जो नहीं तैयारी करते हैं वे कुछ कर लेते हैं; और कई बार ऐसा होता है कि जो तैयारी करते हैं वे पिछड़ जाते हैं।
वे तीनों राजमहल पहुंचे। अफवाह सच थी, उन्हें एक कमरे में बंद कर दिया गया। और सम्राट ने कहा, यह ताला लगा है, यह ताले की कोई चाबी नहीं है। अगर कोई इसकी पहेली को हल कर ले जो अंक इस पर खुदे हैं, तो बाहर निकल आना। जो पहले निकल आएगा वही वजीर हो जाएगा। मैं बाहर प्रतीक्षा करता हूं।
वे तीनों अंदर बंद कर दिए गए। दो तो अपने कपड़ों में किताबें छिपा लाए थे। उन्होंने अपनी किताबें निकाल कर सवाल हल करना शुरू कर दिया। एक जो रात भर सोया रहा था वह फिर एक कोने में आंख बंद करके बैठ गया। वे दोनों हैरान हुएः यह आदमी किसलिए आया है? रात भर सोया रहा, अब जब कि सवाल हल करने का समय आया, तब भी आंख बंद करके बैठ गया। इस आदमी को हो क्या गया है? लेकिन उसकी फिकर करनी उचित न थी। अच्छा ही था कि वह सहभागी न हो, प्रतियोगी न हो। अच्छा ही है, दो के बीच ही निर्णय हो जाए। वे दोनों सवाल हल करने लगे।
वह आदमी आधा घंटे तक बैठा रहा। उस आदमी ने कुछ भी नहीं किया। वह बिल्कुल ही चुप बैठा रहा। उसके हाथ-पैर भी नहीं हिले, उसकी आंख की पलक भी नहीं हिली। फिर अचानक वह उठा, दरवाजे पर गया, दरवाजे को धक्का दिया।
दरवाजे में ताला लगा नहीं था, दरवाजा केवल अटका था। वह बाहर निकल गया।
सम्राट उसे लेकर भीतर आया और उसने कहा कि मित्रो, अब बंद कर दो। जिसको निकलना था वह निकल गया।

वे दोनों तो बहुत हैरान हुए! उन्होंने कहा, यह आदमी निकल गया जिसने कुछ भी नहीं किया! यह निकला कैसे?
सम्राट ने कहा कि ताला लगा नहीं था, सिर्फ दरवाजा अटका था। और हम बुद्धिमत्ता की परीक्षा कर रहे हैं। तो बुद्धिमत्ता का पहला लक्षण यह है कि सवाल को हल करने के पहले जान लेना कि सवाल है या नहीं। अगर सवाल न हुआ तो हल करने की किसी भी कोशिश से कभी हल नहीं हो सकता है। अगर सवाल हो तो हल हो भी सकता है। लेकिन तुमने बुद्धिमत्ता का पहला लक्षण ही नहीं दिखाया। तुमने फिकर ही नहीं की कि दरवाजा बंद है या खुला है। और तुम खोलने की कोशिश में लग गए। कैसे तुम खोल पाओगे? दरवाजा बंद हो तो खोला जा सकता है; दरवाजा खुला हो तो फिर खोलने का कोई भी रास्ता नहीं, कोई भी मार्ग नहीं। इस आदमी ने बुद्धिमत्ता का लक्षण दिखाया। इसने पहले जांच की कि दरवाजा बंद है या खुला। इसको हम वजीर बना लेते हैं।
उन दोनों ने उस आदमी से पूछा कि तुमने कैसे यह सोचा कि दरवाजा बंद है
या खुला?
उस आदमी ने कहा, मैंने रात को, जब मुझे पता चला कि ताला खोलना पड़ेगा, तभी मैंने कहा कि जो भी मैं जानता हूं, मेरा कोई भी ज्ञान इस पहेली को हल करने में काम नहीं आ सकता। क्योंकि जो भी मैं जानता हूं, जो भी मैंने जाना है, जो भी मुझे पता है, उससे वही सवाल हल किए जा सकते हैं जो मेरे परिचित हों। अपरिचित को परिचित ज्ञान के आधार पर कभी भी हल नहीं किया जा सकता है। अज्ञात को ज्ञात ज्ञान के आधार पर कभी हल नहीं किया जा सकता है। अनजाने को जाने हुए ज्ञान के आधार पर कभी हल नहीं किया जा सकता है। जो हम जानते हैं, हम उसी को हल कर सकते हैं उसके द्वारा जो हमने पीछे सीखा है। लेकिन अपरिचित, अनजान, अज्ञात, अननोन कोई सवाल हो, तो नोन से, जो ज्ञात ज्ञान है उससे हल नहीं हो सकता। तो फिर मैंने सोचा कि एक ही रास्ता है कि मैं अपने मन को शांत कर लूं और जो मैं जानता हूं उसे भी भूल जाऊं। तो शायद जो मैं नहीं जानता हूं उसकी झलक मेरे प्राणों में, मेरे मन में आ जाए। और रात भर से मैं भूलने की कोशिश कर रहा हूं उसको जो मैं जानता हूं। क्योंकि जो मैं जानता हूं कहीं उसके कारण, जो अज्ञात है, उसमें और मेरे मन के बीच कोई दीवाल न बना ले मेरा ज्ञान। तो मैं ज्ञान को विदा करने की कोशिश कर रहा हूं। तुमने रात भर ज्ञान इकट्ठा किया, मैंने रात भर ज्ञान छोड़ा, मैंने रात भर यही कोशिश की कि सुबह तक मैं बिल्कुल खाली हो जाऊं एक कोरी स्लेट की तरह, जो कुछ भी नहीं जानता है। रात भर मैं इसीलिए चुप पड़ा रहा। यहां आकर भी, स्नान करने के बाद भी मैं वही कोशिश कर रहा हूं कि सब मुझे भूल जाए जो मैं जानता हूं, ताकि मन निर्मल और शांत हो जाए। और शांत मन ही नये सवाल का हल खोज सकता है, अशांत मन नहीं। और जिस मन में बहुत ज्ञान भरा है, वह बहुत अशांत होता है। तो मैंने घड़ी भर बैठ कर सब भुला दिया। और जैसे ही मैं सब भूल गया, अचानक मुझे भीतर से लगा कि दरवाजा बंद नहीं, दरवाजा खुला है। मैं उठा और बाहर निकल गया। मुझे पता नहीं यह कैसे हुआ।
यह छोटी सी कहानी मैंने क्यों कही? यह कहानी मैं इसलिए कहना चाहता हूं
कि जो लोग जीवन के सत्य को जानना चाहते हैं, वे भी शास्त्रों को खोल कर बैठ जाते हैं और जीवन के सत्य को कभी नहीं जान पाते। जो लोग जीवन को जानना चाहते हैं, जो जीवन का द्वार खोलना चाहते हैं, वे भी किताबों और शब्दों को लेकर बैठ जाते हैं और शब्दों से भर जाते हैं, ज्ञानी हो जाते हैं, लेकिन अज्ञान मिटता नहीं। पंडित हो जाते हैं, लेकिन प्रज्ञा का द्वार नहीं खुलता। सब जान लेते हैं और फिर भी कुछ नहीं जान पाते हैं। बस किताबें- किताबें, शब्द-शब्द, शास्त्र-सिद्धांत, इन्हीं के घेरे में पड़े रह जाते हैं। और जीवन का वह द्वार, जो बंद ही नहीं है, बंद रह जाता है। जो सदा खुला है, वह भी नहीं खुल पाता है। उसे खोलने के लिए भी इस तीसरे आदमी जैसा बनना जरूरी है--जो जानते हुए को भूल जाए, विस्मरण कर दे जिसे सीखा है, चुप हो जाए, मौन हो जाए, ताकि मौन के क्षण में जीवन के द्वार का खुलापन दिखाई पड़ जाए। एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ था जर्मनी में--वेजनर। उसके दरवाजे पर सारी दुनिया के संगीतज्ञ संगीत सीखने आते थे। उसने अपने दरवाजे पर एक तख्ती लगा छोड़ी थी, उसमें लिखा था उसने कि जो लोग बिल्कुल संगीत नहीं जानते हैं

उनकी फीस इतनी है और जो लोग संगीत जानते हैं उनकी फीस दुगनी है और जो बहुत बड़े पंडित हैं संगीत के उनको तो मैं सिखाता ही नहीं हूं।
लोग उससे पूछते कि पागल हो गए हो आप? जो पंडित है संगीत का उसे नहीं सिखाते?
तो वेजनर कहता कि पंडित को पहले पांडित्य छोड़ना पड़ता है, तब वह सीख सकता है। क्योंकि जिसे ख्याल है कि मैं जानता हूं, वह सीख नहीं सकता। जो लोग कुछ सीखे हुए हैं उन्हें पहले भुलाना पड़ता है जो वे सीखे हुए हैं। तो महीनों उनके साथ मेहनत करनी पड़ती है कि तुम पुराना भूल जाओ, ताकि नया सीख सको। नया सीखने के लिए पुराने का भूल जाना जरूरी है। हां, जो नये हैं, जो कुछ भी नहीं सीखे हैं, उन्हें मैं थोड़ी सी फीस में सिखा देता हूं।
वह वेजनर ठीक कहता था।
रमण महर्षि थे दक्षिण में। एक जर्मन विचारक ओकबर्न उनसे मिलने आया और पूछने लगा, मुझे ईश्वर को जानना है, मैं क्या सीखूं? मैं क्या सीखूं, मुझे ईश्वर को जानना है!
तो रमण ने उनसे कहा, सीखो मत, जो सीखे हुए हो उसको भूल जाओ, तो ईश्वर को तुम जान लोगे। अनलर्न! लर्निंग की बात ही मत करो। जो तुम जानते हो उसको भी भूल जाओ।
बड़ी उलटी बात लगती है यह। वह आदमी बहुत चौंका। उसने कहा, मैं जो जानता हूं वह भी भूल जाऊं? उससे मैं कैसे ईश्वर को जान लूंगा?
रमण ने कहा कि अगर तुम भूल जाओ जो तुम सीखे हो, तो तुम्हारा मन हलका हो जाए, निर्भार हो जाए। तो तुम्हारा मन, जिसके ऊपर ज्ञान के पत्थर रखे हैं, वे पत्थर हट जाएं, तो तुम्हारा मन इतना हलका हो जाए कि तुम ऊपर उठ सको। हलका मन ऊपर उठता है, खाली मन ऊपर उठता है।
जैसे कोई दर्पण के ऊपर कुछ धूल जम गई हो तो फिर दर्पण में प्रतिबिंब नहीं बनता, ऐसे ही मनुष्य के मन पर अगर ज्ञान की धूल जम जाए--और ध्यान रहे, मनुष्य के मन पर एक ही धूल जमती है और वह ज्ञान की धूल है--अगर वह जम जाए तो मन के दर्पण में परमात्मा की प्रतिछवि कभी नहीं बनती।
यह बात आपसे कहना चाहता हूं, अगर आप ज्ञानी बने रहे... और हम सब ज्ञानी हैं, क्योंकि हम सब कुछ न कुछ जानते हैं बिना कुछ जाने। नहीं कुछ जानते हैं सच में। क्या जानते हैं हम? खुद को भी नहीं जानते, और कुछ जानना तो बहुत दूर की बात है। जो स्वयं को भी नहीं जानता वह और क्या जानता होगा? लेकिन नहीं, हमें भ्रम है कि हम बहुत कुछ जानते हैं। वह जो बहुत कुछ जानने का भ्रम है, वह धूल की तरह मन के दर्पण को ढंक लेता है। उस दर्पण में परमात्मा की, सत्य की प्रतिछवि कभी नहीं बनती। और जिनको हम कहते हैं कि ईश्वर के खोजने वाले लोग, वे और भी किताबों से भर जाते हैं।
एक संन्यासी ईश्वर की खोज में निकला हुआ था और एक आश्रम में जाकर ठहरा। पंद्रह दिन तक उस आश्रम में रहा, फिर ऊब गया। उस आश्रम का जो बूढ़ा गुरु था वह कुछ थोड़ी सी बातें जानता था, रोज उन्हीं को दोहरा देता था। फिर उस युवा संन्यासी ने सोचा, यह गुरु मेरे योग्य नहीं, मैं कहीं और जाऊं। यहां तो थोड़ी सी बातें हैं, उन्हीं का दोहराना है। कल सुबह छोड़ दूंगा इस आश्रम को, यह जगह मेरे लायक नहीं।
लेकिन उसी रात एक घटना घट गई कि फिर उस युवा संन्यासी ने जीवन भर वह आश्रम नहीं छोड़ा। क्या हो गया? रात एक और संन्यासी मेहमान हुआ। रात आश्रम के सारे मित्र इकट्ठे हुए, सारे संन्यासी इकट्ठे हुए, उस नये संन्यासी से बातचीत सुनने। उस नये संन्यासी ने बड़ी ज्ञान की बातें कहीं, उपनिषद की बातें कहीं, वेदों की बातें कहीं। वह इतना जानता था, इतना सूक्ष्म उसका विश्लेषण था, ऐसा गहरा उसका ज्ञान था कि दो घंटे तक वह बोलता रहा। सबने मंत्रमुग्ध होकर सुना। फिर उस युवा संन्यासी के मन में हुआः गुरु हो तो ऐसा हो। इससे कुछ सीखने को मिल सकता है। एक वह बूढ़ा है, वह चुपचाप बैठा है, उसे कुछ भी पता नहीं। अभी सुन कर उस बूढ़े के मन में बड़ा दुख होता होगा, पश्चात्ताप होता होगा, ग्लानि होती होगी--कि मैंने कुछ न जाना और यह अजनबी संन्यासी बहुत कुछ जानता है।

युवा संन्यासी ने यह सोचा कि आज वह बूढ़ा गुरु अपने दिल में बहुत-बहुत दुखी, हीन अनुभव करता होगा। तभी उस आए हुए संन्यासी ने बात बंद की और बूढ़े गुरु से पूछा कि आपको मेरी बातें कैसी लगीं?
वह बूढ़ा गुरु खिलखिला कर हंसने लगा और कहने लगा, तुम्हारी बातें? मैं
दो घंटे से सुनने की कोशिश कर रहा हूं, तुम तो कुछ बोलते ही नहीं हो। तुम तो बिल्कुल बोलते ही नहीं हो।
वह संन्यासी बोला, दो घंटे से मैं बोल रहा हूं, आप पागल तो नहीं हैं! और मुझसे कहते हैं कि मैं बोलता नहीं हूं।
उस बूढ़े ने कहा, हां, तुम्हारे भीतर से गीता बोलती है, उपनिषद बोलता है, वेद बोलता है, लेकिन तुम तो जरा भी नहीं बोलते हो। तुमने इतनी देर में एक शब्द भी नहीं बोला! एक शब्द तुम नहीं बोले, सब सीखा हुआ बोले, सब याद किया हुआ बोले, जाना हुआ एक शब्द तुमने नहीं बोला। इसलिए मैं कहता हूं कि तुम कुछ भी नहीं बोलते हो, तुम्हारे भीतर से किताबें बोलती हैं।
एक ज्ञान है जो उधार है, जो हम सीख लेते हैं। ऐसे ज्ञान से जीवन के सत्य को कभी नहीं जाना जा सकता। जीवन के सत्य को केवल वे जानते हैं जो उधार ज्ञान से मुक्त होते हैं। और हम सब उधार ज्ञान से भरे हुए हैं। हमें ईश्वर के संबंध में पता है। और ईश्वर के संबंध में हमें क्या पता होगा जब अपने संबंध में ही पता नहीं है? हमें मोक्ष के संबंध में पता है। हमें जीवन के सभी सत्यों के संबंध में पता है। और इस छोटे से सत्य के संबंध में पता नहीं है जो हम हैं! अपने ही संबंध में जिन्हें पता नहीं है, उनके ज्ञान का क्या मूल्य हो सकता है?
लेकिन हम ऐसा ही ज्ञान इकट्ठा किए हुए हैं। और इसी ज्ञान को ज्ञान समझ
कर जी लेते हैं और नष्ट हो जाते हैं। आदमी अज्ञान में पैदा होता है और मिथ्या ज्ञान में मर जाता है; ज्ञान उपलब्ध ही नहीं हो पाता। दुनिया में दो तरह के लोग हैंः एक अज्ञानी और एक ऐसे अज्ञानी जिन्हें ज्ञानी होने का भ्रम है। तीसरी तरह का आदमी मुश्किल से कभी-कभी जन्मता है। लेकिन जब तक कोई तीसरी तरह का आदमी न बन जाए, तब तक उसकी जिंदगी में न सुख हो सकता है, न शांति हो सकती है। क्योंकि जहां सत्य नहीं है, वहां सुख असंभव है। सुख सत्य की छाया है। जिस जीवन में सत्य नहीं है, वहां संगीत असंभव है; क्योंकि सभी संगीत सत्य की वीणा से पैदा होता है। जिस जीवन में सत्य नहीं है, उस जीवन में सौंदर्य असंभव है; क्योंकि सौंदर्य वस्त्रों का नाम नहीं है और न शरीर का नाम है। सौंदर्य सत्य की उपलब्धि से पैदा हुई गरिमा है। और जिस जीवन में सत्य नहीं है, वह जीवन अशक्ति का जीवन होगा, इंपोटेंट होगा, निस्सत्व होगा; क्योंकि सत्य के अतिरिक्त और कोई शक्ति दुनिया में नहीं है।
हम सब कुरूप, हम सब अर्धमृत, हम सब असुंदर, हम सब सड़ते-गलते, हम सब जीवन में रोज-रोज मरने की तरफ जाते हुए लोग, हमें पता भी नहीं है कि हम जी भी नहीं रहे। क्योंकि जब तक सत्य न मिल जाए तब तक कोई जीवन नहीं है। जिसे सत्य मिलता है उसे ही जीवन मिलता है; क्योंकि जिसे सत्य नहीं मिलता वह मृत्यु में ही जीता है, मृत्यु में ही गिरता है, मृत्यु में ही नष्ट होता है। सत्य के अतिरिक्त कोई जीवन नहीं है।
एक सम्राट था इब्राहिम। संन्यास ले लिया उस सम्राट ने और गांव के बाहर एक चौरस्ते पर झोपड़ी बना कर रहने लगा। लेकिन उस झोपड़ी पर रोज झगड़े हो जाते। क्योंकि कोई भी आकर उस झोपड़े पर पूछता कि बस्ती का रास्ता कहां है? वहां से दो रास्ते जाते थे, एक बस्ती की तरफ, एक मरघट की तरफ। उस फकीर से कोई भी पूछता चौराहे पर--वह चौराहे पर था, और कोई चौराहे पर था भी नहीं-- रास्ता कहां है बस्ती का?
वह फकीर कहता, बाएं चले जाना; दाएं मत जाना, दायां रास्ता मरघट ले जाता है।
लोग बाएं चले जाते, तीन मील चल कर मरघट पहुंच जाते। तब बड़ा क्रोध आता
कि यह आदमी कैसा है? राह चलते हुए अजनबी लोगों से मजाक करता है! लौट कर तीन मील चल कर गुस्से में आकर उसको पकड़ लेते कि तुम आदमी कैसे हो? तुमने इतने जोर से कहा कि बाएं जाओ, बाएं बस्ती है। और हम बाएं चले गए। और तुमने रोका था, दाएं मत जाना, दाएं मरघट है। कैसे आदमी हो तुम?

इब्राहिम कहता, तो फिर हमारी परिभाषाएं अलग-अलग मालूम पड़ती हैं। तुम जिसे बस्ती कहते हो, उसे मैं मरघट कहता हूं, क्योंकि वहां हर आदमी मरने की तैयारी में बैठा हुआ है। आज मरेगा कोई, कल मरेगा कोई, परसों मरेगा कोई। और तुम जिसको मरघट कहते हो, उसको मैं बस्ती कहता हूं। क्योंकि वहां जो बस गया, बस गया; फिर कभी उजड़ता नहीं, फिर कभी वहां से जाता नहीं। तो तुमने पहले क्यों नहीं कहा कि कौन सी बस्ती! क्योंकि बस्ती का मतलब होता है कि जहां बसने पर उजड़ना नहीं होता। तो हम तो मरघट को ही बस्ती कहते हैं।
जो जानते हैं वे हमें जीवित नहीं कहेंगे। वे कहेंगे, हम मरते हुए लोग।
और क्या है जीवन हमारा? जिस दिन हम पैदा होते हैं उसी दिन से मरना शुरू हो जाता है। हमारी पूरी जिंदगी मरने की एक लंबी प्रक्रिया है, ए ग्रेजुअल प्रोसेस ऑफ डेथ। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे मरते जाने की प्रक्रिया है। आदमी जन्म के बाद मरने के सिवाय और क्या करता है?
लेकिन हम सोचते हैं, शायद मौत आती है कभी सत्तर वर्ष बाद।
मौत इस तरह नहीं आती कि सत्तर वर्ष बाद अचानक आ जाती है। मौत रोज साथ-साथ चलती है। रोज हम मरते हैं, रोज हम बूढ़े होते हैं, रोज कुछ जीवन से खिसकता चला जाता है--जीवन की आधारशिलाएं, जीवन की ईंटें; और मौत बढ़ती चली जाती है। एक दिन मौत पूरी हो जाती है। जिसको हम मौत का आना कहते हैं, वह मौत का आना नहीं है, मौत का पूरा हो जाना है। जैसे बीज बड़ा होता है और वृक्ष बनता है। ऐसे ही जन्म बड़ा होता है और मौत बन जाता है। और जिस जन्म से मौत निकलती हो, उस जन्म को जीवन कहा जा सकता है? और जिस जन्म का अंतिम परिणाम मौत होता हो, उसे हम क्या कहें? उसे मौत की लंबी प्रक्रिया कहें या जीवन कहें?
एक सम्राट रात सोया था, उसने एक सपना देखा। सपना देखा कि कोई काली छाया उसके कंधे पर हाथ रखे खड़ी है। वह बहुत घबड़ा गया, उसने पूछा, तुम कौन हो?
उस काली छाया ने सपने में कहा कि मैं मौत हूं और आज शाम तुम्हें लेने आती हूं। तुम ठीक जगह और ठीक समय पर मिल जाना। समय का ध्यान रखना, सूरज के डूबते ही, धूप के डूबते ही।
सम्राट की नींद घबड़ाहट में खुल गई। मन था कि पूछ लेता मौत से कि जगह और बता दे कि वह जगह कौन सी है, समय तो बता दिया। इसलिए नहीं कि उस जगह पर पहुंच जाता, बल्कि इसलिए कि उस जगह पर पहुंचने से बचता। कहीं भूल-चूक से उस जगह न पहुंच जाए। लेकिन नींद खुल गई थी, सपना टूट गया था, मौत मौजूद नहीं थी। बहुत घबड़ा गया। आधी रात थी। लेकिन उसी वक्त गांव में डुंडी पिटवा दी कि जो लोग भी सपने का अर्थ जानते हों वे आ जाएं।
अनेक विद्वान थे उस राजधानी में, वे आ गए। और वे सपने का अर्थ करने लगे। अब पंडितों से कभी भी किसी चीज का अर्थ पूछना खतरे से खाली नहीं है। क्योंकि एक पंडित एक अर्थ बताएगा, वह अर्थ दूसरा पंडित कभी नहीं बताएगा। तीसरा पंडित तो दोनों अर्थों से तीसरा अर्थ बताएगा। पंडित होने का मतलब अलग होना होता है। वे सारे पंडित अलग-अलग अर्थ करने लगे। उन्होंने अपनी किताबें खोल लीं और शास्त्रों का अर्थ निकालने लगे। सुबह हो गई, सूरज उग गया। राजा घबड़ाने लगा। क्योंकि जब सपने से जगा था तो उसे सपना कुछ साफ-साफ मालूम पड़ता था; पंडितों की बातें सुन कर और कनफ्यूजन, और भी भ्रम हो गया था; अब कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या मतलब था सपने का।
फिर सूरज ऊपर चढ़ने लगा और पंडितों का विवाद भी सूरज के साथ ऊपर चढ़ने लगा। निष्कर्ष पर पहुंचना तो दूर, आशा नहीं रही कि निष्कर्ष पर वे पहुंच सकेंगे। और तब राजा के बूढ़े नौकर ने राजा के कान में कहा, महाराज, इनकी बातों में मत उलझिए! पांच-दस हजार साल से भी पंडित विचार करते हैं, लेकिन किसी नतीजे पर कभी नहीं पहुंचे हैं। पंडित नतीजे पर पहुंचते ही नहीं। शाम जल्दी हो जाएगी, सूरज ढल जाएगा। पता नहीं, इस भवन में उस काली छाया के दर्शन हुए हैं, कहीं इसी भवन में मौत आती न हो। अच्छा तो यह है, पंडितों को निर्णय करने दें, आप घोड़े पर सवार होकर जितनी दूर निकल सकें इस महल से निकल जाएं।
उस राजा ने कहा, बात तो ठीक है। पंडित निर्णय बाद में भी कर लेंगे, बाद में पता चल जाएगा, लेकिन अभी तो मुझे सांझ से बचना चाहिए।

उसके पास तेज घोड़ा था, लेकर भागा। कई बार अपनी पत्नी से कहा था--तेरे बिना एक क्षण नहीं जी सकता हूं। लेकिन आज भागते समय घोड़े पर पत्नी की कोई याद न आई। अनेक मित्रों से कहा था कि तुम्हीं मेरी आंखों के तारे हो। तुम हो तो मेरी श्वास है। तुम हो तो सुगंध है। तुम नहीं हो तो कुछ भी नहीं है। तुम्हारे बिना नहीं जी सकता हूं। आज किसी मित्र की कोई याद न आई। आज एक ही याद थी--अपनी।
मौत के क्षण में अपनी ही याद रह जाती है। और जिंदगी भर हम दूसरे की याद करते हैं, इसलिए जिंदगी फिजूल खो जाती है। जो लोग जिंदगी के क्षण में अपनी याद कर लें, उनकी जिंदगी सार्थक हो जाती है। लेकिन मरते वक्त लोग अपनी याद करते हैं और जिंदगी भर दूसरों की याद करते हैं। जिंदगी बेकार हो जाती है और मौत के क्षण में कुछ किया नहीं जा सकता। कुछ करने को समय चाहिए; और मौत के क्षण का मतलब हैः समय अब नहीं है।
वह आदमी भागा। वह दिन भर भागता रहा, खाने के लिए नहीं रुका, पानी के लिए नहीं रुका। रुकना खतरनाक था, महल से जितनी दूर निकल जाए उतना अच्छा था। तेज घोड़ा था उसके पास, सांझ होते-होते सैकड़ों मील दूर निकल गया। एक बगीचे में जाकर घोड़ा बांधा। सूरज ढलता था, वह बहुत खुश था। घोड़े की पीठ थपथपाई और कहा, शाबाश! आज जब कोई काम नहीं पड़ा तब तू मेरे काम पड़ा। तू ही मेरा असली दोस्त है, तू ही मेरा साथी है। धन्यवाद तेरा कि तू मुझे बचा कर निकाल लाया।
तभी पीछे किसी काली छाया ने कंधे पर हाथ रखा। घबड़ा कर लौट कर देखा, वही छाया! और मृत्यु ने कहा, धन्यवाद मैं भी तुम्हारे घोड़े को देना चाहती हूं। मैं भी चिंतित थी, इस जगह तुम्हारा मरना बदा था, तुम पहुंच सकोगे कि नहीं पहुंच सकोगे, मैं भी घबड़ा रही थी। घोड़ा तुम्हारा तेज है और ठीक समय पर ठीक जगह ले आया है। सच में घोड़े का धन्यवाद करने योग्य है।
भागा सुबह से सांझ तक, जिससे भागा उसी के मुंह में पहुंच गया। जिंदगी
भर हम मौत से ही बचना चाहते हैं और मौत में ही पहुंच जाते हैं। गरीब के घोड़े भी पहुंचा देते हैं, घबड़ाना मत कि अमीर के घोड़े ही पहुंचा सकते हैं। गरीब के घोड़े भी पहुंचा देते हैं वहीं जहां अमीर के घोड़े पहुंचाते हैं। पैदल चलने वाले भी पहुंच जाते हैं, हवाई जहाज से उड़ने वाले भी पहुंच जाते हैं। ठीक जगह पर ठीक समय पर हर आदमी पहुंच जाता है। उसमें कभी भूल-चूक नहीं होती। क्योंकि जन्म की शुरुआत मौत की शुरुआत है; क्योंकि जन्म के साथ ही मरना शुरू हो गया।
इसे हम जिंदगी कहते हैं? तभी तो फिर जिंदगी दुख है; तभी तो जिंदगी एक पीड़ा है; तभी तो जिंदगी एक चिंता है और एक अशांति है। जिंदगी क्या है एक तनाव के अतिरिक्त? एक तनाव जिसमें प्राण कंपते रहते हैं, प्रतिपल दुख, और दुख, और दुख। एक तनाव जिसमें सिवाय आंसुओं के कुछ भी हाथ नहीं लगता। एक तनाव जिसमें सिवाय दुर्घटनाओं के कोई घटना ही नहीं घटती। जिंदगी क्या है? एक सपना, और वह भी दुखद, नाइटमेयर।
ऐसी जिंदगी को अगर बदलना हो तो बिना सत्य के साक्षात के नहीं बदला जा सकता। और जिंदगी ऐसी इसीलिए है कि हमें सत्य का कोई भी पता नहीं। सत्य यानी जीवन, हमें जीवन का ही कोई पता नहीं। हम बाहर ही बाहर देखते हैं और भीतर झांक भी नहीं पाते जहां जीवन का मूल स्रोत है।

धर्म विज्ञान है जीवन के मूल स्रोत को जानने का। धर्म मेथडोलॉजी है, विधि है, विज्ञान है, कला है उसे जानने का जो सच में जीवन है। वह जीवन जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती। वह जीवन जहां कोई दुख नहीं है। वह जीवन जहां न कोई जन्म है, न कोई अंत। वह जीवन जो सदा है और सदा था और सदा रहेगा। उस जीवन की खोज धर्म है। उसी जीवन का नाम परमात्मा है। परमात्मा कहीं बैठा हुआ कोई आदमी नहीं है आकाश में। परमात्मा समग्र जीवन का, टोटल लाइफ का इकट्ठा नाम है। ऐसे जीवन को जानने की कला है धर्म।
लेकिन हम धर्म के नाम पर क्या जानते हैं?
हम धर्म के नाम पर जानते हैं शास्त्र। हम धर्म के नाम पर जानते हैं शब्द। हम धर्म के नाम पर जानते हैं सिद्धांत। कोई गीता को कंठस्थ किए है, कोई कुरान को, कोई बाइबिल को, और सोच रहा है कि धर्म हो गया। नहीं; शब्दों

से धर्म नहीं होता। जो शब्दों को सत्य समझ लेता है वह वैसा ही आदमी है जिसने कंकड़-पत्थरों को हीरे-मोती समझ लिया हो। जो शब्दों को सत्य समझ लेता है वह ऐसा ही आदमी है जिसने शब्दकोश में लिखा हो घोड़ा और उसको घोड़ा समझ लिया।
अब शब्दकोश के घोड़े पर कोई भी सवारी नहीं करता है। घोड़ा अस्तबल में बंधा हुआ है। और वहां घोड़ा वगैरह कुछ भी नहीं लिखा हुआ है, वहां सिर्फ घोड़ा बंधा है। और घोड़े को पता भी नहीं होगा कि वह घोड़ा भी कहा जाता है। शब्दकोश में लिखा है घोड़ा। और कई ऐसे बुद्धिमान हैं कि शब्दकोश पर चढ़ कर सवार हो जाएंगे और कहेंगे, घोड़ा, मुझे ले चल।
नहीं लेकिन, शब्दकोश के घोड़े पर कोई छोटा बच्चा भी नहीं चढ़ता। लेकिन शब्दकोश के ईश्वर पर अधिकतम लोग पूजा करते रहते हैं; और शब्दकोश के ईश्वर के सामने हाथ जोड़ कर खड़े रहते हैं। शब्दकोश को ही सत्य समझ लेते हैं, शास्त्र पढ़ लेते हैं और सिद्धांतों को सत्य समझ लेते हैं।
यह सारा का सारा ज्ञान ऐसा ही है जैसे कोई आदमी तैरने के संबंध में बहुत सी किताबें पढ़ ले, और तैरने का जानकार बन जाए, और जरूरत पड़े तो तैरने पर पीएचड़ी. कर ले, किताबें लिख डाले, व्याख्यान करे। लेकिन कभी भूल कर ऐसे आदमी को नदी में धक्का मत दे देना; क्योंकि वह आदमी और सब कर सकता है, तैर नहीं सकता है। किताब से पढ़ा हुआ तैरना नदी में काम नहीं आता। हां, और एक किताब लिखनी हो तो काम पड़ सकता है।
तो कुछ लोग किताबें पढ़ते हैं और नई किताबें बनाते चले जाते हैं। तो दुनिया में किताबों का ढेर बढ़ता चला जाता है, लेकिन ज्ञान नहीं बढ़ रहा है। क्योंकि ज्ञान किताब से नहीं आता; ज्ञान तो जिंदगी के भीतर, अपने ही भीतर छिपे हुए कुएं हैं, वहां से आता है। लेकिन वहां तो हम कभी देखते ही नहीं। हम तो बाहर से कूड़ा-करकट इकट्ठा करके भीतर ले जाते हैं। उलटे हमारा ज्ञान हमारे भीतर के ज्ञान को ढंक देता है और निकलने नहीं देता।
आदमी की जिंदगी में ज्ञान वैसे ही है जैसे पानी जमीन के नीचे है। और कुआं कोई खोद ले, जमीन के पत्थर निकाल कर बाहर फेंक दे। कुआं खोदने में कोई क्या करता है? मिट्टी-पत्थर निकाल कर फेंक देता है। पानी? पानी भीतर है। मिट्टी-पत्थर के निकलते ही बाहर आ जाता है। कुआं क्या है? कुआं एक छेद, एक एंप्टीनेस, एक खाली जगह है। हमने एक खाली जगह बना दी, भीतर का पानी प्रकट होने लगा।
लेकिन कुछ लोग कुआं नहीं बनाते, कुछ लोग हौज बना लेते हैं। हौज बिल्कुल उलटी चीज है! कुआं जमीन में खोदना पड़ता है, हौज ऊपर की तरफ उठानी पड़ती है। कुएं में मिट्टी-पत्थर निकाल कर फेंकने पड़ते हैं, हौज के लिए बाजार से खरीद कर लाने पड़ते हैं। मिट्टी-पत्थर लाओ, दीवाल बना कर जोड़ कर खड़ा कर दो। कुआं खुद जाता है तो पानी मांगने नहीं जाना पड़ता, पानी अपने आप आता है। हौज बन कर तैयार हो गई, अब पानी भी लाओ; अब पड़ोस के कुओं से पानी मांगो उधार और अपनी हौज में भर लो। देखने पर हौज और कुआं एक जैसे मालूम पड़ते हैं। हौज में भी पानी है, कुएं में भी पानी है। लेकिन कुएं के पास अपना पानी है, हौज के पास अपना पानी नहीं है।
कुएं के पानी में जिंदगी है, कुएं का पानी जिंदा है, उसके सागर से संबंध हैं, उसकी दूर धाराएं फैली हैं, वह अनंत से जुड़ा है। हौज किसी से भी नहीं जुड़ी, अपने में बंद है, चारों तरफ से बंद है, उसका किसी से कोई संबंध नहीं। कुआं भलीभांति जानता है कि पानी मेरा नहीं है, सागर का है। हौज जानती है कि पानी मेरा है।
अब यह मजा देखो! हौज के पास सारा पानी उधार है, लेकिन हौज को लगता है कि पानी मेरा है। कुएं के पास पानी उधार नहीं है, अपना है। लेकिन कुआं जानता हैः मेरा क्या है! मैं तो केवल प्रकट होने का एक रास्ता हूं। पानी तो सागर का है, पानी तो आकाश का है, पानी तो दूर से आता है और मैं भर जाता हूं। मैं तो एक खाली जगह हूं जिसमें पानी प्रकट होता है।
कुएं के पास कोई अहंकार नहीं होता, हौज के पास अहंकार होता है। अगर पानी भरा रहे तो हौज का पानी सड़ेगा, कुएं का पानी नहीं सड़ेगा। अगर पानी को निकाल लो तो हौज का पानी खाली हो जाएगा, हौज नंगी और खाली हो जाएगी। कुएं का पानी निकालो, और नया पानी भर जाएगा।

मैंने कुओं को चिल्लाते सुना है कि आओ, कोई मेरा पानी निकाल लो! और हौजें भी चिल्लाती हैं और रोती हैं कि दूर रहना, हमारा पानी मत निकाल लेना! लाओ, और थोड़ा पानी डाल दो।
और आदमी भी दो तरह के हैं। एक हौज की तरह के आदमी हैं जो ज्ञान उधार लेकर भर लेते हैं अपनी खोपड़ी में। उनके पास अपना कुछ भी नहीं होता। और एक वे लोग भी हैं जो ज्ञान उधार नहीं मांग लेते, जो अपने भीतर खोदते हैं और ज्ञान का कुआं उपलब्ध कर लेते हैं। ज्ञानी वे हैं जिनके भीतर कुएं की तरह पानी प्रकट होता है और पंडित वे हैं जो हौज की तरह हैं।
इसलिए दुनिया में पंडित कभी भी सत्य को नहीं जान पाता है। अज्ञानी जान सकते हैं, लेकिन पंडित नहीं जान सकता। मैंने सुना ही नहीं कि पंडित कभी भगवान के दरवाजे तक पहुंचा हो। आज तक नहीं पहुंचा, आगे भी कभी नहीं पहुंच सकता है; क्योंकि पंडित के पास सब उधार है, उधार आदमी कहीं भी नहीं पहुंच सकता है। सब बारोड है, सब बासा है, सब मुर्दा है, दूसरों के शब्द हैं। हम पंडित बनना चाहते हैं तो बहुत आसान है; लेकिन अगर हम ज्ञान को उपलब्ध होना चाहते हैं तो थोड़ी कठिनाई है। क्योंकि पंडित होने में संग्रह करना पड़ता है। संग्रह करना आसान है, क्योंकि संग्रह करना मन को बड़ा सुख देता है। जितना संग्रह बढ़ता है उतना लगता है मैं कुछ हूं। पैसा इकट्ठा होता है तो आदमी को लगता है मैं कुछ हूं। ज्ञान इकट्ठा होता है तो भी आदमी को लगता है मैं कुछ हूं। किसी भी चीज के इकट्ठे होने से आदमी की ईगो, अहंकार मजबूत होता है और लगता है मैं कुछ हूं। इसलिए संग्रह करना हमेशा आसान है, क्योंकि संग्रह से मैं निर्मित होता है, अहंकार मजबूत होता है। लेकिन जिसे ज्ञान पाना है, वह थोड़ा कठिन है, आरडुअस है, थोड़ा तपश्चर्यापूर्ण है, क्योंकि उसमें संग्रह छोड़ना पड़ता है। और धन छोड़ना आसान है, ज्ञान छोड़ना बहुत मुश्किल है; क्योंकि ज्ञान भीतरी धन मालूम पड़ता है, लगता है कि यही तो हमारा सहारा है।
लेकिन कभी भीतर झांक कर देखें, वहां कोई भी ज्ञान नहीं है हमारे पास, वहां हम बिल्कुल खाली और अज्ञानी हैं, हमने झूठा ज्ञान वहां पकड़ रखा है। और जब तक हम इस झूठे ज्ञान को पकड़े हुए हैं, तब तक हम अपनी किताबें खोल कर बैठे रहेंगे और पूछते रहेंगेः ईश्वर का दरवाजा कहां है? ईश्वर का दरवाजा कैसे खोलें? की ऑफ नॉलेज कहां है? ज्ञान की कुंजी कहां है? हम कहां जाएं? किससे पूछें? किसको गुरु बनाएं? कौन हमें कुंजी देगा और हम दरवाजा खोल लेंगे? तब तक हम अपनी किताब में उलझे रहेंगे और पांडित्य में।
लेकिन एक रास्ता और भी है। मत पूछें किसी से, मत जाएं किसी के द्वार पर, न किसी शास्त्र के पास, न किसी गुरु के पास। न किसी शास्त्र के पास ज्ञान है और न किसी गुरु के पास ज्ञान है। ज्ञान प्रत्येक के भीतर है, स्वयं के भीतर है। वहीं है शास्त्र, वहीं है गुरु, वहीं स्वयं परमात्मा बैठा हुआ है। किससे पूछ रहे हैं?
लेकिन वहां जाने के लिए चुप हो जाना पड़ेगा, वहां जाने के लिए आंख बंद
कर लेनी पड़ेगी, वहां जाने के लिए सब छोड़ देना पड़ेगा जो हम जानते हैं। और जो आदमी सब छोड़ने को राजी है--ज्ञान, जो ज्ञान छोड़ने को राजी है वह आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि तब वह पाता है कि द्वार पर कोई ताला नहीं है, द्वार खुला है। धक्का दो और द्वार खुल जाता है।
जीसस ने कहा है, नॉक एंड दि डोर शैल बी ओपन्ड अनटू यू। खटखटाओ और द्वार खोल दिए जाएंगे। आस्क एंड इट शैल बी गिवेन। मांगो और मिल जाएगा।
जीसस तो कहते हैं, खटखटाओ और द्वार खुल जाएगा। लेकिन मैं कहता हूं, खटखटाने की भी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि द्वार बंद नहीं है; आंख खोलो और पाओगे कि द्वार खुला हुआ है। लेकिन आंख नहीं खुलती है, आंख पर किताबें रखी हैं, आंख पर शास्त्र रखे हैं, हिंदुओं के, मुसलमानों के, ईसाइयों के, सबके शास्त्र छाती पर रखे हुए हैं और हर आदमी दब गया है शास्त्रों के नीचे। हमारे पास, शास्त्रों ने हमें बंधे हुए उत्तर दे दिए। और बंधे हुए उत्तर सबसे ज्यादा खतरनाक हैं, क्योंकि उनकी वजह से कोई आदमी अपना उत्तर नहीं खोज पाता है।
एक छोटी सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा।

बंधे हुए उत्तर सबसे ज्यादा खतरनाक हैं; क्योंकि बंधे हुए उत्तर आपको ज्ञानी तो बना देते हैं, लेकिन बंधे हुए उत्तर आपकी चेतना को कभी विकसित नहीं होने देते।
आपने एक कहानी सुनी होगी। सुना होगा, एक आदमी था, एक सौदागर। टोपियां बेचता था बाजारों में जाकर। एक दिन लौट रहा था टोपियां बेच कर, एक झाड़ के नीचे सोया था। बंदर उतरे और उसकी टोपियां लगा कर ऊपर चढ़ गए। जब उसकी नींद खुली तब वह हैरान हुआ, टोपियां कहां गईं? ऊपर देखा तो बंदर टोपियां लगाए बैठे हैं। बड़ी मुश्किल हुई--इनसे टोपियां कैसे वापस ली जाएं? तब उसे ख्याल आया कि बंदर नकलची होते हैं। उसने अपनी टोपी निकाल कर फेंक दी। सारे बंदरों ने टोपियां फेंक दीं। उसने सारी टोपियां इकट्ठी कीं और अपने घर चला गया। इतनी कहानी आपने सुनी होगी। लेकिन यह आधी कहानी है, आधी कहानी और है, वह भी मैं आपसे कहना चाहता हूं।
फिर वह सौदागर मर गया, उसका बेटा सौदागर हुआ। उस बेटे ने भी टोपियां बेचना शुरू कीं। वह बेटा भी उसी झाड़ के नीचे रुका। बंदर उतरे और टोपियां लगा कर ऊपर चढ़ गए। उस बेटे ने ऊपर देखा, उसे अपने बाप की कहानी याद आई। उसके पास उत्तर तैयार था, उसने सोचा कि बाप ने कहा था कि टोपी फेंकने से सब टोपियां बंदरों ने फेंक दी थीं। उसने अपनी टोपी निकाली और फेंक दी। लेकिन दुर्भाग्य, एक बंदर नीचे उतरा और उसकी भी टोपी लगा कर ऊपर चला गया। बंदरों ने टोपी नहीं फेंकी, क्योंकि बंदर पहले मामले से समझ गए थे और उन्होंने तय कर लिया था कि अब कभी भूल ऐसी नहीं करनी है, सौदागर एक दफा धोखा दे गया। लेकिन बेटे के पास बंधा हुआ उत्तर था, बाप के ज्ञान को अपना ज्ञान बना लिया था उसने। वह झंझट में पड़ गया।
सभी बेटे बाप के ज्ञान को अपना ज्ञान बना कर झंझट में पड़ जाते हैं, क्योंकि ज्ञान कभी भी किसी का किसी दूसरे का नहीं बन सकता है। ज्ञान कभी भी उधार नहीं होता। ज्ञान उधार हो ही नहीं सकता है। जो उधार है वह अज्ञान से बदतर है।
लेकिन हम सब उधार ज्ञान से भरे हुए हैं। सब बाप-दादों के उत्तर हैं, सब याद किए हुए हैं हम। कृष्ण का, महावीर का, बुद्ध का, क्राइस्ट का, सब उत्तर हमें याद हैं। उन उत्तरों के कारण हमें अपना उत्तर नहीं मिल पाता है। इसलिए हम जिंदगी में, जिंदगी को बिना जाने जीते हैं और मर जाते हैं। इसलिए जिंदगी हमारी एक सुवास नहीं, इसलिए जिंदगी एक सुगंध नहीं, इसलिए जिंदगी एक जीता हुआ संगीत नहीं, इसलिए जिंदगी एक कल-कल करता हुआ झरना नहीं है। जिंदगी एक बंद तालाब हो गई है। और इस बंद तालाब में हम सड़ गए हैं, गल रहे हैं। चारों तरफ दुर्गंध फैल रही है जीवन के, चारों तरफ जीवन उदास हो गया। ऐसी उदास जिंदगी को बदलने के लिए कुछ किया जाना जरूरी है। क्या कर सकते हैं? उधार ज्ञान को छोड़ें और अपने भीतर झांकें, जहां से असली ज्ञान के स्रोत उपलब्ध होते हैं।
मेरी बातों को, जो कि बड़ी मुश्किल से मैं कह पाया और पूरी नहीं कह पाया, फिर भी आपने इतनी बातचीत करने वाले लोगों के बीच--यह मौका पहली दफा है मेरी जिंदगी में ऐसा, आपके गांव को याद रखूंगा--फिर भी मेरी बातों को किसी तरह सुन लिया, उसके लिए बहुत-बहुत अनुग्रह मानता हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन रहस्य
सातवां प्रवचन

पिछले जन्मों का स्मरण

बंदर से आदमी का विकास हुआ, यह तो समझ में आता है। लेकिन आप जो आत्मा
के विकास की बात कहते हैं, वह जरा समझ में नहीं आता।

इसमें समझने की बात ही बहुत ज्यादा नहीं है। बंदर से आदमी की देह मिली है, यह भी आपको कैसे समझ में आता है? यह इसीलिए समझ में आता है कि पीछे डार्विन ने बहुत मेहनत की और यह समझाने की कोशिश की कि शरीर का जो विकास है, मनुष्य के पास जो शरीर है, वह शरीर बंदर के पास जो शरीर है उसकी ही आगे की कड़ी है। यह शरीर उससे ही विकसित होकर आया हुआ है। यह तो आधी बात हुई। अगर मनुष्य केवल शरीर है, तब तो बात खत्म हो गई। लेकिन मनुष्य अगर आत्मा भी है, जैसा कि है, तो आत्मा कैसी विकास-यात्रा से आ रही है?
प्रकृति में बहुत-बहुत तलों पर बहुत तरह का विकास चल रहा है। तो जैसे शरीर की कड़ी बंदर से जुड़ी हुई है, वैसे ही अगर हम आदमी के पुनर्जन्मों में जाने की कोशिश करें--जैसे अगर आपके पुनर्जन्मों को जानने की, पिछले जन्मों को जानने की कोशिश की जाए--तो यह बड़ा आश्चर्यजनक अनुभव है कि अगर दस-पांच लोगों को उनके पिछले जन्मों की स्मृति में ले जाया जाए, तो दस-पांच जन्म तो उनके मनुष्यों के मिलेंगे, लेकिन मनुष्यों के अतिरिक्त अगर पीछे कोई याददाश्त को घुमाया जाए, तो आखिरी कड़ी गाय की मिलेगी। यानी अगर आपको याद दिलाया जाए, तो हो सकता है आपके पिछले दस जन्म मनुष्य के ही रहे हों। लेकिन ग्यारहवां जन्म आपका गाय का मिल जाएगा। अगर किसी भी मनुष्य के पिछले जन्मों की स्मृति को खोदा जाए, तो मनुष्य होने के पहले उसका जो जन्म होगा वह गाय का होगा। आत्मिक कड़ी! शरीर की कड़ी नहीं; शरीर की कड़ी तो बंदर से आई हुई है। लेकिन आदमी होने के पहले कोई आत्मा किस पशु योनि से गुजरती है, अगर इसकी खोज-बीन की जाए, तो आदमी होने के पहले मनुष्य की आत्मा गाय की योनि से गुजरती है, यह मेरा कहना है। और चूंकि इस संबंध में कोई बहुत बड़ा काम नहीं हुआ, जैसा कि डार्विन के लिहाज से शरीर के संबंध में हुआ है, तो इस पर काफी काम करने जैसी गुंजाइश है, कि अगर हम दस-पच्चीस लोगों को पिछले जन्मों में उतारने की कोशिश करें, तो जहां से उन्होंने मनुष्य की कड़ी शुरू की है, वह कड़ी गाय की कड़ी के बाद शुरू होती है। इसलिए गाय से एक आत्मिक निकटता है, वह जो मैंने कहा, गऊमाता का मेरा जो अर्थ हो सकता है।
बंदर से भी एक निकटता है, शारीरिक कड़ी की दृष्टि से। यानी इसका मतलब
यह हुआ कि आदमी के पैदा होने के पहले, गाय की यात्रा से जो आत्मा विकसित हो रही थी वह, और बंदर की यात्रा से जो शरीर विकसित हो रहा था वह, मनुष्य होने के लिए इन दो चीजों का उपयोग किया गया--बंदर वाले शरीर का और गाय वाली आत्मा का।

यह समझ में नहीं आता।

समझने की बात नहीं है बहुत न! वह तो प्रयोग करने की बात है बहुत। वह तो अगर पिछले जन्मों की स्मृति को जगाने की कोशिश करें, तो समझ में आने वाली बात है।

आपने किया है प्रयोग?

हां, तभी कह रहा हूं, नहीं तो कैसे कहूंगा।

आपने जो प्रयोग किया, वह बताएं, तो उससे शायद समझ में आए।

उससे भी कुछ समझ में नहीं आएगा न! वह तो तुम्हारा ही प्रयोग तुम्हें कराया जाए तो समझ में आता है।

आत्मा के संबंध में जितनी बातें हैं, वे बिना प्रयोग के कोई भी समझ में आने वाली नहीं हैं। कहा जा सकता है कि यह है, ऐसा है, लेकिन उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कहने से। वह तो किसी को भी उत्सुकता हो... तो जैसे मैं ध्यान के शिविर ले रहा हूं, धीरे-धीरे उत्सुकता जगाता हूं कुछ लोगों में कि जिन लोगों को पिछले जन्म की स्मृति की यात्रा पर जाना हो, उनके अलग शिविर लेने का इंतजाम। थोड़े से पच्चीस लोग इक्कीस दिन के लिए मेरे पास आकर रहें, उनको पिछले जन्म की यात्रा में उतारने की कोशिश की जाए। इक्कीस के साथ मेहनत की जाए तो उसमें से पांच-सात लोग उतर जाएंगे। तो ही समझ में आ सकता है कि हमारी पिछली कड़ी कहां से जुड़ी हुई है। नहीं तो वह समझ में नहीं आता।
और कठिनाई तो यह है कि कोई प्रयोग करने के लिए, गहरे प्रयोग करने की तैयारी नहीं है किसी की। क्योंकि गहरे प्रयोग खतरनाक भी हैं। क्योंकि आपको अगर पिछले जन्मों की स्मृति आ जाए, तो आप फिर दुबारा वही आदमी कभी नहीं हो सकेंगे जो आप स्मृति के पहले थे। कभी नहीं हो सकेंगे! फिर असंभव है यह बात। यानी आपकी पूरी, टोटल पर्सनैलिटी फौरन बदल जाएगी। क्योंकि आप पाएंगे कि अगर अपनी पत्नी को बहुत प्रेम कर रहे हैं, तो आप पाएंगे कि ऐसी कई पत्नियों को बहुत बार प्रेम किया और कुछ अर्थ नहीं पाया। तो इसके बाद आप इस पत्नी को वही प्रेम नहीं कर सकते जो आप इसके पहले कर रहे थे। वह असंभव हो जाएगा, वह बात ही खतम हो गई। अगर अपने बेटे के लिए आप मरे जा रहे हैं कि इसको यह बनाऊं, इसको वह बनाऊं, और आपको अगर पांच जन्मों की स्मृति आ जाए कि आप ऐसे कई बेटों के साथ मेहनत कर चुके हैं, वह सब बेमानी साबित हुई, और आखिर में मर गए, तो इस बेटे के साथ जो आपका पागलपन है वह एकदम क्षीण हो जाएगा।
बुद्ध और महावीर, दोनों ने अपने सभी साधकों को पिछले जन्मों में ले जाने का प्रयोग किया। अगर कोई बहुत गौर से समझे तो बुद्ध और महावीर का जो सबसे बड़ा दान है वह अहिंसा वगैरह नहीं है। अहिंसा तो बहुत दिन से चलती थी। इन दोनों का जो सबसे बड़ा कीमती दान है, वह जाति-स्मरण है, वह विधि है जिसके द्वारा आदमी को उसका पिछला जन्म स्मरण दिलाया जा सके। और जो लाखों लोग भिक्षु और संन्यासी हो गए, वह शिक्षा से नहीं हो गए। वह जैसे ही उनको पिछले जन्म का स्मरण आया कि सब बातें बेकार हो गईं और उनको सिवाय संन्यास के कोई सार्थक बात न रही। लाखों आदमी एक साथ जो संन्यासी हुए, उसका यह कारण नहीं था कि महावीर ने समझा दिया कि संन्यास से मोक्ष मिल जाएगा। उसका कुल कारण इतना था कि उनको उनकी स्मृति की याद दिला देने से उनको यह लगा कि यह सब तो हम बहुत बार कर चुके, इसमें तो कुछ सार नहीं है, इसमें कुछ भी सार नहीं है। यह चक्कर तो बहुत दफे घूम चुका, इसमें कोई भी अर्थ नहीं है। तब कुछ और करने की धारणा... ।
तो वह तो मैं चाहता हूं। ये जो सारी बातें कहता भी हूं वे इसी ख्याल से कहता हूं कि आप में कोई जिज्ञासा जगे। लेकिन बौद्धिक जिज्ञासा से कुछ भी नहीं होगा। जिज्ञासा ऐसी जगनी चाहिए कि कुछ लोग प्रयोग करने के लिए राजी हों। और अब जल्दी ही मैं चाहता हूं कि ध्यान के शिविर भी हों तो अब इस तरह के सामान्य शिविर न हों। सभी लोग आ जाएं, ऐसा अब न हो। या फिर हम शिविरों को बांटें। सामान्य शिविर हो, कोई भी आ सके। फिर गहरा शिविर हो, जिसमें वही लोग आ सकें जो कि गहरे जाने की हिम्मत और पूरी शक्ति लगाने को तैयार हों। तो मैं तो मानता हूं कि इक्कीस दिन में गहरा प्रयोग करने से आप बिल्कुल दूसरे आदमी हो जाएं, आपकी सारी जिंदगी और हो जाए। जो आप सोचते थे वह चला जाए; जो आप जीते थे वह चला जाए; और दुबारा आप लौट कर कभी वही न हो सकें।
लेकिन बौद्धिक जिज्ञासा से तो कुछ हल होने वाला नहीं है बहुत। क्योंकि जो भी आप पूछेंगे, मैं कुछ और कहूंगा, उस पर और दस प्रश्न खड़े हो जाते हैं, और वह बात वहीं घूम कर रह जाती है। उससे कोई मतलब नहीं है।

जाति-स्मरण की बात तो अतीत की हो गई।

जी, अतीत की ही, अतीत की ही। लेकिन अगर आपको यह ख्याल आ जाए कि आप ने अतीत में क्या-क्या किया, कितने बार किया, तो आज जो आप कर रहे हैं उसके करने

में बुनियादी फर्क पड़ जाएगा। अगर यह पता चल जाए कि मैंने कई दफा धन कमाया, कई दफा कमाया और कुछ भी नहीं पाया, तो आज धन कमाने की जो दौड़ हो, वह एकदम क्षीण हो जाएगी। उसमें से बल निकल जाएगा। फर्क बुनियादी पड़ जाएगा एकदम। अगर आपको यह पता चल जाए कि यह शरीर बहुत दफे मिला और हर बार नष्ट हो गया, तो अब इस शरीर के आसपास जीने का कोई मतलब नहीं, यह फिर नष्ट हो जाएगा। तो मेरे जीने का केंद्र शरीर नहीं होना चाहिए, क्योंकि शरीर बहुत दफे मिलता है और मर जाता है, और कोई फर्क नहीं पड़ता। तो आपके जीने का केंद्र पहली दफा आत्मा हो जाएगी, शरीर नहीं रह जाएगा।
अतीत की ही है वह। लेकिन उसका स्मरण आपको यह साफ कर देगा कि जो आप कर रहे हैं, यह कोल्हू के बैल जैसा करना है, यानी बहुत दफे किया जा चुका है। सफल हो गए हैं तो भी कुछ नहीं पाया, असफल हो गए हैं तो भी कुछ नहीं गंवाया। अगर यह बात दिख जाए तो सफलता-असफलता का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। यानी हम फिर वही नहीं कर सकेंगे न!
एक पिछले जन्म में मैंने करोड़ रुपये इकट्ठे कर लिए, और फिर मर गया। इस जन्म में मैं फिर करोड़ रुपये इकट्ठे करने के लिए लगा हुआ हूं। तो मेरे सामने साफ हो जाएगा कि करोड़ इकट्ठे कर लूंगा, और फिर मर जाऊंगा। तो अब मुझे करोड़ इकट्ठे करने की दौड़ में जीवन गंवाना? या कुछ और कमाने का ख्याल करना चाहिए?
और प्रकृति की यह तरकीब है कि आपके पिछले जन्म की स्मृतियां बिल्कुल दबा कर रख देती है। और ठीक भी है, नहीं तो आप पागल हो जाएं। अगर अकारण स्मृति आपको रही आए, तो आप मुश्किल में पड़ जाएं। तो जो हिम्मत करके कोशिश करता है खोजने की उसको ही पता चलता है, नहीं तो नहीं पता चलता।
सारी स्मृतियां, जितने जन्म हुए हैं--और एक-एक आदमी के लाखों जन्म हुए हैं--वे सारी स्मृतियां कोई भी खो नहीं जाती हैं, वे सारी स्मृतियां आपके भीतर मौजूद हैं। गहरी परतों पर उनको खोजना पड़ेगा। और ऐसे तो सामान्यतः हम, आठ साल पहले आपने क्या किया, वह भी भूल गए हैं।
मैं एक लड़की पर बहुत दिन तक प्रयोग करता था, उसकी जाति-स्मरण के लिए।
तो अगर मैं आपसे पूछूं कि उन्नीस सौ इक्यावन में एक जनवरी को आपने क्या किया? तो आप कुछ भी नहीं बता सकते। एक जनवरी हुई है, उन्नीस सौ इक्यावन भी हुआ है, वह आपको पता है। पिछले जन्म की बात नहीं, इसी जन्म की बात है। लेकिन एक जनवरी उन्नीस सौ इक्यावन को आपने सुबह से शाम तक क्या किया? वह कुछ भी स्मरण नहीं है। हुई भी एक जनवरी उन्नीस सौ इक्यावन या नहीं हुई, बराबर हो गई है। लेकिन अगर आपको सम्मोहित करके बेहोश किया जाए और याद दिलाया जाए, तो आपको एक जनवरी उन्नीस सौ इक्यावन आप इस तरह रिपोर्ट करते हैं जैसे अभी आंख के सामने से गुजर रही हो। अभी रिपोर्ट कर देंगे आप पूरा--कि यह हुआ, सुबह उठा, यह हुआ, यह नाश्ता लिया था, यह पसंद नहीं आया, नमक ज्यादा था दाल में--पूरे दिन का आप रिपोर्ट कर देंगे। पर मुश्किल यह मुझे हुई कि उसको टैली कैसे किया जाए कि यह हुआ भी कि यह सिर्फ एक सपना है।
तो फिर मैंने नोट करना शुरू किया कि जैसे आज दिन भर मैं सुबह से शाम तक उसको नोट करता रहा कि क्या हो रहा है--उसने किसको गाली दी, किससे झगड़ा किया, किस पर क्रोध किया--तो दिन भर के दस-पंद्रह मैंने नोट कर लिए। तीन साल बाद उसको बेहोश किया और उस दिन के लिए पूछा, तो उसने बिल्कुल ऐसा रिपोर्ट कर दिया कि जिसका कोई हिसाब नहीं था। जो बातें मैंने नोट की थीं वे तो रिपोर्ट हुईं ही, जो मैं नोट नहीं कर पाया था, क्योंकि दिन में तो हजार घटनाएं घट रही हैं, वे भी सब रिपोर्ट कर दीं।
तो इस जन्म की भी बहुत कामचलाऊ स्मृति हमारे पास रह जाती है, बाकी तो नीचे दब जाती है। इसमें भी जो दुखद स्मृतियां हैं वे एकदम से दबा दी जाती हैं, चित्त उनको दबा देता है; जो सुखद स्मृतियां हैं उनको ऊपर रख लेता है। और इसीलिए हमें पिछला बीता हुआ समय अच्छा मालूम पड़ता है।
बूढ़ा आदमी कहता है, बचपन बहुत अच्छा था। उसका और कोई कारण नहीं है, बचपन की जितनी दुखद स्मृतियां थीं वे नीचे दबा देता है चित्त और जो सुखद थीं थोड़ी सी उनको ऊपर रख लेता है, उनको याद रख लेता है।
एक बूढ़ा आदमी कहता है कि जवानी बहुत मजे की थी। बस वह जवानी में जो सुखद थोड़ा सा घटा होगा वह ऊपर रख लिया है, बाकी सब उसने दबा दिया है। और अगर

उसका पूरा चित्त खोला जा सके, तो वह हैरान रह जाएगा कि मुश्किल से, सौ घटनाएं घटती हैं जिसमें निन्यानबे दुख की होती हैं, एकाध कभी सुख की हलकी झलक की होती है। मगर चित्त ऐसा धोखा करता है। और अगर दो-चार जन्म खोले जा सकें, तब तो पूरी ही जिंदगी बदल जाती है। क्योंकि फिर आप और ही ढंग से सोचेंगे, कुछ और ही केंद्र बनाएंगे।
अतीत की ही हैं, लेकिन वे फर्क लाती हैं, एकदम फर्क लाती हैं।

मुझे एक बात पूछनी हैः प्राणी का सूक्ष्म शरीर और आदमी का एक ही समान होता है?

प्राणी यानी?

कोई भी जानवर, जैसे गाय...

नहीं, एक सा नहीं होता, अलग-अलग होता है। अलग-अलग होता है।

अलग सूक्ष्म शरीर होने से चक्र अलग रहते हैं दोनों के?

नहीं, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सूक्ष्म शरीर जो है आपका, अगर मनुष्य हैं, तो जैसा आपका शरीर है, ठीक इसी आकृति का, ठीक ऐसा ही, लेकिन अत्यंत एस्ट्रल एटम्स का बना हुआ, बहुत सूक्ष्म पदार्थों का बना हुआ शरीर होगा। उसके आर-पार जाने में कठिनाई नहीं है। अगर हम एक पत्थर फेंकें तो वह उसके आर-पार हो जाएगा। वह सूक्ष्म शरीर अगर दीवाल से निकलना चाहे तो निकल जाएगा, उसमें कोई बाधा नहीं है। लेकिन आकृति बिल्कुल यही होगी जो आपकी है। धुंधली होगी, जैसे धुंधला फोटोग्राफ हो। अगर आपके सूक्ष्म शरीर का फोटोग्राफ होगा तो वह बिल्कुल इससे मेल खाएगा। लेकिन ऐसा खाएगा जैसे कि कई सैकड़ों वर्ष में पानी पड़ते-पड़ते एकदम धुंधला हो गया हो। पर होगा यही।
गाय का होगा तो गाय जैसा होगा। लेकिन गाय जब मनुष्य शरीर में प्रवेश करेगी, तो सूक्ष्म शरीर चूंकि इतना वायवीय है, वह किसी भी आकृति में फौरन ढल सकता है। वह कोई ठोस चीज नहीं है। जैसे हम गिलास, पच्चीस ढंग के गिलास रखें और पानी को एक गिलास में डालें तो पानी उस आकृति का हो जाता है, दूसरे गिलास में डालें, दूसरी आकृति का हो जाता है। क्योंकि पानी लिक्विड है, उसका कोई ठोस आकार नहीं है, वह जिस गिलास में होता है उसी आकार का होता है। तो वह जो सूक्ष्म शरीर है, वह जिस प्राणी-जीवन में प्रवेश करता है उसी आकार का हो जाता है। उसको आकार का ठोसपन नहीं है। इसलिए अगर गाय का सूक्ष्म शरीर निकल कर मनुष्य में प्रवेश करेगा, तो वह मनुष्य की आकृति ग्रहण कर लेगा। और सूक्ष्म शरीर की जो आकृति है, वह डिजायर से पैदा होती है, वह वासना से पैदा होती है। तो जिस जीवन में प्रवेश की वासना पैदा हो जाएगी, सूक्ष्म शरीर उसी का आकार ले लेगा।
और अगर हम अपने इस शरीर पर भी प्रयोग करें तो हम बहुत हैरान हो जाएंगे!
इस शरीर पर भी अगर हम प्रयोग करें तो हम बहुत हैरान हो जाएंगे। यह शरीर भी बहुत कुछ आकृतियां हमारी वासना से ही लेता है।
अभी तो वैज्ञानिक भी इस बात को समझने में असमर्थ हैं कि हम खाना खाते हैं, तो उसी खाने से हड्डी बनती है, उसी खाने से खून बनता है, उसी खाने से हाथ की चमड़ी भी बनती है, उसी खाने से आंख की अंदर की चमड़ी भी बनती है। लेकिन आंख की चमड़ी देखती है और हाथ की चमड़ी नहीं देखती। और कान की हड्डी सुनती है और हाथ की हड्डी नहीं सुनती। और जो तत्व हम ले जाते हैं वे एक ही हैं। और इतना सारा का सारा निर्माण भीतर जो होता है, यह किस आधार पर हो रहा है? तो वह जो हमारे भीतर जो गहरी वासना है, वह वासना आकृति देती है। और उस वासना का सूक्ष्मतम रूप, अब वे कहते हैं कि जरूर किसी कोड लैंग्वेज में कहीं न कहीं लिखा होगा।
जैसे एक बीज है, उस बीज को हम डाल देते हैं। फोड़ कर देखें तो हमें कुछ पता नहीं चलता। उस बीज को हम मिट्टी में डालते हैं और उसमें से एक फूल

निकलता है, समझो सूर्यमुखी का फूल निकलता है। तो सूर्यमुखी के फूल में जितनी पंखुड़ियां हैं, इसका कुछ न कुछ कोड लैंग्वेज में उस बीज में लिखा हुआ होना चाहिए। अन्यथा यह कैसे संभव है कि यह सूर्यमुखी का ही पौधा बनता है, यह दूसरा पौधा नहीं बन जाता! बीज में किसी न किसी तरह, किसी न किसी सूक्ष्म तल पर, जो होने वाला है, वह सब लिखा होना चाहिए।
एक मां के पेट में एक अणु गया है, उस अणु में वह सब लिखा हुआ है जो आप में संभव होगा। वह उस अणु में कहां लिखा हुआ है? अभी तक वैज्ञानिक की पकड़ के बाहर है, लेकिन आध्यात्मिक या योग का कहना यह है कि उसमें जो प्राण प्रविष्ट हुआ है, उस प्राण की जो वासना है, वह वासना कोड है। उस कोड से सब विकसित होगा।
और वह जो सूक्ष्म शरीर है, जब तक एक ही तरह की जीवन-यात्रा करेगा--जैसे
दस जन्म होंगे आदमी के, तो वह आदमी का रहेगा। लेकिन हर जन्म में उसकी आकृति बदलती चली जाएगी। और वह आकृति भी आपकी वासना से ही निर्धारित होगी।

सूक्ष्म शरीर के साथ चक्र जाते हैं कि नहीं जाते?

चक्र न! हां, चक्र तो जो असल में गौर से समझें, तो सूक्ष्म शरीर और इस स्थूल शरीर के बीच जो कांटैक्ट फील्ड हैं, उनका नाम चक्र है। यानी आपका यह शरीर और वह शरीर जहां-जहां छूता है, वे चक्र हैं। तो वे सब समान हैं, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

प्राणी में और...

सब में। जहां से गाय का शरीर छुएगा, वहां चक्र बन जाएगा। और वे छूने के स्थल तय हैं। जैसे समझ लें कि सेक्स के सेंटर पर एक चक्र होगा। चाहे वह किसी जाति का प्राणी हो--कुत्ता हो, बिल्ली हो, आदमी हो, औरत हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता--एक बहुत फोर्सफुल चक्र सेक्स के सेंटर पर होगा। तो वह चक्र सब शरीरों में होगा, उनकी आकृति कुछ भी हो, उस जगह चक्र होगा। हां, वह चक्र छोटा-बड़ा हो सकता है, कमजोर-ताकतवर हो सकता है।

सात चक्र होते हैं?

हां, सात चक्र होंगे।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां-हां, समझा। तो उसका मतलब केवल इतना है कि उनके बाकी चक्र निष्क्रिय पड़े हुए हैं। वे जब भी सक्रिय हो जाएंगे, उनकी उतनी इंद्रियां प्रकट होने लगेंगी। चक्र निष्क्रिय हो सकते हैं। और हमारे भीतर भी सात चक्र होते हैं, लेकिन सातों सक्रिय नहीं होते। सातों सक्रिय हो जाएं तो बहुत अदभुत घटना घट गई। हमारे भी सातों सक्रिय नहीं होते। आमतौर से सौ आदमियों की जांच-पड़ताल करेंगे, तो सेक्स का चक्र तो सब में सक्रिय मिलेगा, बाकी छह चक्रों में से कोई एकाध चक्र किसी में सक्रिय होगा, किसी में दो चक्र सक्रिय होंगे, नहीं तो नहीं होंगे।
प्रकृति को तो जितने चक्र सक्रिय उसने बनाए हैं, वे तो सक्रिय रहते हैं। लेकिन जितने साधना से सक्रिय होते हैं, वे नहीं सक्रिय होते। वे हैं हमारे भीतर, लेकिन वे निष्क्रिय पड़े होंगे। जैसे कि बिजली का बटन तो है, बल्ब भी है, लेकिन बटन ऑफ है, तो बल्ब बंद पड़ा हुआ है; वह ऑन हो जाए तो बल्ब जल जाए। चक्र पूरी तरह मौजूद हैं, लेकिन ऑन हालत में नहीं हैं, ऑफ हालत में हैं।
तो हमारे जितने श्रेष्ठतर चक्र हैं, वे सब ऑफ हालत में हैं। और ध्यान
से और योग से उनको ऑन हालत में लाने की ही सारी चेष्टा की जाती है कि वे ऑन हो जाएं और वे सक्रिय हो जाएं। और जितने ऊपर के चक्र सक्रिय होने लगते हैं, उतने नीचे के चक्र अपने आप निष्क्रिय होने लगते हैं। क्योंकि जो शक्ति है

हमारे पास वह वही है, वह धीरे-धीरे ऊपर के चक्रों में गतिमान हो जाती है, नीचे के चक्र शिथिल हो जाते हैं।
इस पर कभी पूरी बात करनी अच्छी होगी। कभी मैं चाहता हूं कि पूरी एक सीरीज लेक्चर्स की पूरी ही इस पर हो सके तो अच्छा हो।

गुजरात में दिया था आपने एक लेक्चर इस पर।

बहुत बात करने जैसी है, बहुत बात करने जैसी है। क्योंकि मामला इतना आसान नहीं है जितना आमतौर से समझा जाता है। काफी जटिल है पीछे।

पिछले जन्मों में जाने के लिए जो आपने बात कही, उसके लिए कैसे प्रयोग करना होगा, आउटलाइन दी जा सकती है?

नहीं, वह तो आप आ जाएं तो करवा ही दूं, आउटलाइन जरा मुश्किल बात है। न, आउटलाइन से काम नहीं होगा। और आउटलाइन दी भी नहीं जा सकती है। वह तो आप एक स्टेप पूरा करें तो दूसरे की आउटलाइन दी जा सकती है। और नहीं तो आप परेशानी में पड़ जाएं, उससे कुछ मतलब नहीं है। और कुछ से कुछ कर लें, उससे कुछ मतलब नहीं होगा। वह तो एक स्टेप पूरा हो जाए तो दूसरे स्टेप की बात करना सार्थक है।

यह पासिबल है, यह उससे ख्याल में आ सके। जैसे एक वैज्ञानिक प्रयोग करता है, तो सब लोग घर में प्रयोग नहीं करते। लेकिन वे जो डिस्क्राइब करते हैं उससे ऐसा मालूम होता है कि ऐसा हो सकता है।

इसमें दोनों में बुनियादी फर्क हैं। यह वैज्ञानिक प्रयोग नहीं है उस अर्थों का; क्योंकि विज्ञान और धर्म के प्रयोग में जो बुनियादी फर्क है वह यह है कि विज्ञान का प्रयोग ऑब्जेक्टिव है।
एक बिजली का पंखा किसी ने बनाया। तो जिसने बनाया उसी को पंखा दिखता है, ऐसा नहीं है; जिन्होंने नहीं बनाया, वे सिर्फ देखने आकर खड़े हो गए हैं, उनको भी पंखा दिखता है; चलाएगा तो चलता हुआ भी दिखता है। वे मानते हैं कि ठीक है, पंखा चलता है, हवा भी फेंकता है।
विज्ञान जो प्रयोग कर रहा है वह ऑब्जेक्ट के साथ कर रहा है और धर्म जो प्रयोग कर रहा है वह सब्जेक्ट के साथ कर रहा है। मैंने अपने साथ जो प्रयोग किए हैं वे आपको किसी हालत में नहीं दिख सकते। कोई कारण नहीं दिखने का। सच तो यह है कि मेरे शरीर से ज्यादा आपको मेरे भीतर कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है। कैसे दिखाई पड़ेगा? शरीर ऑब्जेक्ट है। लेकिन मैं तो कभी आपके लिए ऑब्जेक्ट नहीं हो सकता; न आप मेरे लिए ऑब्जेक्ट हो सकते हैं। और धर्म के सारे प्रयोग सब्जेक्ट से जुड़े हुए हैं, वह जो भीतर है उससे।
तो अगर एक महावीर या एक बुद्ध कितने ही प्रयोग कर लें, फिर भी बाहर अगर लाकर, महावीर को बिठा दिया जाए सामान्य कपड़ों में, आपके बीच, आपको पता भी नहीं चलेगा यहां महावीर बैठे हुए हैं। क्योंकि जो घटना घटी है वह इतनी आंतरिक है, इतनी भीतरी है कि वह सिर्फ महावीर के लिए ही साक्षात हो सकता है उसका। उसका साक्षात बाहर से नहीं हो सकता। और बाहर से भी एक स्थिति में हो सकता है कि ठीक वैसी घटना आपके भीतर भी घटी हो, तो कोई भीतरी पहचान हो सकती है कि महावीर की आंख में आपको वह बात दिखाई पड़ने लगे जो आपकी अपनी आंख में आपको अनुभव होती है। महावीर के चलने में आपको वह बात दिखाई पड़ने लगे जो आपके चलने में फर्क पड़ गया है। तो शायद आपको थोड़ा अंदाज लगे कि इस आदमी के भीतर भी कुछ वैसी बात तो नहीं हो गई जैसी मेरे भीतर हो गई है! नहीं तो अन्यथा बिल्कुल मुश्किल मामला है।
और रूप-रेखा की भी जो बात है, कि एक आउटलाइन भी दी जा सके। आउटलाइन देना भी बिल्कुल मुश्किल है। क्योंकि मामला ऐसा है, समझ लीजिए कि पहली कक्षा में एक विद्यार्थी भर्ती हुआ है और वह कहता है कि थोड़ी-बहुत हमें मैट्रिक की आउटलाइन दे दी जाए, तो हमें पहली कक्षा में पढ़ने में थोड़ी सुविधा हो। तो उससे शिक्षक कहेगा कि चूंकि तुम पहली कक्षा से ही परिचित

नहीं हो, मैट्रिक की आउटलाइन का कोई मामला ही नहीं उठता। क्योंकि वह हम कैसे तुम्हें देंगे? और तुम कैसे जानोगे? क्या करोगे तुम उसे जान कर? तुम पहचान भी नहीं सकते हो उसको। क्योंकि जिस भाषा में वह आउटलाइन दी जाने वाली है, वह भाषा तुम जब इन कक्षाओं से गुजरो तब तुम्हारे पास होगी। वह आउटलाइन भी जो दी जाने वाली है...
समझ लीजिए कि एक पांच साल, सात साल का बच्चा है, इसको अगर सेक्स के संबंध में समझाने बैठा जाए, तो बहुत कठिनाई हो जाने वाली है। क्योंकि यह बच्चे के पास कोई भीतरी भूमिका नहीं है जिससे सेक्स की भाषा यह समझ सके। इसके लिए कोई सवाल नहीं उठता कि यह कैसे समझे? आप क्या कह रहे हैं, यह कैसे समझे? आप आउटलाइन भी दे देंगे, तब भी इसको ऐसा लगेगा कि न मालूम किस लोक की बात की जा रही है जिससे मुझे कोई पहचान नहीं है! क्या कहा जा रहा है यह?
तो जितने गहरे सत्य हैं भीतर के, उनकी बिल्कुल प्राथमिक बात की जा सकती है, बिल्कुल प्रारंभ की, बिल्कुल शुरू की। और एक-एक कदम उनमें गति हो, तो आगे के एक-एक कदम की बात आगे की जा सकती है। और एक सीमा के बाद उसकी पूरी बात की जा सकती है। नहीं तो नहीं की जा सकती।

और हमारी कठिनाई यह है कि हम में से प्रयोग करने के लिए बहुत कम लोग हिम्मत जुटा पाते हैं। और कुछ बातें ऐसी हैं जो बिना प्रयोग के कभी अनुभव में आ ही नहीं सकती हैं। छोटा-मोटा प्रयोग ही करना हमें मुश्किल गुजरता है। और ये सब प्रयोग तो जिसको हम कहें टोटल डिस्टरबेंस पैदा करने वाले हैं। आपकी पूरी की पूरी जिंदगी अपरूटेड हो जाए, और तरह की हो जाए। क्योंकि कुछ चीजें आपको पता ही नहीं जो दिखाई पड़ें; और कुछ चीजें जो आपने कभी सोची भी नहीं हैं, सामने आ जाएं। तो उनको एक-एक कदम करना ही उचित है।

मेरा ख्याल है कि जैसे आपने कहा कि वह रात को पंद्रह मिनट--मैं कौन हूं? ... इससे आगे कुछ आप कहेंगे, ऐसा ख्याल के लिए।

वह भी नहीं कहता न कोई! वह भी नहीं कहता कोई पंद्रह मिनट बैठ कर, वह भी कोई नहीं कहता। वह भी मैं कहता हूं तब एकाध-दो दिन कोई बैठ कर कर लेता है। वह भी नहीं कहता कोई। क्योंकि अगर वह भी एक दो-तीन महीने कोई श्रमपूर्वक कहे, तो उसकी पूरी की पूरी जिज्ञासा बदल जाएगी फौरन। वह जो प्रश्न पूछेगा वे दूसरे ही होने वाले हैं, जो आप पूछ ही नहीं सकते। क्योंकि उसे कुछ चीजें दिखाई पड़नी शुरू होंगी जिनके बाबत वह पूछना शुरू करेगा, जो आप कभी पूछ ही नहीं सकते। यानी आदमी क्या पूछता है, यह देख कर मैं कह सकता हूं कि वह कहां है। क्योंकि पूछेगा वही न, जहां वह सोच रहा है, जहां उसका सारा चित्त खड़ा हुआ है।
वह भी कोई नहीं फिकर करता कि वह कोई तीन-चार महीने भी ताकत लगा कर कर ले। उतना भी नहीं हो रहा है। वह भी थोड़ा सा हो तो आगे बात की जा सकती है, जरूर की जा सकती है।
और अब मैं इधर चुनाव कर रहा हूं कि कुछ कैंप मैं बुलाना चाहूंगा जिनमें कुछ लोगों को मैं निमंत्रण करूंगा कि वे आ जाएं। कोई भी नहीं आ सकेगा, जिसको मैं बुलाऊंगा वही आ जाए। तो मेरी नजर में वे कुछ लोग आने शुरू हुए हैं, जो थोड़ा काम कर रहे हैं। और उन थोड़े लोगों के साथ आगे मेहनत की जानी जरूरी है। तो उधर सोचता हूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, कारण हैं लगने के, कारण हैं लगने के। बड़ा कारण तो यह है कि एक तो हजारों साल से ऐसा समझाया जा रहा है कि किसी की कृपा से हो जाएगा; कोई कर देगा तो हो जाएगा; कोई गुरु मिल जाएगा तो कर देगा। हजारों साल से यह समझाया जा रहा है कि कोई कर देगा, हो जाएगा; आपको कुछ करना नहीं है। यह मन में बैठ गया है गहरे, एक।
दूसरी बात यह है कि कोई भी आदमी बहुत श्रम से गुजरना नहीं चाहता, और ऐसी चीजों के लिए जो बहुत साफ-साफ दिखाई न पड़ती हों। धन दिखाई पड़ता है तो

आदमी श्रम कर लेता है; यश दिखाई पड़ता है तो आदमी श्रम कर लेता है; पद दिखाई पड़ता है तो आदमी श्रम कर लेता है। धर्म का मामला ऐसा है, दिखाई बिल्कुल नहीं पड़ता और श्रम की बहुत मांग है इसमें--कि इतना श्रम करो तो कुछ होगा, इतना श्रम करो तो दिखाई पड़ेगा कुछ।
तो अदृश्य के लिए श्रम जुटाने की क्षमता थोड़े लोग ही कर सकते हैं। दृश्य के लिए श्रम जुटाना बहुत आसान बात है।
फिर चारों तरफ, हमारे चारों तरफ जो लोग कर रहे हैं, वही हम करते हैं। चारों तरफ हमारे जो लोग कर रहे हैं, वही हम करते हैं। क्योंकि हम आमतौर से खुद कुछ भी नहीं करते, जो हमारे चारों तरफ हो रहा है, उसका हम अनुकरण करते हैं। जैसे कपड़े लोग पहने हैं, हम पहन लेंगे; जो लोग पढ़ रहे हैं वह हम पढ़ेंगे; जिस पिक्चर को वे देख रहे हैं, हम देखेंगे। चारों तरफ से हमारे चित्त के जो तार हैं वे जिस तरफ खींचे जाते हैं, वहां खिंचते हैं। जैसे कि अगर हिंदुस्तान में आप पैदा हुए, तो आप और तरह के काम करेंगे; और अगर आप जापान में पैदा हुए, तो और तरह के; और फ्रांस में पैदा हुए, तो और तरह के। जो वहां की हवा है, चारों तरफ जो हो रहा है।
बुद्ध और महावीर जैसे लोगों ने दस-दस हजार भिक्षु इकट्ठे किए। और इकट्ठे करने का कारण यह नहीं था कि दस हजार इकट्ठा करने से कोई फायदा है। सिर्फ उपयोग इतना था कि आम आदमी दस हजार के बीच फौरन सक्रिय हो जाता है। जो अकेले में हो ही नहीं सकता वह। जब दस हजार भिक्षु साधना में लगे हों और दस हजार भिक्षु सुबह से सांझ तक सिर्फ साधना की बात कर रहे हों, जहां दस हजार भिक्षु सुबह से सांझ तक आत्मिक अनुभवों की बात कर रहे हों, वहां आप अगर पहुंच गए, तो बहुत असंभव है कि आप इस धारा में प्रविष्ट होने से बच जाएं, आप इसमें डूब जाने वाले हैं।
तो बड़े आश्रमों का और बड़े प्रतिष्ठानों का उपयोग सिर्फ इतना था कि वहां की पूरी की पूरी हवा--जैसे कि संसार की पूरी की पूरी हवा सांसारिक है और आप यहां वही करने लगते हैं जो दूसरे कर रहे हैं--ठीक वहां की पूरी हवा आध्यात्मिक हो और आप वहां वही करने लगें जो वहां चारों तरफ हो रहा है। और एक दफा थोड़ी सी गति हो जाए, तब तो इतना रस आने लगता है कि फिर कोई मतलब नहीं है कि कौन कर रहा है कि नहीं कर रहा है। आपका अपना आनंद ही आपको खींचने लगता है। लेकिन पहला स्टेप उठ जाए, उसकी जरूरत है।
और इधर जितना लंबा फासला हुआ है उतना आदमी को ऐसा लगने लगा है कि अध्यात्म... पता नहीं! कहीं मुट्ठी में तो पकड़ में आता नहीं कि क्या है? कौन झंझट में पड़े? और एक-दो दिन में भी मुट्ठी में पकड़ में आ जाए तो भी कोई झंझट में पड़ जाए। हमारे जन्मों-जन्मों की यात्रा प्रतिकूल है और उलटे संस्कार इकट्ठे हैं। उनको पार किए बिना, उनको तोड़े बिना कहीं गति हो नहीं सकती। इतना लंबा और कठिन दिखाई पड़ता है कि फिर आदमी सोचता है--ठीक है। सुन लो, बात कर लो, पढ़ लो; इससे ज्यादा झंझट में पड़ने का नहीं।
अब एक बहुत अच्छे आदमी हैं, विनोबा जी के खास साथियों में से हैं। वे
कई बार मेरे पास आते थे, अब बूढ़े हो गए हैं, तो उनसे मैंने कहा कि अब बातचीत आप बहुत कर चुके। कई बार गांधी जी के साथ जीवन भर रहे, विनोबा जी के साथ रहे, अरविंद आश्रम रहे, रमण के यहां... सब, हिंदुस्तान में इधर पचास सालों में जो भी कुछ हुआ होगा, वे सबसे परिचित हैं, सब जगह रहे हैं। तो बातचीत आप बहुत कर चुके, अब कुछ करिएगा, क्योंकि अब उम्र बहुत हो गई। तो उनसे मैंने कहा कि एक इक्कीस दिन का मैं प्रयोग आपको बताता हूं, पहले आप यह करके आइए, फिर मैं आगे बात करूं। नहीं तो बेकार है; आप तो इतने लोगों से बात कर चुके हैं कि अब कोई मतलब है नहीं इसमें।
वे मेरा पूरा प्रयोग समझे और मुझसे बोले, यह तो मैं करूंगा नहीं, क्योंकि इसमें तो मैं पागल हो जाऊंगा।
तो मैंने उनसे कहा कि अब मरने के करीब हैं आप; वर्ष, दो वर्ष, कितने दिन जिंदा रहेंगे, यह नहीं कहा जा सकता। इतनी हिम्मत कर लीजिए! पागल-वागल नहीं हो जाएंगे। पागल आप हैं! जो आदमी पचास साल से निरंतर अध्यात्म की बातें सुनता हुआ घूम रहा है और एक प्रयोग नहीं किया, वह आदमी पागल नहीं तो और क्या है? घूमो ही मत फिर ऐसा है तो।

पर वे कहने लगे, नहीं, यह मैं नहीं कर सकता हूं। यह तो आपका पूरा मैंने समझा, इसमें सात दिन के बाद ही मैं वापस लौटने वाला नहीं हूं, मैं तो गया। उस दिन से वे फिर मुझसे जिज्ञासा करने भी नहीं आए, क्योंकि उन्होंने कहा कि... वे समझ गए कि मैं कहूंगा कि वह करिए, फिर आगे बात होगी, नहीं तो बात नहीं होगी।
जिज्ञासा बौद्धिक हो गई, बिल्कुल इंटलेक्चुअल है। एक आदमी आकर पूछ लेता हैः ईश्वर है या नहीं? उसे कोई मतलब भी नहीं है। हो तो ठीक है, न हो तो ठीक है। इतना भी मतलब नहीं है। पूछने में भी कोई सार नहीं है।
अभी गुरजिएफ था एक फकीर फ्रांस में। तो जो भी आदमी आएगा, जिज्ञासा करने के पहले उसे बड़े उपद्रवों में से गुजारेगा वह। और जब वह उतनी हिम्मत दिखाने को राजी हो जाए तो जिज्ञासा कर सकता है, नहीं तो नहीं करने देगा। वह कहेगा कि फिजूल जिज्ञासा से कोई मतलब तो है नहीं।
इधर मैं भी जो इतनी बात करता हूं, वह इसी ख्याल से करता चला जाता हूं
कि इसमें से कुछ लोग ठीक जिज्ञासा पर आ जाएंगे। हजार आदमी पूछते हैं, कोई एक आदमी करने को राजी होगा। तो एक दो-तीन वर्ष घूमता रहूंगा और, और फिर मेरी नजर में लोग आते जाते हैं, उन लोगों को बुला कर जो करना है वह कर लूंगा। फिर एक कोने पर बैठ जाऊंगा, फिर जिसको करना हो वह वहां आ जाए। फिर मुझे कुछ भटकने की जरूरत नहीं, कोई प्रयोजन नहीं।
और इतना ध्यान रहे कि करेंगे तो ही कुछ होगा, किसी के करने से कुछ होने वाला नहीं है। पर न साहस है, न इच्छा है। कोई कामना भी नहीं है वैसी। और ऐसा ख्याल बनता है कि सब कुछ करते हुए, कभी घड़ी आधा घड़ी इस तरह की बातें भी कीं तो अच्छा है। इससे ज्यादा नहीं है कुछ।
बस।

जीवन रहस्य
आठवां प्रवचन

नये वर्ष का नया दिन

मेरे प्रिय आत्मन्!
नये वर्ष के नये दिन पर पहली बात तो यह कहना चाहूंगा कि दिन तो रोज ही नया होता है, लेकिन रोज नये दिन को न देख पाने के कारण हम वर्ष में कभी-कभी नये दिन को देखने की कोशिश करते हैं। अपने को धोखा देने की तरकीबों में से एक तरकीब यह भी है। दिन तो कभी भी पुराना नहीं लौटता, रोज ही नया होता है। हर पल और हर क्षण नया होता है। लेकिन हमने अपनी पूरी जिंदगी को पुराना कर डाला है। उसमें नये की तलाश मन में बनी रहती है। तो वर्ष में एकाध दिन नया दिन मान कर अपनी इस तलाश को पूरा कर लेते हैं।
लेकिन सोचने जैसा हैः जिसका पूरा वर्ष पुराना होता हो उसका एक दिन नया कैसे हो सकता है? जिसकी एक वर्ष की पुराना देखने की आदत हो वह एक दिन को नया कैसे देख पाएगा? मैं कल तक जो रोज हर दिन को, हर सुबह को पुराना देखा हूं, आज की सुबह को नया कैसे देख सकूंगा? मैं ही देखने वाला हूं। और मेरा जो मन हर चीज को पुरानी कर लेता है वह आज को भी पुराना कर लेगा। तब फिर नये का धोखा पैदा करने के लिए नये कपड़े हैं, उत्सव है, मिठाइयां हैं, गीत हैं; फिर नये का हम धोखा पैदा करना चाहते हैं।
लेकिन न नये कपड़ों से कुछ नया हो सकता है, न नये गीतों से कुछ हो सकता है। नया मन चाहिए! और नया मन जिसके पास हो, उसे कोई दिन कभी पुराना नहीं होता। और जिसके पास ताजा मन हो, फ्रेश माइंड हो, वह हर चीज को ताजी और नई कर लेता है। लेकिन ताजा मन हमारे पास नहीं है। तो हम चीजों को नई करते हैं। मकान पर नया रंग-रोगन कर लेते हैं। पुरानी कार बदल कर नई कार ले लेते हैं। पुराने कपड़े की जगह नया कपड़ा कर लेते हैं। हम चीजों को नया करते रहते हैं, क्योंकि नया मन हमारे पास नहीं है।
नई चीजें कितनी देर धोखा देंगी? नया कपड़ा कितनी देर नया रहेगा? पहनते
ही पुराना हो जाता है। नई कार कितनी देर नई रहेगी? पोर्च में आते ही पुरानी हो जाती है। कभी सोचा है यह कि नये और पुराने होने के बीच में कितना फासला होता है? जब तक जो नहीं मिला है, नया होता है; मिलते ही पुराना हो जाता है। अगर नई कार खरीद लाए हैं, तो कल तक सोचा था कि नई कार कैसे आए, और आज से ही सोचना शुरू कर देंगे कि और नई कैसे आए! इससे छुटकारा कैसे हो! चीजों को नया करने वाली इस वृत्ति ने सब तरफ जीवन को बड़ी कठिनाई में डाल दिया है। क्योंकि कार ही नई नहीं करनी पड़ेगी, पत्नी भी नई लानी पड़ेगी। चीजें नई होनी चाहिए न! मकान को नया पोत कर नया कर लेने पर, नई कार खरीद लेने पर पत्नी भी खुश हो रही है, पति भी खुश हो रहा है। लेकिन उन्हें ख्याल नहीं कि यह जो आदमी चीजों को नया करने में लगा है, यह एक पत्नी से जीवन भर राजी नहीं रह सकता; न यह पत्नी एक पति से जीवन भर राजी रह सकती है। क्योंकि नये होने का मतलब चीजें बदलना होता है। तो पहले पश्चिम में मकान बदले, कारें बदलीं, फिर अब आदमी बदलने लगे हैं। वह यहां भी होगा।
और नये की खोज जरूर है मन में, होनी भी चाहिए। लेकिन दो तरह की नये की खोज होती है। या तो स्वयं को नया करने की एक खोज होती है। और जो आदमी स्वयं को नया कर लेता है उसे कभी कोई चीज पुरानी होती ही नहीं। जो अपने मन को रोज नया कर लेता है उसके लिए हर चीज रोज नई हो जाती है, क्योंकि वह आदमी रोज नया हो जाता है। और जो अपने को नया नहीं कर पाता उसके लिए सब चीजें पुरानी ही होती हैं। थोड़ी देर धोखा दे सकता है नये से, लेकिन थोड़ी देर बाद सब चीज पुरानी पड़ जाती है।
दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं--एक वे जो अपने को नया करने का राज खोज लेते हैं, और एक वे जो अपने को पुराना बनाए रखते हैं और चीजों को नया करने में लगे रहते हैं। जिसको मैटीरियलिस्ट कहना चाहिए, भौतिकवादी कहना चाहिए, वह वह आदमी है जो चीजों को नये करने की तलाश में है। लेकिन शायद भौतिकवादी की, मैटीरियलिस्ट की यह परिभाषा हमारे ख्याल में ही न हो। भौतिकवादी और अध्यात्मवादी में एक ही फर्क है। अध्यात्मवादी रोज अपने को नया करने की

चिंता में संलग्न है। क्योंकि उसका कहना यह है कि अगर मैं नया हो गया तो इस जगत में मेरे लिए कुछ भी पुराना न रह जाएगा। क्योंकि जब मैं ही नया हो गया तो पुराने का स्मरण करने वाला भी न बचा, पुराने को देखने वाला भी न बचा, हर चीज नई हो जाएगी। और भौतिकवादी कहता है कि चीजें नई करो, क्योंकि स्वयं के नये होने का तो कोई उपाय नहीं है। नया मकान बनाओ, नई सड़कें लाओ, नये कारखाने, नई सारी व्यवस्था करो। सब नया कर लो, लेकिन अगर आदमी पुराना है और चीजों को पुराना करने की तरकीब उसके भीतर है, तो वह सब चीजों को पुराना कर ही लेगा। फिर हम इस तरह धोखे पैदा करते हैं।
उत्सव हमारे दुखी चित्त के लक्षण हैं। चित्त दुखी है वर्ष भर, एकाध दिन हम उत्सव मना कर खुश हो लेते हैं। वह खुशी बिल्कुल थोपी गई होती है। क्योंकि कोई दिन किसी को कैसे खुश कर सकता है? दिन! अगर कल आप उदास थे और कल मैं उदास था, तो आज दिवाली हो जाए तो मैं खुश कैसे हो जाऊंगा? हां, खुशी का भ्रम पैदा करूंगा। दीये और फटाके और फुलझड़ियां और रोशनी धोखा पैदा करेंगी कि आदमी खुश हो गया।
लेकिन ध्यान रहे, जब तक दुनिया में दुखी आदमी हैं तभी तक दिवाली है। जिस दिन दुनिया में खुश लोग होंगे उस दिन दिवाली जैसी चीज नहीं बचेगी, क्योंकि रोज ही दिवाली जैसा जीवन होगा। जब तक दुनिया में दुखी लोग हैं तब तक मनोरंजन के साधन हैं। जिस दिन आदमी आनंदित होगा उस दिन मनोरंजन के साधन एकदम विलीन हो जाएंगे। कभी यह सोचा न होगा कि अपने को मनोरंजित करने वही आदमी जाता है जो दुखी है। इसलिए दुनिया जितनी दुखी होती जाती है उतने मनोरंजन के साधन हमें खोजने पड़ रहे हैं। चौबीस घंटे मनोरंजन चाहिए सुबह से लेकर रात सोने तक, क्योंकि आदमी दुखी होता चला जा रहा है।
आमतौर से हम समझते हैं कि जो आदमी मनोरंजन की तलाश करता है, बड़ा प्रफुल्ल आदमी है। ऐसी भूल में मत पड़ जाना। सिर्फ दुखी आदमी मनोरंजन की खोज करता है। और सिर्फ दुखी आदमी ने उत्सव ईजाद किए हैं। और सिर्फ पुराने पड़ गए चित्त में, जिसमें धूल ही धूल जम गई है, वह नये दिन, नया साल, इन सबको ईजाद करता है। और धोखा पैदा करता है थोड़ी देर। कितनी देर नया दिन टिकता है? कल फिर पुराना दिन शुरू हो जाएगा। लेकिन एक दिन के लिए हम अपने कोझटका देकर जैसे झड़ा लेना चाहते हैं सारी राख को, सारी धूल को। उससे कुछ होने वाला नहीं है। ये धोखे जुड़े हुए हैं। पुराना चित्त नये की तलाश से जुड़ा हुआ है। चाहिए ऐसा कि रोज नया चित्त हो सके। कैसे हो सकता है, यह थोड़ी सी बात मैं आपसे करूं।
तब नया साल न होगा, नया दिन न होगा; नये आप होंगे। और तब कोई भी चीज पुरानी नहीं हो सकती। और जो आदमी निरंतर नये में जीने लगे, उस जीवन की खुशी का हिसाब आप लगा सकते हैं? जिसके लिए पत्नी पुरानी न पड़ती हो, पति पुराना न पड़ता हो; जिसके लिए कुछ भी पुराना न पड़ता हो। वही रास्ता जो कल जिससे गुजरा था, आज गुजर कर फिर भी नये फूल देख लेता हो, नये पत्ते देख लेता हो--उन्हीं वृक्षों पर, उसी सूरज में नया उदय देख लेता हो, उसी सांझ में नई बदलियां देख लेता हो, जो आदमी रोज नये को ईजाद कर सकता है भीतर से, उस आदमी की खुशी का हम कोई अंदाज नहीं लगा सकते। वैसा आदमी सिर्फ बोर नहीं होगा, बाकी सब लोग ऊब जाएंगे।
पुराना उबाता है। उस ऊब से छूटने के लिए थोड़ी-बहुत तरकीब करते हैं, तड़फड़ाते हैं। लेकिन उससे कुछ होता नहीं है। फिर पुराना सेटल हो जाता है। एक-दो दिन बाद फिर पुराना साल शुरू हो जाएगा। फिर अगले वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। नया दिन आएगा, फिर नये दिन हम थोड़े नये कपड़े पहनेंगे, थोड़े मुस्कुराएंगे, थोड़ी चारों तरफ खुशी की बात करेंगे, और ऐसा लगेगा कि सब नया हो रहा है। और सब झूठा है, क्योंकि यह बहुत बार नया हो चुका, और बिल्कुल नया कभी नहीं हुआ है। यह हर साल दिन आता है और हर साल पुराना साल वापस लौट आता है। इससे हमारी आकांक्षा का तो पता चलता है, लेकिन हमारी समझदारी का पता नहीं चलता। आकांक्षा तो हमारी है कि नया दिन हो, वर्ष में एक ही हो तो भी बहुत। लेकिन ऐसी क्या मजबूरी है? अगर एक दिन को नया करने की तरकीब पता चल जाए, तो हम हर दिन को नया क्यों नहीं कर सकते?
एक फकीर के पास कोई आदमी गया था और उसने उससे पूछा कि मैं कितनी देर के लिए शांत होने का अभ्यास करूं?

उस फकीर ने कहा, एक क्षण के लिए शांत हो जाओ। बाकी की तुम फिकर मत करो।
उस आदमी ने कहा, एक क्षण में क्या होगा?
उस फकीर ने कहा, जो एक क्षण में शांत होने की तरकीब जान लेता है वह पूरी जिंदगी शांत रह सकता है। क्योंकि एक क्षण से ज्यादा किसी आदमी के हाथ में दो क्षण कभी होते ही नहीं। एक क्षण ही हाथ में आता है जब आता है। और अगर एक क्षण को मैं जादू कर सकूं और नया कर सकूं, और शांत कर सकूं, और आनंद से भर सकूं, तो मेरी पूरी जिंदगी आनंदित हो जाएगी। क्योंकि एक ही क्षण मेरे हाथ में आने वाला है सदा। और उतनी तरकीब मैं जानता हूं कि एक क्षण को मैं कैसे नया कर लूं।
एक क्षण को नया करना जो जान ले उसकी पूरी जिंदगी नई हो जाती है।
लेकिन हम क्षण को पुराना करना जानते हैं, नया करना जानते नहीं। और जिंदगी वैसी ही हो जाती है जैसा हम कर लेते हैं। पुराना करने की तरकीबें हमें पता हैं। हम प्रत्येक चीज में पुराने को खोजने के इतने आतुर होते हैं जिसका हिसाब नहीं।
जैसे अभी मैं यहां बोल रहा हूं, तो आप में से कोई सोच सकता है कि गीता में लिखा है या नहीं? यह पुराना करने की तरकीब है उसके दिमाग में। वह सोच सकता है कि यह फलां संन्यासी, रामकृष्ण ने भी ऐसा कहा है, रमण ने कहा कि नहीं, किसने कहा है? कृष्णमूर्ति ऐसा कहते हैं कि नहीं कहते हैं?
उसका मतलब यह हुआ कि मैं जो कह रहा हूं उसमें वह पुराने को खोजने की तरकीब में लगा हुआ है। हम प्रत्येक चीज में पुराने को खोजते हैं और नये के लिए तड़पते हैं, और खोजते पुराने को हैं। बल्कि हमारा आग्रह भी होता है कि पुराना पुराना ही रहे।
अगर कल आपके पति ने या आपकी पत्नी ने सांझ को आपसे प्रेम से बोला था,
तो आज सांझ भी आप प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह फिर प्रेम से बोले। आप पुराने की तलाश कर रहे हैं। और अगर आज सांझ वह आपसे प्रेम से नहीं बोला है तो उपद्रव शुरू हो जाएगा। क्योंकि कल की सांझ दोहरनी चाहिए थी। और आप चाहते हैं कि सांझ नई हो जाए, और आकांक्षा आपकी है कि कल की सांझ फिर दोहरे। तो हो सकता है पति झंझट में न पड़े, पत्नी झंझट में न पड़े और कल की सांझ को दोहरा दे। कल उसने जो बातें प्रेम से कही थीं, आज फिर कह दे। हो सकता है कल वे उसके भीतर से निकली हों, आज सिर्फ वह कह रहा हो। तब पुराने का धोखा भी पैदा हो जाएगा, नये का जन्म भी नहीं होगा और पुराना हमारे ऊपर भारी होता जाएगा, उसकी धूल जमती चली जाएगी।
हम निरंतर पुराने की अपेक्षा किए हुए हैं, और नये की आकांक्षा भी किए हुए हैं। अगर कल आप मेरे पास आए थे और मैं हंस कर बोला था, तो आज जब आप मेरे पास आए हैं दरवाजे पर तो अपेक्षा लेकर आए हैं कि मुझे हंस कर बोलना चाहिए। अब वह आदमी कल था, वह गया; वह आदमी कहां है? पता नहीं कल वह आदमी क्यों हंसा था। आज हंसेगा कि नहीं हंसेगा, इसका क्या पता है? लेकिन अगर वह नहीं हंसता है तो हमारे मन में पीड़ा है। क्योंकि हम कल को दोहराना चाहते हैं। हम उस आदमी को नये होने का मौका नहीं देना चाहते। और पुराने से ऊब भी जाते हैं। पुराने से ऊब जाते हैं, नये का मौका नहीं देना चाहते, तो फिर इस कंट्राडिक्शन में अगर जिंदगी उलझाव और चिंता बन जाए तो आश्चर्य नहीं।
तो मैं आपसे यह कह रहा हूं कि हम हर चीज को पुराने करने की पूरी तरकीबें खोजते हैं; नये करने की कोई तरकीब नहीं खोजते। मैं आपको नये करने की तरकीब बताना चाहता हूं। और अगर आपको एक दफा यह राज समझ में आ जाए कि चीजों को नया कैसे करना, तो आपकी जिंदगी इतनी खुशियों से भर जाएगी कि अलग से खुशियों के फूल खरीदने की जरूरत न रह जाएगी। और अलग से नये कपड़े पहन कर नये होने की जरूरत न रह जाएगी। और अलग से त्यौहार और दिन और वर्ष मनाने की जरूरत न रह जाएगी। अलग से दिवालियां, होलियां विदा हो जानी चाहिए। ये सब दुखी और परेशान आदमी के लक्षण हैं।
क्या तरकीब हो सकती है नये की?
पहली तो बात यह है कि प्रतिपल नये की खोज की हमारी दृष्टि होनी चाहिए
कि क्या नया है? हम पूछते हैंः क्या पुराना है? हमारे मन में प्रश्न होना चाहिएः क्या नया है? और अगर हमारे मन में यह प्रश्न हो, तो ऐसा कोई भी क्षण नहीं है जिसमें कुछ नया न आ रहा हो। सुबह सूरज को उठ कर देखें, जो सूर्योदय

आज हुआ है वह कभी भी नहीं हुआ था। सूर्योदय रोज हुआ है, लेकिन जो आज हुआ है वह कभी भी नहीं हुआ था।
लेकिन हो सकता है आप कह देंः सूर्योदय रोज होता है, नया क्या है?
लेकिन यह सूर्योदय जो आज हुआ है, यह न कभी हुआ था, न कभी होगा। न ऐसे बादलों के रंग कभी पहले हुए थे, न आगे कभी होंगे। न सूरज जैसा आज की सुबह उगा है ऐसा कभी उगा था, न उग सकता है। नये को खोजें, थोड़ा देखें कि यह सूरज कभी उगा था?
और आप चकित खड़े रह जाएंगे कि आप इस भ्रम में ही जी रहे थे कि रोज वही सूरज उगता है। वही सूरज रोज नहीं उगता। न वही पत्नी रोज होती है, न वही पति रोज होता है। जो कल था वह कल विदा हो गया है। तो थोड़ा तलाश करते रहें, जो राख जम जाती है पुराने की उसको हटा कर नीचे के अंगारे की खोज करते रहें कि नया क्या है? और नये का सम्मान करना सीखें तो नया प्रकट होगा। अगर सम्मान न करेंगे तो राख ही प्रकट होगी। अंगारा प्रकट न होगा, अंगारा भीतर छिप जाएगा। नये का सम्मान करें। और जिंदगी की यंत्रवत पुनरुक्ति की आकांक्षा छोड़ दें।
अगर कल मुझसे प्रेम मिला था तो जरूरी नहीं कि आज भी मिले। आज को खुला छोड़ें, जो मिलेगा उसे देखें। यह आकांक्षा न करें कि जो कल मिला था वह आज भी मिलना ही चाहिए। जहां ऐसी आकांक्षा आई कि हमने चीजों को पुराना करना शुरू कर दिया। जिंदगी को एक थ्रिल, एक पुलक में जीने दें, एक अनिश्चय में रहने दें। क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। आज प्रेम मिलेगा, नहीं मिलेगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इस असुरक्षा को स्वीकार कर लें।
लेकिन हम सुरक्षित होने की इतनी व्यवस्था करते हैं, इसलिए हमारा सारा जीवन बासा और पुराना हो गया है। आदमी प्रेम करता नहीं कि विवाह के लिए पहले निवेदन शुरू कर देता है। यह विवाह का निवेदन प्रेम को बासा करने की तरकीब है। अगर दुनिया अच्छी होगी तो प्रेम होगा, साथ रहते हुए लोग भी होंगे, लेकिन विवाह नहीं हो सकता। विवाह जैसी बेहूदी चीज सोचने में भी नहीं आनी चाहिए। विवाह का मतलब यह है कि हम पक्का पुख्ता इंतजाम करते हैं कि कल भी यह प्रेम जारी रहेगा। आने वाले कल में ऐसा न हो कि जिसने आज हमें प्रेम दिया था और जिसकी गोद हमें आज सिर रखने को मिली थी, कल न मिले। हम कल का इंतजाम आज कर लेते हैं। और कल यह गोद ठीक ऐसी ही मिलनी चाहिए, यह प्रेम ऐसे ही मिलना चाहिए। फिर सब जड़ हो जाएगा, सब पुराना हो जाएगा, सब बासा हो जाएगा, सब मर जाएगा। और हमने सब तरफ ऐसा ही कर लिया है।
जिंदगी एक अनिश्चय है और आदमी डर के कारण सब निश्चित कर लेता है। निश्चित कर लेता है तो सब बासा हो जाता है। केवल वे ही लोग नये हो सकते हैं जो अनिश्चित में, अनसर्टेन में, इनसिक्योरिटी में जीने की हिम्मत रखते हैं। जो यह कहते हैंः जो होगा उसे देखेंगे। हम कोई पक्का करके नहीं चलते। हम कुछ निश्चित करके नहीं चलते। हम कल के लिए कोई नियम नहीं बनाते हैं कि कल ये नियम पूरे करने पड़ेंगे। अगर आज के नियम कल पूरे होंगे तो कल आज की शक्ल में ढल जाएगा।
लेकिन हम सब भविष्य कोढालने में चिंतित हैं। हम न केवल भविष्य को, बल्कि मरने के बाद तक ढालने में चिंतित हैं। हम इसका भी पता लगाना चाहते हैं कि मरने के बाद मैं बचूंगा कि नहीं? मेरे नाम के सहित, मेरी उपाधि के सहित, मेरे पद के साथ मैं रहूंगा या नहीं? पत्नी अपने पति से यह भी पूछ लेना चाहती है कि अगले जन्म में भी तुम मिलोगे कि नहीं? तुम ही मिलोगे न! वह अगले जन्म तक को ऊब में ढालने की चेष्टा में लगी है। इस जिंदगी को भी उसने बोर्डम बना लिया है। अगली जिंदगी को भी बोर्डम बना लेना चाहती है। जिंदगी में नये का स्वागत नहीं है हमारा। पुराने का आग्रह है। तो सब पुराना हो जाएगा। तो मैं आपसे कहता हूं कि पुराने की अपेक्षा छोड़ दें, तो रोज नया दिन होगा वर्ष का। नये का स्वागत करें, नये का सम्मान करें, और नये को खोजें--कि नया क्या है? खोज पर बहुत कुछ निर्भर करता है कि हम क्या खोजने जाते हैं, वही खोज लेंगे। अगर एक आदमी गुलाब के पास कांटों को खोजने जाएगा तो कांटे खोज लेगा, कांटे वहां हैं। और अगर एक आदमी फूल खोजने जाएगा तो यह भी हो सकता है कि कांटों का उसे पता ही न चले, वह फूल खोज ले और वापस

लौट आए। फूल भी वहां हैं। लेकिन हम क्या खोजने जाते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है।
जिंदगी में सब है! वहां राख भी है पुराने की, वहां अंगार भी है नये का। वहां चीजें मर भी रही हैं, पुरानी हो रही हैं, वहां नये का जन्म भी हो रहा है। वहां वृद्ध भी हैं, वहां बच्चे भी हैं। वहां जन्म भी है, मृत्यु भी है। वहां कुछ विदा हो रहा है, कुछ आ रहा है। आप क्या खोजने गए हैं, इस पर निर्भर करता है। अगर आप मृत को खोजने गए, तो आप मरघट पर पहुंच जाएंगे। और तब आपको सब मुर्दे ही वहां दिखाई पड़ेंगे और सब लाशें और सब कब्रें दिखाई पड़ेंगी। और तब आप उन कब्रों और लाशों और मुर्दों के बीच कैसे जिंदा रह पाएंगे? आप मरने के पहले मुर्दा हो जाएंगे। जहां चारों तरफ मुर्दे घिर गए हों वहां आप मर जाएंगे।
लेकिन एक तरफ जीवन जन्म भी ले रहा है रोज, वहां आप खोजने नहीं गए हैं-- जहां सूरज की नई किरण फूटती है, कली फूटती है, नया-नया रोज कुछ हो रहा है। क्योंकि जो पुराना हो गया है वह हो कैसे सकता था अगर नया पैदा न होता? जो आज बूढ़ा हो गया है, वह बूढ़ा हो इसीलिए गया है कि कल वह बच्चा था। और जो फूल आज कुम्हला कर गिर गया है और बासा हो गया है, वह बासा इसीलिए हो गया है कि कल वह ताजा था। अब यह आपके ऊपर निर्भर है कि आप ताजी घटनाओं को खोजते हैं कि बासी घटनाओं को खोजते हैं। कौन आपसे कह रहा है कि गिरते फूलों को देखिए? उगते फूलों को भी देखा जा सकता है।
और जिस व्यक्ति को नये से संबंध जोड़ना हो उसे उगते फूलों को देखना चाहिए। उसे कांटे गिनना छोड़ देना चाहिए। उसे नये का स्वागत और सम्मान, नये की अपेक्षा में जीना चाहिए। उसे अनजान और अननोन के अपने भीतर प्रवेश के लिए ओपनिंग, खुला द्वार रखना चाहिए। तब प्रतिदिन नया है, प्रति संबंध नया है, प्रत्येक मित्र नया है, पत्नी नई है, पति नया है, बेटा नया है, बेटी नई है, तब सारी जिंदगी नई है। और नये के बीच जो जीता है उसके भीतर अगर नये का फूल खिल जाता हो तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि पुराने के बीच जो जीता है उसके भीतर सब सिकुड़ जाता है और मर जाता है। हम अपने चारों तरफ क्या इकट्ठा कर रहे हैं, इस पर निर्भर करेगा कि हमारे भीतर क्या घटित होगा। हमारे भीतर जो घटना घटेगी वह हमारे हाथ से ही इकट्ठी की हुई है।
तो एक तो रास्ता यह है जो चलता आया है कि वर्ष में एक दिन नया होता है
और तीन सौ चौंसठ दिन पुराने होते हैं। और मेरा अपना मानना है कि यह एक दिन झूठा होगा, धोखा होगा। जब तीन सौ चौंसठ दिन पुराने होते हैं तो एक दिन नया कैसे हो सकता है? इतनी पुरानों की भीड़ में नया हो नहीं सकता, सिर्फ नये का धोखा हो सकता है।
मैं आपसे यह कह रहा हूं कि तीन सौ पैंसठ दिन ही नये हो सकते हैं। प्रतिपल नया हो सकता है। नये की तैयारी और नये का सम्मान और नये के लिए मन का द्वार खुला होना चाहिए। और जो व्यक्ति एक बार नये के लिए अपने मन के द्वार को खोल लेता है, आज नहीं कल वह पाता है कि नये के पीछे परमात्मा प्रवेश कर गया। क्योंकि परमात्मा अगर कुछ है तो जो निरंतर नया है उसी का नाम है।
लेकिन हमारे ग्रंथ और हमारे गुरु और हमारे संन्यासी तो कहते हैंः परमात्मा उसका नाम है जो सबसे पुराना है। वह जो सबसे पहले हुआ वह! वह जो सनातन है! वह प्राचीन से प्राचीन, जब कुछ भी न था तब वह था। तो हमारे सब मंदिरों में मरे हुए की पूजा चल रही है। हमारी सब मस्जिदों में मरे हुए का आदर हो रहा है। हमारे सब ग्रंथ और गुरु प्राचीन और पुराने के सम्मान में लगे हैं। और जिंदगी रोज नई है। और जिंदगी रोज वहां पहुंच जाती है जहां कभी नहीं पहुंची थी। वहां रोज नये फूल खिलते हैं, और नये तारे निकलते हैं, और नये गीत पैदा होते हैं। वहां सब नया है। वहां पुराना कुछ होता ही नहीं। अगर परमात्मा भी है तो वहीं है, रोज नये होते में। परमात्मा वह है, जो सदा से है वह नहीं, परमात्मा वह है जो प्रतिपल होता है, और प्रतिपल होता ही चला जाता है।
जीवन वही है जो निरंतर होता चला जा रहा है। जीवन एक धारा है, एक बहाव, रोज नई होती है। अगर हम पुराने पड़ गए तो पीछे पड़ जाते हैं। अगर हम भी नये हुए तो हम भी जीवन के साथ बह पाते हैं। ऐसा बह कर देखें, तोशायद सभी दिन नये

हो जाएं, सभी दिन खुशी के हो जाएं, और जो भी मिले उससे ही आनंद झरने लगे। क्योंकि हमारे पास वह तरकीब, वह टेक्नीक, वह शिल्प, वह कला आ गई जिससे हम हर जगह नये को खोज ही लेंगे।
मैंने सुना है, एक ऐसा विचारक जो प्रतिपल नये से और नये की आशा से भरा था, और जो प्रतिपल खुशी को खोजने के लिए आतुर था, और जो हर दुख में भी, हर अंधेरी से अंधेरी बदली में भी चमकती हुई बिजली की किरण को खोज लेता था, वह न्यूयार्क के एक सौवीं मंजिल के ऊपर रहता था। वह एक बार सौवीं मंजिल से नीचे गिर पड़ा। कहानी कहां तक सच है, मुझे पता नहीं। लेकिन अगर ऐसा कोई आदमी होगा तो सच होनी ही चाहिए। वह सौवीं मंजिल से नीचे गिर पड़ा। बीच में लोगों ने खिड़कियों से झांक कर उससे पूछा कि क्या हाल है? यह जानने के लिए कि यह आदमी आज इस घड़ी में भी सुख खोज पाता है या नहीं? उस आदमी ने चिल्ला कर कहा कि अब तक सब ठीक है।
वह जमीन की तरफ गिरा जा रहा है, प्रतिपल गिरा जा रहा है, पर उस आदमी ने
हर खिड़की पर चिल्ला कर कहा, अब तक सब ठीक है। यानी अब तक कुछ भी गड़बड़ नहीं हुई है। ऐसा आदमी आने वाली मौत को नहीं देख रहा है, गिर जाने वाली घटना को भी नहीं देख रहा है, अभी इस क्षण में जो है वह देख रहा है। वह कह रहा है, अभी सब ठीक है।
अगर ऐसा कोई चित्त हो, तोशायद इसके लिए मौत भी फूल बन जाएगी। शायद इसके लिए मौत भी वह उपद्रव नहीं ला सकती जो हमें ले आती है। हम तो मरने के बहुत पहले मर जाते हैं, क्योंकि बासे और पुराने हो जाते हैं। यह आदमी हो सकता है मर कर भी अगर इससे हम पूछ सकें तो कह सके कि सब ठीक है, अभी सब ठीक है।
एक बार जीवन में नये का बोध शुरू हो जाए तो सब ठीक हो जाता है। और पुराने का बोध गहरा हो जाए तो सब गलत हो जाता है।

मुझसे कहते हैं मित्र कि नये वर्ष के लिए कुछ कहूं।
नये वर्ष के लिए मैं कुछ न कहूंगा। क्योंकि आप ही तो नया वर्ष फिर जीएंगे, जिन्होंने पिछला वर्ष पुराना कर दिया; आप नये वर्ष को भी पुराना करके ही रहेंगे। आपने न मालूम कितने वर्ष पुराने कर दिए! आप पुराना करने में इतने कुशल हैं कि नया वर्ष बच पाएगा, इसकी उम्मीद बहुत कम है। आप इसको भी पुराना कर ही देंगे। और एक वर्ष बाद फिर इकट्ठे होंगे और फिर सोचेंगे, नया वर्ष। ऐसा आप कितनी बार नहीं सोच चुके हैं! लेकिन नया आया नहीं! क्योंकि आपका ढंग पुराना पैदा करने का है।
नये वर्ष की फिकर न करें। नये का कैसे जन्म हो सकता है, इस दिशा में थोड़ी सी बातें सोचें और थोड़े प्रयोग करें। तो तीन बातें मैंने आपसे कहीं। एक तो पुराने को मत खोजें। खोजेंगे तो वह मिल जाएगा, क्योंकि वह है। हर अंगारे में दोनों बातें हैं। वह भी है जो राख हो गया अंगारा, बुझ गया जो; जो अंगारा बुझ चुका है, जो हिस्सा राख हो गया, वह भी है। और वह अंगारा भी अभी भीतर है जो जल रहा है, जिंदा है; अभी है, अभी बुझ नहीं गया। अगर राख खोजेंगे, राख मिल जाएगी। जिंदगी बड़ी अदभुत है, उसमें सब खोजने वालों को सब मिल जाता है। वह आदमी जो खोजने जाता है वह मिल ही जाता है। और जो आपको मिल जाता हो, ध्यान से समझ लेना कि आपने खोजा था इसीलिए मिल गया है। और कोई कारण नहीं है उसके मिल जाने का। नया अंगारा भी है, वह भी खोजा जा सकता है।
तो पहली बात, पुराने को मत खोजना। कल सुबह से उठ कर थोड़ा एक प्रयोग करके देखें कि पुराने को हम न खोजें। कल जरा चौंक कर अपनी पत्नी को देखें जिसे तीस वर्ष से आप देख रहे हैं। शायद आपने तीस वर्ष देखा ही नहीं फिर। हो सकता है पहले दिन जब आप लाए थे तो देख लिया होगा, फिर बात समाप्त हो गई। फिर आपने देखा नहीं। और अगर अभी मैं आपसे कहूं कि आंख बंद करके जरा पांच मिनट अपनी पत्नी का चित्र बनाइए मन में, तो आप अचानक पाएंगे कि चित्र डांवाडोल हो जाता है, बनता नहीं। क्योंकि कभी उसकी रेखा भी तो अंकित नहीं हो पाई। हालांकि हम चिल्लाते रहते हैं कि इतना प्रेम करते हैं, इतना प्रेम करते हैं। वह सब चिल्लाना भी इसीलिए है कि प्रेम नहीं करते, शोरगुल मचा कर आभास पैदा करते रहते हैं। वह आभास हम पैदा करते रहे हैं।

तो कल सुबह उठ कर नये की थोड़ी खोज करिए। नया सब तरफ है, रोज है, प्रतिदिन है। और नये का सम्मान करिए, पुराने की अपेक्षा मत करिए। हम अपेक्षा करते हैं पुराने की। हम चाहते हैं कि जो कल हुआ वह आज भी हो। तो फिर आज पुराना हो जाएगा। जो कभी नहीं हुआ वह आज हो, इसके लिए हमारा खुला मन होना चाहिए कि जो कभी नहीं हुआ वह आज हो। हो सकता है वह दुख में ले जाए। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, पुराने सुखों से नये दुख भी बेहतर होते हैं, क्योंकि नये होते हैं। उनमें भी एक जिंदगी और एक रस होता है। पुराना सुख भी बोथला हो जाता है, उसमें भी कोई रस नहीं रह जाता। इसलिए कई बार ऐसा होता है कि पुराने सुखों से घिरा आदमी नये दुख अपने हाथ से ईजाद करता है, खोजता है। वह खोज सिर्फ इसलिए है कि अब नया सुख नहीं मिलता तो नया दुख ही मिल जाए।
आदमी शराब पी रहा है, वेश्या के घर जा रहा है। यह नये दुख खोज रहा है। नया सुख तो मिलता नहीं, तो नया दुख ही सही। कुछ तो नया हो जाए। नये की उतनी तीव्र प्राणों की आकांक्षा है। लेकिन हम पुराने की अपेक्षा वाले लोग हैं। इसलिए दूसरा सूत्र आपसे कहता हूंः पुराने की अपेक्षा न करें। और कल सुबह अगर पत्नी उठ कर छोड़ कर घर जाने लगे, तो एक बार भी यह मत कहें कि अरे तूने तो वायदा किया था। कौन किसके लिए वायदा कर सकता है? तब उसे चुपचाप घर से विदा कर आएं। जिस प्रेम से उसे ले आए थे, उसी प्रेम से विदा कर आएं। यह विदा भी स्वीकार कर लें, नये की सदा संभावना है। पत्नी चौबीस घंटे पूरी जिंदगी साथ रहेगी, यह जरूरी क्या है? रास्ते मिलते हैं और अलग हो जाते हैं। मिलते वक्त और अलग होते वक्त इतना परेशान होने की क्या बात है? लेकिन नहीं, बड़ा मुश्किल है विदा होना। क्योंकि हम कहेंगे कि जो पुराना था उसे थिर रखना है। सब पुराने को थिर रखना है।
नया जब आए तब उसे स्वीकार करें, पुराने की आकांक्षा न करें।
और तीसरी बातः कोई और आपके लिए नया नहीं कर सकेगा; आपको ही करना पड़ेगा। और ऐसा नहीं है कि आप पूरे दिन को नया कर लेंगे या पूरे वर्ष को नया कर लेंगे, ऐसा नहीं है। एक-एक कण, एक-एक क्षण को नया करेंगे तो अंततः पूरा दिन, पूरा वर्ष भी नया हो जाएगा। एक-एक क्षण हमारे हाथ से निकला जा रहा है-- जैसे रेत का दाना गिरता है रेत की घड़ी से, ऐसा एक-एक क्षण हमारे हाथ से गुजरा जाता है। एक क्षण को नया करने की फिकर करें, अगले क्षण की फिकर मत करें। अगला क्षण जब आएगा तब उसे नया कर लेंगे।
और नये के इस मंदिर में थोड़ा प्रवेश, उस परमात्मा के निकट पहुंचा देता
है जो जीवन का मूल स्रोत है, मूल धारा है। और वहां जो एक बार नहा लेता है, उस मूल स्रोत में, उसके लिए इस जगत में फिर पुराना रह ही नहीं जाता। फिर कुछ भी पुराना नहीं है। फिर पुराना है ही नहीं। फिर उसके लिए मृत्यु जैसी चीज ही नहीं है, कुछ मरता ही नहीं। फिर उसके लिए बूढ़े जैसा कोई मामला ही नहीं, कुछ वृद्ध ही नहीं होता। तब उसे वृद्धावस्था भी एक नई अवस्था है जो जवानी के बाद आती है। तब उसके लिए मृत्यु भी एक नया जन्म है जो जन्म के बाद होता है। तब उसके लिए सब नये के द्वार खुलते चले जाते हैं। अंतहीन नये के द्वार हैं।
लेकिन हमने सब पुराना कर डाला है, उसमें नये के झूठे स्तंभ खड़े रखे हैं, लीप-पोत कर खड़े कर रखे हैं--कि ये नये दिन, यह नया वर्ष। यह सब बिल्कुल धोखा है जो हम खड़ा किए हैं। लेकिन सुखद है, क्योंकि इतने पुराने कोझेलने में सहयोगी हो जाता है। और ऐसा लगता है कि चलो अब कुछ नया आया, अब कुछ नया होगा। वह कभी नहीं होता।
अब कितने सब मित्र नये वर्ष पर एक-दूसरे कोशुभकामनाएं देंगे। इन मित्रों को पिछले वर्ष भी उन्होंने दी थीं। और फिर हम शुभकामनाओं को बड़े सरल मन से ग्रहण करेंगे और सरल मन से उनका प्रदान भी करेंगे। और जानते हुए कि यह सब व्यर्थ है, इसका कोई मतलब नहीं है।
तो मैं तो कोई शुभकामना नहीं करूंगा नये वर्ष के लिए आपको। क्योंकि मैं एक ही बात कह सकता हूं कि आपको याद दिलाऊं कि आपने इतने वर्ष पुराने कर डाले, तो नये वर्ष पर आप ख्याल रखना कि अब फिर वही न करना आप जो अब तक किया है। इसको फिर वापस पुराना मत कर डालना, इसे नये करने की कोशिश करना। यह नया

हो सकता है। और अगर यह नया हो गया तो प्रतिदिन नया हो जाता है, प्रतिदिन नये वर्ष का आरंभ है। पुराना टिकता ही नहीं, बचता ही नहीं, सब बह जाता है। लेकिन हम ऐसा पकड़ते हैं पुराने को कि नये को होने के लिए अवकाश नहीं, स्पेस नहीं रह जाता। अगर हम अपने मन की खोजबीन करें, तो सब तरफ हम पुराने को इतने जोर से पकड़े हुए हैं कि नये के लिए जगह कहां है? नया आए कहां से आपके घर में? आपके चित्त में नये की किरण प्रवेश कहां से करे? आप तो पुराने को इतने जोर से पकड़े हुए हैं। उसे छोड़ते ही नहीं, रत्ती भर जगह नहीं छोड़ते उसमें। उधर स्पेस की जरूरत है, वहां जगह की जरूरत है, वहां से नया आ सकता है।
मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और आपके भीतर नया पैदा हो सके, ऐसी परमात्मा से प्रार्थना करता हूं।

जीवन रहस्य
नौवां प्रवचन

मैं कोई विचारक नहीं हूं

मेरे प्रिय आत्मन्!
ऐसा लगता है कि कहीं कुछ भूल हो गई है। मैं कोई विचारक नहीं हूं। और ऐसा भी नहीं मैं मानता हूं कि विचारकों से जगत का कोई लाभ हुआ है। मनुष्य के जीवन में जितने झगड़े और उपद्रव हुए हैं, विचारक उसका कारण है। और मनुष्य के जीवन में जीवन को जीने की जो क्षमता कम हुई है, उसका कारण भी विचारक है। न मालूम इतिहास के किस दुर्भाग्य क्षण में आदमी को यह ख्याल आ गया कि विचार के द्वारा जीवन जीया जा सकता है। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह विचार से उपलब्ध नहीं होता--न सौंदर्य, न सत्य, न प्रेम। विचार एक धोखा है।
मैंने सुना है, रवींद्रनाथ एक रात एक बजरे में यात्रा कर रहे थे। पूर्णिमा की रात्रि थी और पूरा चांद आकाश में था। अपनी नाव के छोटे से झोपड़े में, एक छोटी सी मोमबत्ती को जला कर वे एक किताब पढ़ रहे थे। वह किताब ऐस्थेटिक्स पर थी, सौंदर्यशास्त्र पर थी। आधी रात तक वे किताब पढ़ते रहे-- सौंदर्य क्या है? और फिर ऊब गए। और किताब को बंद कर दिया और मोमबत्ती को फूंक मार कर बुझा दिया। और तभी अचानक जैसे एक क्रांति घट गई--द्वार के, खिड़कियों के, बजरे के रंध्र-रंध्र से चांद की किरणें भीतर आ गईं! मोमबत्ती के धीमे से प्रकाश ने चांद को बाहर रोक रखा था।
रवींद्रनाथ नाचने लगे। और उन्होंने दूसरे दिन सुबह कहा, दूसरे दिन सुबह उन्होंने कहा, कैसा अभागा हूं मैं, सौंदर्य बाहर मौजूद था, सौंदर्य पूरे क्षण बाहर प्रतीक्षा करता था और मैं सौंदर्य पर एक किताब पढ़ता रहा! और जब मैंने मोमबत्ती बुझा दी और किताब बंद कर दी तो सौंदर्य मेरे कमरे के भीतर आकर नाचने लगा। वे बाहर आ गए, उन्होंने चांद को देखा, झील को देखा, उस रात के सन्नाटे को देखा, सौंदर्य वहां मौजूद था। लेकिन किताब में सिर्फ विचार मौजूद थे। किताब में सिर्फ विचार ही हो सकते हैं, सौंदर्य नहीं हो सकता।
विचारक के पास भी सिर्फ विचार ही होते हैं, सत्य नहीं होता, न सौंदर्य होता, न प्रेम होता। और विचार, विचार सिवाय शब्दों के जोड़ के और कुछ भी नहीं हैं। सब विचार बासे हैं, सब विचार उधार हैं, कोई विचार मौलिक नहीं होता। कोई विचार मौलिक हो भी नहीं सकता। मौलिक होती है अनुभूति और अनुभूति होती है निर्विचार।
लेकिन बड़ी पुरानी भूल है, उसी भूल में मुझे भी बुला लिया है। वह भूल यह है, हम महावीर को भी विचारक कहते हैं। महावीर विचारक नहीं हैं। महावीर जो कुछ भी हैं वह विचार को छोड़ कर हैं। बुद्ध को भी विचारक कहते हैं। बुद्ध भी विचारक नहीं हैं। बुद्ध जो कुछ भी हैं विचार के पार जाकर हैं। जिनको हम विचारक कहते हैं उनमें से बहुत से लोग विचारक नहीं हैं। जिन्होंने इस जगत को कुछ दिया है, उन्होंने विचार से नहीं दिया; विचार के पार से लाकर दिया है। विचार वाहन हो सकता है अभिव्यक्ति का, उपलब्धि का मार्ग नहीं है। लेकिन कुछ लोग सिर्फ विचारक हैं। उनके पास सिवाय शब्दों के संग्रह के कुछ भी नहीं है। और उन शब्दों के संग्रह को उन्होंने जीवन समझा हुआ है। इसलिए विचारक मरने के बहुत पहले मर जाता है, उसके पास शब्दों की लाशों के सिवाय कोई जीवन नहीं होता।
मैंने सुना है, एक फकीर था। और फकीर बहुत अदभुत आदमी था। उसने विचारकों पर बड़ा व्यंग्य किया है। लेकिन विचारक इतने कम समझदार होते हैं कि विचार के ऊपर किए गए व्यंग्य भी उनकी पकड़ में नहीं आते। वह फकीर एक दिन घर लौटता था, और किसी मित्र ने उसे कुछ मांस भेंट कर दिया। और साथ में एक किताब भी दे दी। किताब में मांस को बनाने की विधि लिखी हुई थी। वह एक बगल में किताब को दबा कर और हाथ में मांस को लेकर घर की तरफ भागा। एक चील ने झपट्टा मारा, वह उसके मांस को उठा कर ले गई। उस फकीर ने चील से कहा कि मूरख है तू! विधि बनाने की तो मेरे पास है, मांस का क्या करेगी?

वह घर पहुंचा, उसने अपनी पत्नी को कहा, देखती हो, एक मूरख चील मेरे मांस को छीन कर ले गई है और किताब मेरे पास है जिसमें विधि लिखी है बनाने की, चील मांस का करेगी क्या?
उसकी पत्नी ने कहा कि तुम विचारक मालूम होते हो। चील को किताब से मतलब नहीं है, चील को मांस बनाने की विधि से मतलब नहीं है। तुम किताब बचा लाए और मांस छोड़ आए, अच्छा होता कि किताब चील को दे आते और मांस घर ले आते।
लेकिन विचारक हजारों साल से किताब बचाता चला आ रहा है और जिंदगी को छोड़ता चला जा रहा है। इसलिए दुनिया में जितना विचार बढ़ गया है उतना जीवन कम और क्षीण हो गया है। दुनिया में जितना विचार रोज बढ़ता जा रहा है, आदमी उतना उदास, परेशान और हैरान होता चला जा रहा है। क्योंकि जिंदगी का सारा अर्थ खोता चला जा रहा है। जिंदगी का जो रस है, जिंदगी का जो भी अर्थ है, वह जीने से उपलब्ध होता है, विचार करने से नहीं। और यह सब्स्टीट्यूट बन जाता है कि हम जीने को छोड़ देते हैं और विचार करने को पकड़ लेते हैं।
मैं एक फूल के पास जाऊं और बैठ कर फूल के संबंध में सोचने लगूं, तो मैं
एक विचारक हूं। लेकिन फूल के संबंध में जो बैठ कर सोच रहा है वह फूल को जानने से वंचित रह जाएगा। विचार की एक दीवाल खड़ी हो जाएगी। फूल उस पार होगा, मैं इस पार होऊंगा। सब विचारकों के आसपास विचारों की एक दीवाल बन जाती है--वाद की, शास्त्र की, आइडियालॉजी की। और वे अपनी ही दीवाल में बंद हो जाते हैं, बाहर की दुनिया से उनका जीवन से सारा संबंध टूट जाता है। वह जो फूल है वह बाहर पुकारता रहेगा कि आओ, लेकिन विचारक विचार करता रहेगा। अगर फूल को जानना हो तो फूल के पास बैठ कर सोचने की जरूरत नहीं है। फूल
के पास बैठ कर सोचना छोड़ देने की जरूरत है; ताकि फूल भीतर प्रवेश कर जाए। मेरी आत्मा और फूल की आत्मा किसी जगह पर मिल सकें। विचार कभी भी नहीं मिलने देता है। और इसलिए दुनिया में जितना विचार बढ़ता है उतना आदमी-आदमी अलग होते चले जाते हैं। दुनिया में जितने झगड़े हैं वे विचार के झगड़े हैं, क्योंकि सब दीवालें विचारों की दीवालें हैं।
एक आदमी कहता है, मैं मुसलमान हूं। एक आदमी कहता है, मैं हिंदू हूं। एक हिंदू और एक मुसलमान के बीच फर्क क्या है? खून का फर्क है? हड्डी का फर्क है? आत्मा का फर्क है? एक हिंदू और एक मुसलमान के बीच सिर्फ विचार का फर्क है। मुसलमान ने कुछ विचार पकड़ लिया है, हिंदू ने कुछ विचार पकड़ लिया है। और विचार की दीवाल है। और तब, तब विचार इतना महत्वपूर्ण हो सकता है कि हिंदू मुसलमान की हत्या कर दें, और मुसलमान हिंदू की हत्या कर दें। विचार इतना महत्वपूर्ण हो सकता है कि हम जीवन की हत्या कर दें और किताब को बचा लें, विचार को बचा लें। यही होता जा रहा है। जीवन रोज नष्ट हो रहा है और किताबें बचती चली जाती हैं। नये विचार नये झगड़े ले आते हैं। कम्युनिज्म नया विचार है। उसने नये झगड़े और नई दीवालें खड़ी कर दी हैं।
क्या यह नहीं हो सकता कि आदमी अस्तित्व को जीए, विचारे न?
यह हो सकता है। समस्त जीवन की गहराइयां अस्तित्व में उतरने से उपलब्ध होती हैं। और जिसे अस्तित्व में उतरना है उसे विचार को छोड़ कर उतरना पड़ता है।
मैंने सुना है, एक समुद्र के किनारे बहुत बड़ा मेला भरा हुआ था और तट पर बहुत लोग इकट्ठे थे। वे तट पर बैठ कर सोचने लगे कि समुद्र की गहराई कितनी है? वे बड़े विचारक लोग थे। उन्होंने तट के ऊपर बैठ कर विचार करना शुरू कर दिया, समुद्र की गहराई कितनी है?
लेकिन तट के ऊपर बैठ कर कोई समुद्र की गहराई नहीं जान सकता। तट के ऊपर बैठ कर समुद्र की गहराई को जानने का कोई उपाय नहीं है। समुद्र की गहराई में ही जाना पड़ेगा। लेकिन विचार करने वाले सदा तट पर बैठे रह जाते हैं। वे तट पर बैठ कर बहुत विचार करते रहे, विवाद हो गया। समुद्र की गहराई का तो कोई पता न चला, लेकिन विवाद से ही पार्टियां और कई संप्रदाय और कई धर्म हो गए। किसी ने कहा, इतनी गहराई है। और किसी ने कहा, हमारी किताब में इतनी लिखी है। वे अपनी किताबें ले आए और बड़ा विवाद शुरू हो गया।
मैंने सुना है, उस मेले में दो नमक के पुतले भी भूल से पहुंच गए थे। उन्होंने यह सारा विवाद सुना, उन्होंने कहा कि पागल हो गए हो! अगर समुद्र की गहराई जाननी है तो विचार करने की क्या जरूरत है? समुद्र में कूद जाओ!

लेकिन उन लोगों ने कहा, जब तक गहराई का पता न चले, हम कूदें कैसे? गहराई का पता चल जाए तब हम कूदें। गहराई का पक्का पता हो जाए तभी हम कूदेंगे। विचारक कहता है, जब ईश्वर का मैं पक्का पता लगा लूंगा विचार करके तब खोज पर निकलूंगा। विचारक कहता है, मैं प्रेम करने तब जाऊंगा जब मैं प्रेम की पूरी फिलासफी समझ लूं। विचारक कहता है, मैं जीवन में तब उतरूंगा जब मैं जान लूं कि जीवन क्या है। वह किनारे पर बैठा रह जाता है।
और ध्यान रहे, उस नमक के पुतले ने कहा कि तो फिर ठहरो, मैं कूद जाता हूं, मैं पता लगा आता हूं। वह नमक का पुतला कूद गया। लेकिन नमक का पुतला समुद्र में कूदे... गहराई में तो जाने लगा, लेकिन जितना गहराई में जाने लगा उतना ही पिघलने लगा। गहराई में पहुंच गया, ठीक समुद्र के नीचे पहुंच गया, उसने गहराई जान ली, लेकिन जब तक उसने गहराई जानी तब तक वह खो गया, तब तक वह लौट कर बताने को नहीं था।
यह बड़ी अदभुत बात है। इस जिंदगी का सबसे बड़ा पैराडॉक्स यही है कि जो विचार करते रहते हैं वे बताने में समर्थ हैं और जो अस्तित्व की गहराई में उतरते हैं वे खो जाते हैं, वे बताने में असमर्थ हो जाते हैं। सत्य को जो जानते हैं वे बता नहीं पाते और जो बिल्कुल नहीं जानते हैं वे बताए चले जाते हैं। जो सत्य को बिल्कुल नहीं जानते वे उस पर विचार करते रहते हैं; जो सत्य को जान लेते हैं वे खो जाते हैं।
मेरी अपनी समझ में, विचारक का अहंकार मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा अहंकार है। कुछ लोग धन इकट्ठा कर लेते हैं, कुछ लोग विचार इकट्ठे कर लेते हैं। धन को इकट्ठा करने वाले को हम कहते हैं कि क्या संग्रह में लगे हुए हो! और विचार को इकट्ठा करने वाले को? विचार को इकट्ठा करने वाले को हम, विचार को इकट्ठा करने वाले को हम उस तरह से नहीं कहते कि क्या विचार के संग्रह में लगे हो? क्या होगा विचार के संग्रह कर लेने से? धन के संग्रह से कुछ नहीं होता, विचार के संग्रह से भी कुछ नहीं होता। लेकिन सब संग्रह अहंकार को मजबूत कर जाते हैं।
धन हो मेरे पास तो मुझमें एक अकड़ आ जाती है कि मेरे पास धन है। और विचार है मेरे पास तो भी मुझे एक अकड़ आ जाती है कि मेरे पास विचार है। और ज्ञान, पांडित्य और विचार की जो अकड़ है उससे बड़ी अकड़ और कोई भी नहीं हो सकती। वह जो अहंकार है उससे बड़ा अहंकार और कोई भी नहीं हो सकता। और ध्यान रहे, जितना बड़ा अहंकार है उतना ही गहरे में उतरने की क्षमता कम हो जाती है। क्योंकि गहरे में उतरने पर वह नमक का पुतला पिघला, ऐसे ही अहंकार भी पिघल जाता है। जिसे गहरे जाना है उसे अहंकार छोड़ कर जाना होगा। और जिसे अहंकार छोड़ना है उसे धन ही नहीं छोड़ना पड़ता, उसे विचार भी छोड़ना पड़ता है।
विचार की पर्त हमारी चेतना पर ऐसे ही है... अभी मैं एक गांव में ठहरा हुआ था। उस गांव की नदी को मैं देखने गया। वह सारी नदी काई से ढंक गई थी। पत्ते ही पत्ते और काई ही काई उस पूरी नदी पर छा गई थी। एक पत्ते को मैंने हटाया और नदी झांकने लगी। जो मित्र मुझे ले गए थे उन्होंने कहा, सारी नदी पत्तों से ढंक गई है। तो मैंने कहा, आदमी की भी सारी आत्मा विचार के पत्तों और काई से ढंक गई है। थोड़े विचार को हटाओ तो भीतर से आत्मा की नदी झांकनी शुरू हो जाती है।
विचारक पत्तों से ढंका हुआ आदमी है। और विचार सब उधार हैं, बाहर से आए हुए हैं। ज्ञान भीतर से आता है और विचार बाहर से आते हैं। इसलिए विचारक को ज्ञानी समझ लेने की भूल में नहीं पड़ जाना चाहिए। विचार सदा बाहर से आते हैं--शास्त्रों से, शिक्षाओं से, सूचनाओं से; और ज्ञान सदा भीतर से आता है। और जिसे ज्ञान लाना हो, उसे विचार बाहर से लाने की यात्रा बंद करनी पड़ती है।
एक छोटे से उदाहरण से समझाने की कोशिश करूं।
मैंने सुना है कि एक आदमी ने घर में एक कुआं खोदा और एक आदमी ने घर में
एक हौज बनाई। अब हौज और कुआं बनाने के ढंग बिल्कुल अलग होते हैं, हालांकि दोनों में पानी दिखाई पड़ता है। और जब हौज बन गई, कुआं बन गया, तो दोनों में पानी था--कुएं में भी पानी था, हौज में भी पानी था। लेकिन हौज में पानी उधार था, वह कहीं से मांगा गया था, वह कहीं से लाया गया था। कुएं के पास अपना पानी था, वह कहीं से मांगा नहीं गया था, वह कहीं से लाया नहीं गया था। हौज

भर गई। लेकिन हौज और कुएं के बनाने का ढंग भी अलग है। कुएं को खोदना पड़ता है, कुएं की मिट्टी-पत्थर को निकाल कर बाहर फेंक देना पड़ता है। और अगर हौज बनानी हो तो मिट्टी-पत्थर खरीद कर लाने पड़ते हैं, दीवाल बनानी पड़ती है और हौज बनानी पड़ती है। और एक बड़े चमत्कार की बात, हौज बन जाए तो भी खाली होती है। कुआं बन जाए तो पानी से भर जाता है। हौज के पास दूसरे का पानी होता है। जिसको हम विचारक कहते हैं उसके पास दूसरे का पानी होता है। उसके पास महावीर का पानी होगा, बुद्ध का पानी होगा, क्राइस्ट का पानी होगा, कृष्ण का पानी होगा, लेकिन उसके पास अपना पानी नहीं होता। उसके पास कुआं नहीं होता। और ध्यान रहे, जब कुआं बनता है तो कुआं बनने का एक नियम है कि खाली होना पड़ता है। जितना कुआं खाली हो जाता है उतना भर जाता है। जितना कुआं अपने भीतर से चीजों को बाहर फेंक देता है उतने जलस्रोत उपलब्ध हो जाते हैं। विचारक इकट्ठा करता है हौज की तरह, इकट्ठा करता जाता है। कभी हौज के पास जाकर कान लगा कर सुनना, तो हौज हमेशा कहती है, और लाओ! और लाओ! अगर हौज से पानी निकालो तो हौज कहती है, मत निकालो, कम हो जाएगा। कभी कुएं के पास कान लगा कर सुनना, कुआं कहता है, निकाल लो और निकाल लो। चूंकि जितना निकल जाता है उतना नया भीतर से और आ जाता है।
विचारक इकट्ठा करता है, विचार सिर्फ इकट्ठा करना है। और इसलिए विचारक बाहर से आई हुई पर्त में इतना खो जाता है कि कभी अपने को नहीं जान पाता। जिन्होंने अपने को जाना है, जिन्होंने सत्य को जाना है, उन्होंने निर्विचार होकर जाना है।
महावीर विचारक नहीं हैं, बुद्ध विचारक नहीं हैं, कृष्ण विचारक नहीं हैं। और दुनिया में ऐसे लोगों की जरूरत है जो विचार के पार होकर देख सकें।
इसलिए हम उनको द्रष्टा कहते हैं। इसलिए हम उस प्रक्रिया को जिससे ज्ञान उपलब्ध होता है दर्शन कहते हैं, उसको विचारणा नहीं कहते।
लेकिन अभी बड़ी भूल हुई है। भूल यह हो गई है कि हम पश्चिम से जो फिलासफी
आई है, हम फिलासफी को भी अपने मुल्क में दर्शन से अनुवाद करने लगे हैं।
दर्शन और फिलासफी पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। दर्शन का मतलब हैः देखना। और फिलासफी का अर्थ हैः सोच-विचार। देखने और सोचने-विचारने में दुश्मनी है। जो आदमी देख सकता है, सोचता-विचारता नहीं। जो नहीं देख सकता वह सोचता- विचारता है।
मैं अगर अंधा हूं और मुझे इस कमरे के बाहर जाना हो, तो मैं सोचूंगा कि रास्ता कहां है? पूछूंगाः रास्ता कहां है? पूछूंगाः द्वार कहां है? कैसे जाऊं? कैसे निकलूं? और अगर मेरे पास आंखें हैं, तो मैं सोचूंगा नहीं, पूछूंगा नहीं; उठूंगा और निकल जाऊंगा।
आंख चाहिए। दर्शन चाहिए; विचार नहीं। दृष्टि चाहिए। और दृष्टि सदा अपनी होती है। विचार सदा दूसरे के होते हैं। दूसरे की दृष्टि आपके पास नहीं होती। दूसरे की आंख से आप नहीं देख सकते। लेकिन दूसरे के विचार का संग्रह आप कर सकते हैं। इसलिए विचारक, मेरी दृष्टि में, सदा बारोड, सदा उधार आदमी होता है। उसके पास कुछ भी नहीं होता। विचारक से ज्यादा दरिद्र आदमी, दीन आदमी खोजना बहुत मुश्किल है।
लेकिन हमें लगता है कि विचारक के पास बहुत कुछ है, क्योंकि जो उसने इकट्ठा किया है वह हमारी आंखों को चौंकाता है। जो उसके पास हमें दिखाई पड़ता है उससे लगता है कि इसके पास बहुत कुछ है। जो उससे हम सुनते हैं, जो वह लिखता है, उससे हमें लगता है कि इसके पास बहुत कुछ है। और हम भी तब विचार इकट्ठा करने में लग जाते हैं। हमारी सारी शिक्षा विचार इकट्ठा करवाने की शिक्षा है। इसलिए हमारी शिक्षा ज्ञानी को पैदा नहीं कर पाती, क्योंकि वह दृष्टि और दर्शन पैदा करने के लिए कोई प्रयोग नहीं करती है।
इधर मैं एक छोटी सी बात अंत में कहना चाहूं और वह यह कि मनुष्य की चेतना में दो क्षमताएं हैं--एक विचार की और एक निर्विचार की; एक सोचने की और एक देखने की। सोचने में जो उलझ जाएगा वह देखने को भूल जाएगा। और जो देख लेगा उसे सोचने की फिर कोई जरूरत नहीं रह जाती, उसके पास आंखें उपलब्ध हो जाती हैं।
बुद्ध के पास एक बार एक आदमी को कुछ लोग ले आए थे। वह आदमी अंधा था, उसके पास आंखें नहीं थीं। उसके मित्रों ने बुद्ध को आकर कहा कि यह आदमी

अंधा है और हमारा मित्र है। हम इसे समझाते हैं कि प्रकाश है, हम समझाते हैं कि सूरज है, लेकिन यह मानने को तैयार नहीं होता। यह कहता है कि कैसे हो सकता है? हम इसे कहते हैं कि है, तर्क देते हैं। तो यह कहता है कि हम तुम्हारे प्रकाश को छूकर देखना चाहते हैं। जरा प्रकाश को ले आओ, हम छूकर देख लें। प्रकाश तो हम ले आते हैं, लेकिन यह छू नहीं पाता। यह कहता है, तुम अपने प्रकाश को थोड़ा बजाओ तो हम सुन लें। लेकिन हम प्रकाश को कैसे बजाएं? यह कहता है, प्रकाश को मेरे मुंह में दे दो, मैं थोड़ा चख लूं। लेकिन हम प्रकाश का स्वाद कैसे दिलवाएं? हमने सोचा कि एक बड़ा विचारक गांव में आया है, बुद्ध आए हैं, तो हम जाएं।
बुद्ध ने कहा, तुम गलत आदमी के पास आ गए, मैं कोई विचारक नहीं हूं। और
इस आदमी को तुम परेशान मत करो। अच्छा है कि यह नहीं मानता; क्योंकि जिसके पास आंख नहीं है वह माने क्यों? और अगर मान लेगा तो विचार में पड़ जाएगा। सब मान्यताएं विचार में ले जाती हैं। अगर एक अंधा आदमी मान ले कि प्रकाश है, तो प्रकाश का होना उसके लिए सिर्फ एक विचार होगा, अनुभव नहीं हो सकता। बुद्ध ने कहा, इसे तुम विचारकों के पास मत ले जाओ। अच्छा होगा किसी वैद्य के पास ले जाओ। विचारक क्या करेगा? विचार दे देगा। वैद्य के पास ले जाओ जो इसकी आंख की चिकित्सा कर सके।
वे उसे वैद्य के पास ले गए। उस आदमी की आंख पर जाली थी। कुछ दिन के दवा
के प्रयोग से वह जाली कट गई। और उस आदमी ने प्रकाश देखा और वह नाचने लगा। और वह खोजता हुआ बुद्ध के पास गया, उनके चरण पकड़ लिए। और उस आदमी ने कहा कि आपने बड़ी कृपा की। अन्यथा वे सब विचारक मुझे मिल कर मार डालते। वे मुझे समझाते थे कि है और मुझे दिखाई नहीं पड़ता था। अब मुझे दिखाई पड़ रहा है। और मैं जानता हूं कि जो देखने से जाना जा सकता है वह समझाने से नहीं जाना जा सकता। मैं कैसे समझता कि प्रकाश है? और अगर समझ लेता तो भी उस समझ का क्या मूल्य था?
नहीं, विचार की इतनी जरूरत नहीं है जितनी दृष्टि और दर्शन की जरूरत है। और दृष्टि और दर्शन चाहिए हो तो चित्त ऐसा होना चाहिए जो विचारों को अलग करने में समर्थ हो जाए। थोड़ी देर को, थोड़े क्षणों को ही सही, अगर चौबीस घंटे में कोई व्यक्ति सारे विचारों से अपने को मुक्त कर ले और सिर्फ रह जाए--मात्र रह जाए, सोचे न, सिर्फ हो जाए, थिंकिंग नहीं, सिर्फ बीइंग--तो उसकी जिंदगी में वह सब उतर आएगा जो श्रेष्ठ है, जो सुंदर है, जो सत्य है। एक अंतिम कहानी, और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
मैंने सुना है, एक पहाड़ के ऊपर एक आदमी खड़ा था। सुबह-सुबह सूरज निकला है, और अभी रोशनी ने चारों तरफ वृक्षों पर जागरण ला दिया है और पक्षी गीत गाते हैं, और वह आदमी चुपचाप खड़ा है। कुछ लोग घूमने निकले हैं, तीन मित्र रास्ते से नीचे गुजर रहे हैं। उन्होंने उस आदमी को वहां खड़े देखा। और एक मित्र ने कहा, यह आदमी यहां क्या करता होगा?
अब सच तो यह है कि कोई जरूरत नहीं कि वह आदमी वहां क्या करता होगा, लेकिन विचार करने वाले लोग व्यर्थ का विचार करते रहते हैं। वे तीनों विचारक रहे होंगे। एक ने कहा कि वह आदमी वहां क्या करता है? दूसरे आदमी ने कहा कि जहां तक मैं समझता हूं, जहां तक मैं सोचता हूं, कभी-कभी उस फकीर की जो वहां ऊपर खड़ा है गाय खो जाती है, वह अपनी गाय को खोजने के लिए पहाड़ पर खड़े होकर देखता होगा कि गाय कहां है।
लेकिन पहले आदमी ने कहा, तुम्हारी बात ठीक नहीं मालूम पड़ती। विचारकों
को कभी एक-दूसरे की बात ठीक मालूम पड़ती ही नहीं। उस आदमी ने कहा, तुम्हारी बात ठीक नहीं मालूम पड़ती। नहीं मालूम पड़ती इसलिए कि अगर वह गाय को खोजता होता तो चारों तरफ आंख भटकती उसकी, चारों तरफ देखता। वह तो चुपचाप एक ही तरफ देखता हुआ खड़ा है। खोजने वाला आदमी एक तरफ नहीं देखता, सब तरफ देखता है।
लेकिन तीसरे आदमी ने कहा, तुम्हारी बात मुझे ठीक मालूम नहीं पड़ती। बातों की दुनिया में कभी कुछ ठीक मालूम पड़ता ही नहीं। उस तीसरे आदमी ने कहा कि मैं जहां तक समझता हूं, कभी-कभी ऐसा होता है कि वह अपना मित्र साथ लाता है, मित्र पीछे छूट जाता है, तो वह खड़े होकर उसकी प्रतीक्षा करता होगा।

उस पहले आदमी ने कहा, नहीं, यह ठीक नहीं है। क्योंकि अगर कोई किसी की प्रतीक्षा करता हो तो कभी-कभी पीछे लौट कर भी देखता है। वह पीछे लौट कर देख ही नहीं रहा है।
तब उन दोनों ने पूछा कि तुम क्या कहते हो?
उस आदमी ने कहा, जहां तक मैं सोचता हूं... अब मजा यह है कि ये तीनों सोच
ही सकते हैं। क्योंकि वह आदमी क्या कर रहा है यह वही जान सकता है। बाहर से तो सिर्फ सोचा ही जा सकता है।
उस तीसरे ने कहा, जहां तक मैं सोचता हूं, वह भगवान का स्मरण कर रहा है।
तो उन तीनों ने कहा, बड़ी मुश्किल हो गई। हम तीनों को पहाड़ पर चढ़ना पड़ेगा और उस आदमी से पूछना पड़ेगा कि वह कर क्या रहा है।
अब बड़े मजे की बात है कि दूसरा आदमी कुछ भी कर रहा हो, तीन आदमियों को पहाड़ चढ़ने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन दूसरा क्या कर रहा है उसे जानने के लिए कोई भी एवरेस्ट चढ़ सकता है। हम खुद क्या कर रहे हैं उसे जानने की हमें कभी भी कोई चिंता नहीं है। दूसरा क्या कर रहा है!
वे तीनों पहाड़ चढ़े, थक गए, पसीना उनके माथे पर आ गया, उस आदमी के पास पहुंचे। पहले आदमी ने जाकर कहा कि जहां तक महानुभाव, मैं सोचता हूं, आपकी गाय खो गई है, आप खोज रहे हैं।
उस आदमी ने आंख खोली। उसने कहा, मेरा कुछ है ही नहीं इस जगत में, खोएगा कैसे? और जब खोएगा ही नहीं तो खोजूंगा कैसे? माफ करो, मैं कुछ भी नहीं खोज रहा हूं।
दूसरा आदमी हिम्मत से आगे आया। उसने कहा, जहां तक मैं सोचता हूं, आप खोज नहीं रहे हैं, लेकिन आपका मित्र पीछे छूट गया होगा, आप उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। सही कह रहा हूं न मैं?
उस आदमी ने कहा, न मेरा कोई मित्र है, न मेरा कोई शत्रु है। पीछे छूटेगा कौन? प्रतीक्षा किसकी करूंगा? मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा हूं।
तब तो तीसरे आदमी ने कहा कि जीत मेरी निश्चित है। वह तीसरा आदमी आगे आया और उसने कहा कि मैं सोचता हूं कि आप परमात्मा का स्मरण कर रहे हैं।
वह फकीर हंसने लगा, उसने कहा, मुझे परमात्मा का कोई पता नहीं। मुझे अभी अपना ही पता नहीं है, मैं परमात्मा का स्मरण कैसे करूंगा?
तो उन तीनों ने पूछा कि फिर आप कर क्या रहे हैं?
उस आदमी ने कहा, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं--मैं सिर्फ हूं। उस आदमी ने कहा, मैं कुछ कर नहीं रहा हूं--मैं सिर्फ हूं। और उस आदमी ने कहा, होना इतना आनंद है--मात्र होना।
जिन लोगों ने सत्य को जाना है--प्रेम को, परमात्मा को, कोई भी नाम दें; मुक्ति को, मोक्ष को--उन सबने उस क्षण में जाना है जब बाहर की भी सारी क्रिया खो गई है और भीतर भी विचार की सारी क्रिया खो गई है, जब क्रिया मात्र खो गई है और सब सन्नाटा हो गया है और सिर्फ होना मात्र रह गया है-- जस्ट एक्झिस्टेंस, उस क्षण में हम जुड़ जाते हैं सब से, विराट से। और जब तक विचार की गतिविधि है, तब तक टूटे रहते हैं, नहीं जुड़ पाते हैं।
तो मुझे गलती से बुला लिया। और इतना समय भी मैंने आपका लिया। उसके लिए माफी मांगने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। मैं कोई विचारक नहीं हूं और न चाहता हूं कि कोई विचारक हो। द्रष्टा चाहिए, दर्शन चाहिए, दृष्टि चाहिए, वह आंख चाहिए भीतर जिससे जीवन के परम सत्य का अनुभव होता है।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन रहस्य
दसवां प्रवचन

मनुष्य की एकमात्र समस्या: भीतर का खालीपन

एक छोटी सी घटना से आज की बात शुरू करना चाहूंगा।
सिकंदर महान की मृत्यु हो गई थी। लाखों लोग नगर के रास्तों पर खड़े उसकी अरथी की प्रतीक्षा कर रहे थे। अरथी आई और अरथी महल से बाहर निकली। वे जो खड़े हुए लाखों लोग थे, उन सबके मन में एक ही प्रश्न, उन सब की बात में एक ही प्रश्न और जिज्ञासा पूरे नगर में फैल गई। बड़े आश्चर्य की बात हो गई थी, ऐसा कभी भी न हुआ था। अरथियां तो रोज निकलती हैं, रोज कोई मरता है। लेकिन सिकंदर की अरथी निकली थी तो जो बात हो गई थी वह बड़ी अजीब थी। अरथी के बाहर सिकंदर के दोनों हाथ लटके हुए थे। हाथ तो भीतर होते हैं अरथी के। क्या कोई भूल हो गई कि हाथ अरथी के बाहर लटके हुए थे? लेकिन सिकंदर की अरथी और भूल हो जाए, यह भी संभव न था। और एक-दो लोग नहीं, सैकड़ों लोग महल से उस अरथी को लेकर आए थे। किसी को तो दिखाई पड़ गया होगा--हाथ बाहर निकले हुए हैं। सारा गांव पूछ रहा था कि हाथ बाहर क्यों निकले हुए हैं?
सांझ होते-होते लोगों को पता चला। सिकंदर ने मरते वक्त कहा था, मेरे हाथ अरथी के भीतर मत करना। सिकंदर ने चाहा था, उसके हाथ अरथी के बाहर रहें, ताकि सारा नगर यह देख ले कि उसके हाथ भी खाली हैं।
हाथ तो सभी के खाली होते हैं मरते वक्त। उनके भी जिनको हम सिकंदर जानते हैं, उनके हाथ भी खाली होते हैं। लेकिन सिकंदर को यह ख्याल कि उसके खाली हाथ लोग देख लें--जिसने दुनिया जीतनी चाही थी, जिसने अपने हाथ में सब कुछ भर लेना चाहा था--वे हाथ भी खाली हैं, यह दुनिया देख ले।
सिकंदर को मरे हुए बहुत दिन हो गए। लेकिन शायद ही कोई आदमी अब तक देख पाया है कि सिकंदर के हाथ भी खाली हैं। और हम सब भी छोटे-मोटे सिकंदर हैं, और हम सब भी हाथों को भरने में लगे हैं। लेकिन आज तक कोई भी जीवन के अंत में क्या भरे हुए हाथों को उपलब्ध कर सका है? या कि हाथ खाली ही रह जाते हैं? या कि हाथ नहीं भर पाते और हमारा सारा श्रम और हमारी सारी शक्ति अपव्यय हो जाती है?
अधिकतम लोग असफल मरते हैं। यह हो सकता है कि उन्होंने बड़ी सफलताएं पाई हों संसार में। यह हो सकता है कि उन्होंने बहुत यश और धन अर्जित किया हो। लेकिन फिर भी असफल मरते हैं, क्योंकि हाथ खाली होते हैं मरते वक्त। भिखारी ही खाली हाथ नहीं मरते, सम्राट भी खाली हाथ ही मरते हैं। तो फिर यह सारी जिंदगी का श्रम कहां गया? अगर सारे जीवन का श्रम भी संपदा न बन पाया और भीतर एक पूर्णता न ला पाया, तो क्या हम रेत पर महल बनाते रहे? या पानी पर लकीरें खींचते रहे? या सपने देखते रहे और समय गंवाते रहे? क्या है, इस दौड़ की सारी निष्फलता क्या है?
एक और छोटी कहानी मुझे स्मरण आती है।
एक महल के द्वार पर बहुत भीड़ लगी हुई थी। और भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। और दोपहर से भीड़ बढ़नी शुरू हुई थी, अब सांझ होने आ गई, सारा गांव ही करीब-करीब उस द्वार पर इकट्ठा हो गया था। क्या हो गया था उस द्वार पर राजमहल के? एक छोटी सी घटना हो गई थी। और घटना ऐसी बेबूझ थी कि जिसने भी सुना वह वहीं खड़ा होकर देखता रह गया। किसी की कुछ भी समझ में न आ रहा था।
एक भिखारी सुबह-सुबह आया और उसने राजा के महल के सामने अपना भिक्षापात्र फैलाया। राजा ने कहा कि कुछ दे दो, अपने नौकरों को।
उस भिखारी ने कहा, एक शर्त पर लेता हूं। यह भिक्षापात्र उसी शर्त पर कोई चीज स्वीकार करता है जब यह वचन दिया जाए कि आप मेरे भिक्षापात्र को पूरा भर देंगे, तभी मैं कुछ लेता हूं।
राजा ने कहा, यह कौन सी मुश्किल है! छोटा सा भिक्षापात्र है, पूरा भर देंगे! और अन्न से नहीं, स्वर्ण अशर्फियों से भर देंगे।
भिक्षुक ने कहा, और एक बार सोच लें, पीछे पछताना न पड़े। क्योंकि इस भिक्षापात्र को लेकर मैं और द्वारों पर भी गया हूं और न मालूम कितने लोगों

ने यह वचन दिया था कि वे इसे पूरा भर देंगे। लेकिन वे इसे पूरा नहीं भर पाए और बाद में उन्हें क्षमा मांगनी पड़ी।
राजा हंसने लगा और उसने कहा कि यह छोटा सा भिक्षापात्र! उसने अपने मंत्रियों को कहा, स्वर्ण अशर्फियों से भर दो।
यही घटना हो गई थी, राजा स्वर्ण अशर्फियां डालता चला गया था, भिक्षापात्र कुछ ऐसा था कि भरता ही नहीं था। सारा गांव द्वार पर इकट्ठा हो गया था देखने। किसी की समझ में कुछ भी न पड़ता था कि क्या हो गया है! राजा का खजाना चुक गया। सांझ हो गई, सूरज ढलने लगा, लेकिन भिक्षा का पात्र खाली था। तब तो राजा भी घबड़ाया, गिर पड़ा पैरों पर उस भिक्षु के और बोला, क्या है इस पात्र में रहस्य? क्या है जादू? भरता क्यों नहीं?
उस भिखारी ने कहा, कोई जादू नहीं है, कोई रहस्य नहीं है, बड़ी सीधी सी बात है। एक मरघट से निकलता था, एक आदमी की खोपड़ी मिल गई, उससे ही मैंने भिक्षापात्र को बना लिया। और आदमी की खोपड़ी कभी भी किसी चीज से भरती नहीं है, इसलिए यह भी नहीं भरता है।
आदमी खाली हाथ जाता है, इसलिए नहीं कि खाली हाथ जाना जरूरी है, बल्कि आदमी की खोपड़ी में कहीं कुछ भूल है। इसलिए नहीं कि खाली हाथ जाना जीवन से कोई नियम है, कोई अनिवार्यता है। नहीं; जीवन से भरे हाथों भी जाया जा सकता है। और कुछ लोग गए हैं। और जो भी जाना चाहे वह भरे हाथों भी जा सकता है। लेकिन आदमी की खोपड़ी में कुछ भूल है। और इसलिए भरते हैं बहुत, भर नहीं पाता, हाथ खाली रह जाता है।
कौन सी भूल है? कौन सा सीक्रेट है? कौन सा रहस्य है मनुष्य के मन के साथ कि वह भर नहीं पाता? कौन सा जादू है? और यह मत सोचना कि किसी राजमहल के द्वार पर ही कोई भिक्षु खड़ा था और उसका पात्र नहीं भर पाया था। हम सबके द्वारों पर भिक्षु खड़े हैं और पात्र नहीं भर पा रहे हैं। हम सभी भिक्षु हैं, हमारे पात्र भी नहीं भर पा रहे हैं।
यहां हम इतने लोग इकट्ठे हैं, आधा जीवन तो करीब-करीब हममें से सभी का बीत चुका है। किसी का आधे से ज्यादा भी बीत चुका होगा, किसी का अभी आधे से कम भी बीता होगा। लेकिन क्या हमारे पात्र थोड़े-बहुत भर पाए हैं? और अगर आधा जीवन बीत जाने पर बिल्कुल नहीं भरे हैं, तो शेष आधे जीवन में फिर कैसे भर जाएंगे? पात्र खाली हैं, पात्र खाली रहेंगे, क्योंकि आदमी के मन के साथ कुछ गड़बड़ है। क्या गड़बड़ है? उसी संबंध में थोड़ी सी बात आज संध्या मैं आपसे कहूंगा।
मनुष्य के मन के साथ क्या भूल है? क्या उलझाव, कौन सी पहेली है जो सुलझ नहीं पाती? और इस पहेली को बिना सुलझाए जो जिंदगी में भाग-दौड़ करने में लग जाता है, वह तो बिल्कुल पागल है। जिसने अपने मन की समस्या को, इस उलझाव को, इस रहस्य को नहीं समझ लिया है ठीक से, उसके जीवन की सारी दौड़ व्यर्थ है, निरर्थक है। वह तो बिना समस्या को समझे और समाधान करने को निकल पड़ा है। और जिसने समस्या ही न समझी हो क्या वह समाधान कर सकेगा?
तिब्बत में एक शिक्षक के बाबत बड़ी प्रसिद्धि है, बाद में वह फकीर हो गया। जब वह शिक्षक था विश्वविद्यालय में, तीस वर्षों तक शिक्षक रहा, गणित का शिक्षक था, हर वर्ष जब नये विद्यार्थी आते और उसकी कक्षा शुरू होती, तो तीस वर्ष से निरंतर एक ही सवाल से उसने कक्षा को शुरू किया था, एक ही गणित, एक ही प्रश्न। वह जैसे ही पहले दिन, वर्ष के पहले दिन कक्षा में जाता और नये विद्यार्थियों का स्वागत करता; तख्ते पर जाकर दो अंक लिख देता--चार और दो--और लोगों से पूछता, क्या हल है इसका? कोई लड़का चिल्लाता, छह! लेकिन वह सिर हिला देता। कोई लड़का चिल्लाता, दो! लेकिन वह सिर हिला देता। और तब सारे लड़के चिल्लाते--क्योंकि अब तो एक ही और संभावना रह गई थी; जोड़ लिया गया, घटा लिया गया, अब गुणा करना और रह गया था--तो सारे लड़के चिल्लाते, आठ! लेकिन वह फिर सिर हिला देता। और तीन ही उत्तर हो सकते थे, चौथा कोई उत्तर न था, तो लड़के चुप रह जाते।
और तब वह शिक्षक उनसे कहता, तुमने सबसे बड़ी भूल यही की कि तुमने मुझसे
यह नहीं पूछा कि प्रश्न क्या है, और तुम उत्तर देना शुरू कर दिए। मैंने चार लिखा और दो लिखा, यह तो ठीक, लेकिन मैंने प्रश्न कहां बोला था? और तुम उत्तर देना शुरू कर दिए। और वह शिक्षक कहता कि मैं अपने अनुभव से कहता हूं,

गणित में ही यह भूल नहीं होती, जिंदगी में भी अधिक लोग यही भूल करते हैं। जिंदगी के प्रश्न को नहीं समझ पाते और उत्तर देना शुरू कर देते हैं। जिंदगी की समस्या, जिंदगी का प्रॉब्लम क्या है? किस बात का उत्तर खोज रहे हैं? कौन सी पहेली को हल करने निकल पड़े हैं? इसके पहले कि कोई पहेली को हल कर पाए, उसे ठीक से जान लेना होगा--प्रश्न क्या है? जिंदगी की समस्या क्या है?
मनुष्य की समस्या उसका मन है। और मन की समस्या, कितना ही उसे भरो, न भरना है। मन भर नहीं पाता है। क्या है इसके पीछे? कौन सा गणित है जो हम नहीं समझ पाते और जीवन भर रोते हैं और परेशान होते हैं? कौन सी कुंजी है जो इस जीवन की समस्या को सुलझाएगी और हल कर देगी? बिना इसे समझे, चाहे हम मंदिरों में प्रार्थनाएं करें, चाहे मस्जिदों में नमाज पढ़ें, चाहे आकाश की तरफ हाथ उठा कर परमात्मा से आराधना करें, कुछ भी न होगा, कुछ भी न होगा। क्योंकि जो आदमी अभी अपने मन को ही सुलझाने में समर्थ नहीं हो सका, उसकी प्रार्थना का कोई भी मूल्य नहीं हो सकता है। और जो मनुष्य अभी अपने भीतर ही स्पष्ट नहीं हो सका है जीवन की समस्या के प्रति, वह जिन मंदिरों में जाएगा, उसके साथ ही और भी उपद्रव वहां पहुंच जाएंगे। मंदिर से वह तो शांत होकर नहीं लौटेगा, लेकिन मंदिर की शांति को जरूर खंडित कर आएगा। भीतर जो उलझा हुआ है वह जो भी करेगा, कनफ्यूज्ड माइंड जो भी करेगा, उससे जीवन में और कनफ्यूजन, और परेशानी, और उलझाव बढ़ता है।
हम एक पागल आदमी से सलाह लेने नहीं जाते, क्योंकि पागल जो भी सलाह देगा वह और भी उपद्रव की हो जाएगी। पागल जो सुलझाव उपस्थित करेगा वह और भी पागलपन का हो जाएगा।
एक राजा का एक मंत्री पागल हो गया था। और अक्सर मंत्री पागल हो जाते हैं। सच तो यह है कि जो पागल नहीं होते वे कभी मंत्री ही नहीं होते। राजा का मंत्री पागल हो गया था। राजा सोया हुआ था, उस मंत्री ने जाकर सोए हुए राजा को चूम लिया। राजा घबड़ा कर उठा और उसने कहा कि यह तुम क्या करते हो? इसकी सजा सिवाय मौत के और कुछ भी नहीं हो सकती! मुझे चूमने का तुमने साहस किया!
उस मंत्री ने कहा, माफ करें, मैं तो समझा कि महारानी सो रही हैं।
यह उन्होंने उत्तर दिया था। राजा हैरान हो गया, वह बोला कि निश्चित ही तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। क्योंकि तुमने जो अपराध किया है और उस अपराध से बचने के लिए तुम जो दलील दे रहे हो, वह और भी बड़ा अपराध है। करीब-करीब ऐसे ही जीवन की समस्या को सुलझाने के लिए हम जो करते हैं वह
और भी बड़ी समस्या खड़ी कर देता है। हमारे मन उलझे हुए हैं, उलझे हुए मन को लेकर हम क्या हल कर पाएंगे? लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। इस उलझे हुए मन को लेकर गीता पढ़ते हैं, गीता पर टीका भी करते हैं; कुरान पढ़ते हैं, कुरान पर भाष्य लिखते हैं; उपनिषद पढ़ते हैं। हम जब गीता और उपनिषद पढ़ते हैं, तब जो हम जान पाते हैं, वह गीता और उपनिषद नहीं हैं। हमारे उलझे मन गीता को भी उलझा लेते हैं, उपनिषद को भी उलझा लेते हैं। और तब हमारा उलझाव बढ़ता ही चला जाता है और फैलता ही चला जाता है, उसमें कोई ओर-छोर मिलना कठिन हो जाता है। इसलिए पहली और बुनियादी बात पूछनी जरूरी हैः इस मन का प्रॉब्लम क्या है? इस मन की समस्या क्या है?
सबसे पहली बात, वह यह, हमारे भीतर जो यह आकांक्षा और दौड़ होती है कि हम
भर लें अपने को, फुलफिलमेंट की, पूर्णता की, पा लेने की, कुछ हो जाने की, यह दौड़ इसलिए पैदा होती है कि हमें अहसास होता है कि भीतर हम खाली हैं, भीतर अभाव है, भीतर एंप्टीनेस है, भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर मालूम होता है ना- कुछ, भीतर मालूम होता है शून्य, उस शून्य को भरने के लिए हम दौड़ते हैं, दौड़ते हैं, दौड़ते हैं।
लेकिन क्या आपको पता है कि जो शून्य भीतर है, उसे बाहर की कितनी ही सामग्री से भरना असंभव है! क्योंकि शून्य है भीतर और हमारे साम्राज्य होंगे बाहर, साम्राज्य बढ़ते चले जाएंगे, शून्य अपनी जगह बना रहेगा। इसीलिए तो सिकंदर खाली हाथ मरता है। नहीं तो सिकंदर के हाथ में तो बड़ा साम्राज्य था, बड़ी धन-दौलत थी। शायद ही किसी आदमी के पास इतना बड़ा साम्राज्य रहा हो, इतनी धन-दौलत रही हो। खाली हाथ क्यों मरता है यह आदमी?

यह खाली हाथ किस बात की सूचना है? यह सूचना है कि भीतर जो खालीपन है वह नहीं भरा जा सका। बाहर सब इकट्ठा हो गया; लेकिन नहीं, भीतर कुछ भी नहीं पहुंच सका।
कौन सी चीज भीतर पहुंच सकती है?
बाहर की कोई भी चीज भीतर नहीं पहुंच सकती। बाहर के मित्र बाहर हैं, बाहर की संपदा बाहर है, बाहर का धन, बाहर की यश-प्रतिष्ठा, सब बाहर है। और भीतर हूं मैं। मेरे अतिरिक्त मेरे भीतर कोई भी नहीं। मेरा होना ही मेरा भीतर है। मेरा बीइंग ही मेरा, मेरा आंतरिक शून्य है, मेरी आंतरिक रिक्तता है। भीतर मैं हूं खाली, बाहर मैं दौड़ता हूं कि भरूं, भरूं। बहुत इकट्ठा कर लेते हैं दौड़ कर। लेकिन जब आंख उठा कर देखते हैं तो पाते हैं--भीतर तो सब खाली है, दौड़ तो व्यर्थ गई।
दौड़ इसलिए व्यर्थ गई कि जिस दिशा में शून्यता थी, उसके विपरीत दिशा में हमने श्रम किया। दौड़ इसलिए खाली गई कि जहां गड्ढा था वहां तो हमने नहीं भरा, हमने ढेर कहीं और लगाए। गड्ढा गड्ढा बना रहा; ढेर बड़े-बड़े हो गए, लेकिन गड्ढा नहीं मिटा।
भीतर है गड्ढा, भीतर एक खाई-खंदक है। भीतर देखेंः एकदम खाली है, कुछ भी
तो नहीं वहां। न वहां आपका मकान है, न आपका धन, न आपकी दौलत। हो सकता है कि बाहर एक के पास बड़ा मकान हो और दूसरे के पास कुछ भी न हो, सड़क पर खड़ा हो। लेकिन भीतर? भीतर दोनों एक समान खाली हैं। भीतर कोई फर्क नहीं है भिखारी और सम्राट में, भीतर का खालीपन बराबर एक सा है। भीतर हम सब भिखमंगे हैं। एक मुसलमान फकीर था, फरीद। वह अकबर से मिलने गया। उसके मित्रों ने फरीद से कहा था, अकबर से करना प्रार्थना कि हमारे गांव में एक स्कूल बना दे। अकबर फरीद को बहुत मानता था, आदर देता था। फरीद ने सोचाः जाऊं। वह गया, सुबह-सुबह जल्दी गया। अकबर नमाज पढ़ता था। फरीद पीछे खड़ा हो गया। अकबर ने नमाज पढ़ी, नमाज पूरी की और हाथ जोड़े परमात्मा की तरफ और कहा, हे परमपिता, मेरे राज्य को और बड़ा कर, मेरे धन को और बढ़ा।
फरीद वापस लौट पड़ा। अकबर उठा तो देखा फरीद मस्जिद की सीढ़ियां उतर रहा है। अकबर दौड़ा और रोका कि कैसे आए और कैसे चले?
फरीद ने कहा, मैं सोचता था एक सम्राट के पास जा रहा हूं। यहां मैंने देखा, यहां भी एक भिखारी है। मैंने भूल से तुम्हारी नमाज का आखिरी हिस्सा सुन लिया। तुमने भी मांगा और राज्य, और धन। तुम भी मांगते हो! मैं लौट पड़ा कि जो अभी खुद ही मांग रहा है उससे हमारा मांगना ठीक नहीं, अशिष्ट है। और फिर मैंने सोचाः तुम जिससे मांगते हो, अगर मांगना ही होगा तो हम भी उसी से मांग लेंगे, तुमको बीच में क्यों लें?
लेकिन फरीद ने अपने गांव में जाकर कहा, मित्रो, मैं सोचता था अकबर सम्राट है और मैं भिखारी हूं। मैंने जाकर जब झांक कर देखा तो मैंने पाया, अकबर भी भिखारी है! तो मैं उससे नहीं कह सका कि स्कूल बनवा दो गांव में एक। वह तो खुद ही अभी मांग रहा है। उसका मांगना खत्म हो जाए तो फिर हम उससे कुछ कहें।
लेकिन मांगना क्या कभी किसी का खत्म होता है? मरते दम तक, आखिरी क्षण
तक आदमी मांगे चला जाता है। क्यों? भीतर का खालीपन नहीं भरता! आखिरी क्षण भी हम सोचते हैं कि शायद कुछ मिल जाए और हम भर जाएं, और हमें लगे कि हम कुछ हो गए और हमने कुछ पा लिया। नहीं लेकिन, यह नहीं हो पाता। यह नहीं हो सकता है, यह इंपासिबिलिटी है, इसके होने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए नहीं है उपाय कि भीतर है शून्य, बाहर है सामग्री। फिर हम क्या करें? इस भीतर के शून्य को कैसे भरें? कैसे हमें अहसास हो जाए कि अब मेरी कोई मांग नहीं?
उसी दिन आदमी जीवन में कहीं पहुंचता है जिस दिन उसकी कोई मांग नहीं रह जाती, जिस दिन उसका भिखारी मर जाता है। धर्म प्रत्येक मनुष्य को ऐसी जगह ले जाना चाहता है जहां वह सम्राट हो जाए। दिखता तो ऐसा है कि संसार में सम्राट होते हैं, लेकिन जो जानते हैं वे कहेंगे, संसार में कभी कोई सम्राट नहीं हुआ, सभी भिखारी हैं। यह दूसरी बात है कि कुछ भिखारी छोटे हैं, कुछ भिखारी बड़े हैं; यह दूसरी बात है कि किन्हीं का भिक्षापात्र छोटा है, किन्हीं का बड़ा है; यह दूसरी बात है कि कुछ रोटी मांगते हैं, कोई राज्य

मांगता है। लेकिन मांगने के संबंध में कोई भिन्नता नहीं, भिखमंगेपन में कोई भेद नहीं।
धर्म तो समझता है कि केवल वे ही लोग सम्राट हो सकते हैं जो भीतर एक आंतरिक संपूर्णता को उपलब्ध होते हैं। उनकी सारी मांग मिट जाती है। उनकी दौड़, उनके भिक्षा का पात्र टूट जाता है।
बुद्ध बारह वर्षों के बाद अपने गांव वापस लौटे थे। उनके हाथ में भिक्षापात्र था, भिखारी के वस्त्र थे। उनके पिता उन्हें लेने गांव के बाहर आए। तो पिता ने अपने लड़के को कहा, मुझे देख कर दुख होता है! राज-परिवार में पैदा होकर तू क्यों हमारे नाम को कलंक लगाता है और भिक्षा का पात्र अपने हाथ में लिए हुए है? क्या कमी है हमारे पास जो तू भिक्षा का पात्र लेकर घूम रहा है?
बुद्ध हंसे और उन्होंने अपने पिता से क्या कहा? उन्होंने कहा, क्षमा करें, लेकिन मेरे देखे भिखारी आप हैं, मैं तो सम्राट हो गया हूं। मेरी तो सारी मांग समाप्त हो गई, मैंने तो मांगना बंद कर दिया, मैं तो कुछ भी नहीं मांगता हूं। आपकी मांग अभी जारी है, आप अभी मांगे ही चले जा रहे हैं। फिर भी अपने को सम्राट कहते हैं?
लेकिन हमें यह दिखाई नहीं पड़ता, हमें यह ख्याल में नहीं आता कि हम मांगे चले जा रहे हैं, मांगे चले जा रहे हैं। क्या मांग रहे हैं हम?
हम सारे लोग ही एक बात मांग रहे हैं कि किसी भांति हमारे भीतर का यह खालीपन मिट जाए, यह शून्यता मिट जाए। हम भरे-पूरे हो जाएं, हमारे जीवन में कुछ आ जाए जो हमारे भीतर के अभाव को, जो नथिंगनेस मालूम होती है भीतर, उसको पूरा कर दे। हम किसी भांति पूर्ण हो जाएं।
लेकिन यह नहीं होगा तब तक, जब तक हम बाहर दौड़े चले जाते हैं। बाहर की दौड़ का भ्रम, वह इल्यूजन कि बाहर से हम अपने को भर लेंगे, टूट जाना जरूरी है। तोड़ने के लिए कोई बहुत श्रम करने की बात भी नहीं है, केवल आंख खोलने की बात है। थोड़ा जीवन को आंख खोल कर देखने की बात है, चारों तरफ आंख खोल कर देखने की बात है। सिकंदर के खाली हाथ आंख खोल कर देखने की बात है, सब के खाली हाथ आंख खोल कर देखने की बात है। जीवन में चारों तरफ देखने की बात है कि लोग क्या कर रहे हैं और क्या पा रहे हैं? क्या मिल रहा है? क्या है उनकी उपलब्धि? क्या है जीवन भर का निष्कर्ष? कहां वे पहुंच गए हैं? कहीं पहुंच गए हैं या कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काट रहे हैं? सिर्फ लगता है कि चल रहे हैं या कि कहीं पहुंच भी रहे हैं? पूछें लोगों से, देखें लोगों को, समझें लोगों को, झांकें लोगों के भीतर--कौन कहां पहुंच रहा है? और अपने भीतर भी--मैं कहां पहुंच रहा हूं?
जो मनुष्य इतना भी नहीं पूछता और चला जाता है, बहा जाता है, वह तो मनुष्य होने का अधिकार भी खो देता है। फिर उसके जीवन में अगर उलझनें बढ़ती चली जाएं तो कौन है जिम्मेवार? कौन है रिस्पांसिबल? किसका उत्तरदायित्व है? सिवाय स्वयं के और तो किसी का भी नहीं।
हम जीवन को कभी खोज के लिए, जीवन को पूछने के लिए खड़े भी नहीं होते, आंख खोल कर देखते भी नहीं कि यह क्या हो रहा है? जिन गड्ढों में हम दूसरे लोगों को गिरते देखते हैं, हम खुद उन्हीं गड्ढों की तरफ बढ़े जाते हैं। जिन रास्तों पर हम दूसरे लोगों को जीवन को मिटाते देखते हैं, उन्हीं रास्तों पर हम भी दौड़े चले जाते हैं। देखते हैं चारों तरफ, फिर भी आंख शायद हम खोल कर नहीं देखते। अन्यथा यह कैसे हो सकता था कि वे ही भूलें हजारों वर्ष से जो मनुष्य कर रहा है, हर पीढ़ी उन्हीं भूलों को किए चली जाए!
दस हजार वर्ष का इतिहास क्या है? दस-पांच भूलों को बार-बार दोहराए जाने के सिवाय और क्या है? हर पीढ़ी कोई नई भूलें करे तो भी ठीक है, तो भी समझ में आए कि कोई नई भूलें हो रही हैं, दुनिया में विकास हो रहा है। हर पीढ़ी वही भूलें करती है, वही रिपीटीशन, रिपीटीशन... । जो मेरे पिता भूल करते हैं, जो उनके पिता करते हैं, जो उनके पिता, वही मैं करता हूं, वही मेरे बच्चे करेंगे, वही उनके बच्चे करेंगे। मनुष्य-जाति किसी कोल्हू के चक्कर में पड़ गई है। करीब-करीब एक सी भूलें हर पीढ़ी दोहरा देती है और खत्म हो जाती है।

नई भूलें हों तो भी स्वागत किया जा सकता है उनका, लेकिन पुरानी भूलें अगर बार-बार होती हों, तो एक ही बात पता चलती है कि शायद मनुष्य आंख खोल कर भी देखता नहीं और चल पड़ता है। शायद हम सोए-सोए चल रहे हैं, शायद हम नींद में हैं, शायद हम जागे हुए नहीं हैं, कोई गहरी निद्रा हमें पकड़े हुए है। अन्यथा यह कैसे हो सकता था, यह कैसे संभव था कि दस हजार वर्ष तक मनुष्य निरंतर कुछ बुनियादी भूलों को बार-बार दोहराता चला जाए? दस हजार साल की महत्वाकांक्षा की मूर्खता आज भी हमें दिखाई नहीं पड़ती। एंबीशन का पागलपन आज भी दिखाई नहीं पड़ता। दस हजार वर्ष की हिंसा, युद्ध, उनकी नासमझी हमें आज भी दिखाई नहीं पड़ती। हम नये-नये नाम लेकर फिर भी लड़े जाते हैं, नाम बदल लेते हैं, लड़ाई जारी रखते हैं।
पांच हजार साल में पंद्र्रह हजार युद्ध लड़े हैं आदमी ने। पंद्र्रह हजार युद्ध केवल पांच हजार साल में! तीन युद्ध प्रति वर्ष! या तो आदमी पागल है या यह क्या है? और हर युद्ध को लड़ने वालों ने यह समझा है कि हम शांति के लिए लड़ रहे हैं। पंद्रह हजार युद्ध! और हर युद्ध का लड़ने वाला यह समझता है कि हम शांति के लिए लड़ रहे हैं। और आज भी जो युद्ध हम लड़ते हैं, उसमें भी हम कहते हैं, शांति के लिए इस युद्ध को लड़ रहे हैं। पंद्रह हजार युद्ध लड़े जा चुके शांति के लिए, शांति नहीं आई। एक और युद्ध लड़ने से शांति आ जाएगी? पंद्र्रह हजार युद्धों की मूर्खता दिखाई नहीं पड़ती?
जरा भी दिखाई नहीं पड़ती। हर नया युद्ध ऐसा मालूम पड़ता है और ही तरह का युद्ध है। पुराने लोगों ने की होगी गलती। हम जो युद्ध लड़ रहे हैं, यह बात ही और है, इससे तो शांति की रक्षा हो जाएगी।
यही वहम उनको भी था। अगर यह वहम उनको न होता तो वे भी न लड़े होते। और जब
तक हमें भी यह वहम है तब तक हम भी लड़े जाएंगे, लड़ाई बंद नहीं हो सकती है। लेकिन वहम नहीं टूटता, पंद्रह हजार युद्ध लड़ने के बाद भी हमें दिखाई नहीं पड़ती युद्ध की मूर्खता, नासमझी। और भी सब मामलों में यही है, सब मामलों में यही है।
हम से पहले अरब-अरब लोग जमीन पर रहे हैं, उन सबने क्या किया था, वही हम
कर रहे हैं। किन चीजों के लिए वे जीए और मरे, वही हम कर रहे हैं। च्वांगत्से नाम का एक चीनी फकीर एक मरघट से निकलता था। वह मरघट कोई साधारण मरघट नहीं था। उस राजधानी में दो मरघट थेः छोटे लोगों का मरघट और बड़े लोगों का मरघट। आदमी जिंदा में तो छोटे और बड़े होते ही हैं, मरने के बाद भी फासला रखते हैं। बड़े आदमियों का मरघट अलग होता है। मिट्टी में मिल जाते हैं, लेकिन बड़े होने का ख्याल नहीं मिटता। कब्र अलग बनवाते हैं, चिता अलग जलवाते हैं। वह मरघट बड़े लोगों का मरघट था। च्वांगत्से वहां से निकलता था तो उसके पैर में एक खोपड़ी की चोट लग गई। उसने उस खोपड़ी को उठा लिया और अपने मित्रों से कहा, बड़ी भूल हो गई। किसी बड़े आदमी के सिर में मेरा पैर लग गया।
उसके मित्र हंसे और उन्होंने कहा, एक मुर्दे को पैर लग भी गया तो क्या हर्जा है?
च्वांगत्से ने कहा, हंसो मत! क्योंकि यह आदमी किसी दिन जिंदा रहा होगा
और किसी दिन इसके सिर में पैर लगाना तो दूर इसके सिर की तरफ अंगुली उठाना भी खतरनाक हो सकता था। संयोग की बात है कि बेचारा मर गया। इसके बस में न था, नहीं तो यह मरता भी नहीं। लेकिन फिर भी मुझे तो क्षमा मांगनी ही चाहिए, भूल हो गई।
वह उस खोपड़ी को घर उठा लाया। उस खोपड़ी को सदा अपने पास रखता था। लोग उससे पूछते, यह क्या किए हुए हैं? तो वह कहता, मैं इससे रोज क्षमा मांग लेता हूं। जिंदा आदमी होता तो एक ही बार क्षमा करने से, क्षमा मांगने से क्षमा भी मिल जाती। अब यह मुर्दा है, यह बोलता भी नहीं, उत्तर देता भी नहीं। मैं बड़ी अड़चन में पड़ गया हूं। जिंदा आदमी हो तो क्षमा भी मिल सकती है, मुर्दा आदमी से क्षमा मिलना भी कठिन है। इसीलिए तो जो मुर्दा होते हैं वे कभी किसी को क्षमा नहीं करते, जिंदा आदमी तो क्षमा भी कर सकता है।
तो उस च्वांगत्से ने कहा, बड़ी मुश्किल है। ये है मुर्दा, मुझसे हो गई
है भूल, सिर में लग गई है इसके चोट, नाराज तो जरूर हो रहा होगा। क्योंकि जो आदमी जिंदा है वह तो नाराज भी नहीं होता है, मुर्दे बहुत नाराज होते हैं,

बहुत गुस्से में आ जाते हैं। इससे मांगता हूं क्षमा, पता नहीं इस तक पहुंचती है कि नहीं पहुंचती, इसलिए रोज मांग लेता हूं। फिर एक बात और है, इसे साथ रखने से मुझे एक फायदा हुआ। मुझे अपनी खोपड़ी के बाबत जो इल्यूजन था, जो भ्रम था, वह टूट गया। अब मेरे सिर में कोई लात भी मार दे तो भी मैं हंसूंगा, क्योंकि मैं जानता हूं कि यह सिर आज नहीं कल लातों के नीचे आ जाने को है। तो जो आज नहीं कल लातों के नीचे आ जाने को है, उसके लिए परेशान होना कहां की समझदारी हो सकती है?
च्वांगत्से ने कहा, इस खोपड़ी को देखते-देखते मुझे अपनी खोपड़ी के बाबत
भी बड़ी सच्चाइयों का पता चल गया। मैं इसके बाबत नाहक भ्रम में था, मैं इसको सदा ऊंचा और ऊपर रखने की कोशिश करता था। फिर मुझे पता चला यह तो नीचे गिरने को है। तो मैंने, मुझे एक बात दिखाई पड़ गई।

यह बात हम में से कितनों को दिखाई पड़ती है? और अगर नहीं दिखाई पड़ती, तो
हम अगर सोए हुए या अंधे की तरह चल रहे हैं, यह कहने में कौन सी गलती है? यह हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। और इसीलिए हमें यह भी नहीं दिखाई पड़ता कि बाहर की दौड़ हमेशा व्यर्थ रही है, हम भी उसी दौड़ में दौड़े चले जाते हैं। हमें असल में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई पड़ने से हमारा कोई संबंध ही नहीं रहा। हम जीवन के किसी भी, किसी भी तल पर आंख खोल कर देखने में असमर्थ से हो गए हैं। हम देखते ही नहीं, या हो सकता है हम देखना न चाहते हों।
एक फकीर था, इब्राहिम। एक गांव के बाहर रहता था। अनेक राहगीर उस रास्ते से गुजरते, चौराहा था वह, दूसरे रास्ते भी उस जगह आकर मिलते और फूटते थे। तो राहगीर उससे पूछ लेते कि पास की जो बस्ती है उसका रास्ता कहां है? रोज झगड़ा हो जाता, रोज मुश्किल हो जाती। वह फकीर बड़ा गड़बड़ रहा होगा। एक दिन तो बहुत झंझट हो गई। एक आदमी ने उसके सिर पर लकड़ी भी मार दी। उस आदमी ने पूछा था कि बस्ती का रास्ता कहां है? उसने कहा, पूरब की तरफ चले जाओ, दो-तीन मील के बाद बस्ती आ जाएगी। और भूल कर भी पश्चिम की तरफ मत जाना, वहां बस्ती नहीं है।
वह आदमी पूरब की तरफ गया, तीन मील के बाद मरघट आ गया। तो उसे बड़ा गुस्सा आया कि यह आदमी बड़ा पागल है! लौट कर आया तो पता चला कि बस्ती तो पश्चिम की तरफ है। तो वह इब्राहिम के पास गया और कहा, तुम्हारा दिमाग खराब है? मरघट को बस्ती बताते हो! और मुझसे कहा कि बस्ती वहां है नहीं पश्चिम की तरफ, जहां कि बस्ती है!
उस इब्राहिम ने कहा कि मेरे भाई, बहुत दिन से मैं यहां रहता हूं। मरघट में जो लोग बस गए हैं उनको मैंने कभी वहां से हटते नहीं देखा, इसलिए उसको बस्ती कहता हूं। और यहां जो लोग बसते हैं वे तो रोज हट जाते हैं, रोज गुजर जाते हैं। तो यहां तो मैं देखता हूं मरने वालों की भीड़ लगी है, आज मरेगा कोई, कल मरेगा कोई, परसों मरेगा कोई। उसे बस्ती कैसे कहूं? वहां तो रोज कोई विदा होता है, वहां कोई बसता तो है ही नहीं। लेकिन उस मरघट में जो भी बसा है, वहां जो बस गया, बस गया; वहां से कभी जाता हुआ दिखाई नहीं पड़ता।
लेकिन कौन समझेगा उसको? उस आदमी ने तो मारा इब्राहिम को और कहा कि तुम पागल हो, तुम यहां से अपना स्थान हटा लो। क्योंकि तुम मुझको ही नहीं गुमराह किए, तुमने और न मालूम कितने लोगों को गुमराह करके मरघट भेजा होगा। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, इब्राहिम को दिखाई पड़ता था। और सच बात तो यह
है कि जिन लोगों को भी दिखाई पड़ता है, वे ही हमें ऐसे मालूम पड़ते हैं कि जैसे गुमराह कर रहे हैं। अंधों की भीड़ है, उसमें एकाध आदमी को कभी दिखाई पड़ता है तो अंधे उस पर टूट पड़ते हैं, मार डालते हैं--कि इसको खत्म करो, यह आदमी कुछ हमारे बीच का नहीं है, कुछ गड़बड़ है। मालूम होता है इसकी आंखें खराब हो गई हैं। इसलिए सुकरात को जहर पिला देते हैं, क्राइस्ट को फांसी लगा देते हैं, गांधी को गोली मार देते हैं।
अंधों के बीच आंख होना बड़ी खतरनाक बात है, जिंदा रहना बड़ा मुश्किल है। पागलों के बीच स्वस्थ होने से ज्यादा खतरा और दुर्भाग्य कोई भी नहीं हो सकता, क्योंकि पागल बेचैन हो जाते हैं। क्यों हो जाते हैं बेचैन? बेचैन हो जाते हैं इसलिए कि जब भी कोई आंख वाला आदमी गैर आंख वालों की बस्ती में पैदा हो जाए, तो उसकी आंखें हमारे लिए अपमान बन जाती हैं, हमारे लिए

पीड़ादायी हो जाती हैं। उसकी आंखों के होने से हमको इस बात का अहसास होना शुरू हो जाता है कि हम अंधे हैं। और कोई भी अपने को अंधा नहीं देखना चाहता। इसलिए उसे खतम कर देने के लिए हम एकदम उत्सुक और पागल हो जाते हैं। उसको खतम करके हम निश्चिंत हो जाते हैं, फिर हमें फिकर मिट जाती है। फिर बाकी सब अंधे होते हैं, जिनके साथी हम होते हैं, उनसे हमें कोई बेचैनी नहीं होती। बाकी अंधे हमारे ऊपर क्रिटिसिज्म नहीं हैं, हमारी आलोचना नहीं हैं, हमारा अपमान नहीं हैं। लेकिन आंख वाला आदमी हमारी आलोचना है, उसका होना हमारे लिए अपमान है।
लेकिन हम सब जब तक आंख बंद किए चलते रहेंगे, तब तक यह संभव नहीं है कि
जो व्यर्थ है जीवन में वह छूट जाए और जो सार्थक है उसकी दिशा में हमारे कदम बढ़ सकें। सबसे बड़ी केंद्रीय बात तो यही है कि जो आदमी आंख खोल कर नहीं देखेगा, वह मरते वक्त पाएगा हाथ खाली हैं। आंख खोल कर देखना जरूरी है जिंदगी को।
शास्त्रों को नहीं! शास्त्रों को देखने में कोई कठिनाई नहीं है। आंख बंद करके शास्त्र पढ़े जा सकते हैं। लेकिन जिंदगी आंख खोले बिना नहीं देखी जा सकती। शास्त्र आंख बंद किए पढ़े जा सकते हैं। अगर यह बात सच न होती, तो शास्त्र पढ़ने वाले लोग सत्य को उपलब्ध हो गए होते। लेकिन शास्त्र पढ़ने वाले लोग तो सत्य से बहुत दूर मालूम पड़ते हैं। आंख बंद किए शास्त्र पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं है। जैसे अंधे भी किताबें पढ़ लेते हैं, उनकी अपनी पद्धति होती है पढ़ने की। ऐसे ही आंख बंद किए गीता और कुरान पढ़े जा सकते हैं। कोई कठिनाई नहीं है। नहीं तो हिंदू और मुसलमान लड़ते? मौलवी और पंडित लड़ते? अगर आंख खोल कर शास्त्र पढ़े होते तो लड़ाई हो सकती थी? लेकिन आंख खोलने की कोई शर्त नहीं है शास्त्र पढ़ने में। आंख बंद किए मजे से पढ़े जा सकते हैं।
लेकिन जिंदगी को जिसे देखना हो उसे तो आंख खोलनी पड़ेगी। जिंदगी आंख बंद किए नहीं देखी जा सकती। जिंदगी चारों तरफ मौजूद है। जिंदगी की भूल-चूकें चारों तरफ मौजूद हैं। रास्ते पर हजारों लोग चल रहे हैं, उनके पैर डगमगा रहे हैं, वे गिर रहे हैं। रोज कोई गिर जाता है, रोज हमारे चारों तरफ कोई मिट जाता है, उसके हाथ खाली होते हैं। लेकिन फिर भी हम आंख खोल कर नहीं देखते। हम अपनी दौड़ में इतने व्यस्त हैं कि आंख खोलने की फुर्सत नहीं है। एक बात तो जाननी जरूरी है, थोड़ा ठहर कर जिंदगी को देखना आवश्यक है। चौबीस घंटे में कभी थोड़ी देर को ठहर कर जिंदगी को देखें। जिस रास्ते पर आप रहते हैं, कभी आधा घंटा उस रास्ते के किनारे बैठ कर भागते हुए लोगों को देखा है? नहीं देखा होगा, किसको फुर्सत है? अगर रास्ते के किनारे भी आधा घंटा बैठ कर भागते लोगों को देखा होता तो बहुत घबड़ाहट होती कि ये लोग पागल हैं क्या? कहां भागे जा रहे हैं? ये क्या कर रहे हैं?
कभी गौर से अपनी पत्नी का चेहरा भी देखा है? कभी गौर से अपने पति को देखा है? कभी शांति से, पंद्रह मिनट मौन से अपने बच्चे को देखा है?
नहीं, किसी को फुर्सत नहीं है। जिंदगी क्या देखेंगे आप? परमात्मा के दर्शन क्या करेंगे? बहुत दूर की बातें हैं। आसपास जो हमारे चारों तरफ मौजूद हैं, उनकी तरफ भी हमारी आंखें खुली हुई नहीं हैं। आपके द्वार पर जो वृक्ष लगा है, कभी दो क्षण उसे देखा है? किसको फुर्सत है! आकाश में इतने तारे निकलते हैं रोज रात, कभी आधा घड़ी मौन से उनकी तरफ निहारा है? किसको फुर्सत है! किसको समय है! दौड़ है तेज, और रुकने का किसी के पास कोई समय नहीं है। और दौड़ कहां ले जाती है? बड़ी तेजी से दौड़ कर मौत में पहुंच जाते हैं। और रुकने का किसी के पास समय नहीं है।
तो मैं निवेदन करूंगा, अगर जीवन में कहीं पहुंचना हो तो थोड़ी देर रुकना भी सीखना चाहिए। वे ही थोड़े से लोग जो रुकने में समर्थ हो पाते हैं, देखने में समर्थ हो पाते हैं। देखने की पहली शर्त है--रुकना। थोड़ी देर रुक कर देखें तो! चारों तरफ देखें--क्या हो रहा है?
अगर चारों तरफ आप गौर से देखेंगे, तो उन्हीं भूलों को आप नहीं कर पाएंगे जो आपके चारों तरफ हो रही हैं।
एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे मेरी बात समझ में आ जाए।

एक युवक एक रात अपने मित्र के घर एक राजधानी में आकर ठहरा। चिंतित था, रात करवटें बदलता था, नींद नहीं आती थी। उसके मित्र ने पूछा, क्या बात है? पुराने दिनों की बात है, आज की बात नहीं। नहीं तो कितनी ही करवटें बदलिए, कोई मित्र न पूछेगा कि क्या बात है? यह तो बहुत पुरानी कहानी है, उस वक्त मित्र पूछते थे। किसी को करवट बदलते देखते थे तो पूछते थे--क्या बात है? अब तो कोई मित्र नहीं पूछता, आप करवट बदलिए तो वह और गहरी नींद में सो जाता है। लेकिन पुरानी कहानी है इसलिए मैंने उसको बदला नहीं, वैसे ही रहने दिया।
वह करवट बदलता था तो उसके मित्र ने पूछा, क्या बात है? नींद नहीं आती, कोई पीड़ा? कोई बेचैनी?
उस युवक ने कहा, बहुत मन में बेचैनी है। जिस गुरुकुल में मैं पढ़ता था,
दस वर्ष वहां रहा, गुरु ने ही भोजन दिया, गुरु ने ही कपड़ा दिया, गुरु ने ही ज्ञान दिया। सब कुछ लिया उनसे और मेरे पास एक कौड़ी भी न थी कि उनको भेंट कर सकता। जब अंत में विदा हुआ, सारे मेरे मित्रों ने कुछ न कुछ भेंट दिया, मैं कुछ भी भेंट नहीं दे पाया। आज वहीं से लौटा हूं गुरुकुल से, मेरी आंखों में आंसू हैं और मेरे हृदय में बड़ी वेदना है कि मैं गुरु को कुछ भी भेंट नहीं कर पाया हूं।
उसके मित्र ने पूछा, क्या तुम भेंट करना चाहते हो?
ज्यादा नहीं, उसने कहा, पांच स्वर्ण अशर्फियां मिल जाएं तो बहुत है।
उसके मित्र ने कहा, चिंता मत करो। इस गांव का जो राजा है, उसका नियम है, उसका व्रत है कि पहला याचक उससे जो भी मांग ले, वह भेंट कर देता है। तो तुम कल जल्दी जाना सुबह, राजा से मांग लेना। पांच अशर्फियां मिल जानी कठिन नहीं हैं।
वह युवक रात भर न सो सका। जिसको सुबह पांच अशर्फियां मिलनी हों वह कभी रात भर सो सकता है? वह भी नहीं सो सका। सुबह बहुत जल्दी अंधेरे में ही भागा हुआ राजमहल पहुंच गया। राजा निकला तो उसने कहा कि मैं पहला याचक हूं। मेरी मांग है थोड़ी सी, पूरी कर देंगे?
राजा ने कहा, स्वागत है तुम्हारा। और तुम आज के ही पहले याचक नहीं, मेरे जीवन के ही पहले याचक हो। यह हमारा राज्य बड़ा समृद्ध है, कोई मांगने नहीं आता। इसीलिए तो मैं भी हिम्मत कर सका कि कोई जो भी मांगेगा उसको दे दूंगा। नहीं तो मैं भी कैसे हिम्मत कर सकता था! लेकिन आज तक कोई मांगने आया नहीं, तुम पहले ही याचक हो, आज के ही नहीं, पूरे जीवन के। तुम जो भी मांगोगे, मैं दूंगा।
राजा ने कहा, जो भी मांगोगे, मैं दूंगा। युवक के भीतर पांच अशर्फियां मिट गईं, ख्याल उसे भूल गया। उसने सोचा, जो भी मांगोगे दूंगा, तो मैं पागल हूं जो मैं पांच मांगूं! पचास क्यों न मांगूं? या पांच सौ या पचास हजार या पांच लाख? संख्या बड़ी होती गई। राजा सामने खड़ा था, भीतर संख्या बड़ी होती जाती थी। युवक तय न कर पाता था कितने मांगूं, क्योंकि राजा कहता है जो भी मांगोगे। वह भूल गया यह कि पांच अशर्फियां मांगने आया था, जरूरत मेरी पांच की थी। जरूरत खतम हो गई अब, जरूरत कोई भी न थी, अब तो संख्या का सवाल था। राजा ने कहा, तुम चिंतित मालूम पड़ते हो, विचार नहीं कर पाते। तुम सोच
लो ठीक से, मैं घूम कर आया, बगिया में एक चक्कर लगा आऊं।
युवक ने कहा, ठीक है, बड़ी कृपा है। आप चक्कर लगा आएं, मैं थोड़ा विचार कर लूं।
विचार क्या करना था? संख्याओं पर संख्याएं बढ़ती चली गईं। आखिर संख्या
का अंत आ गया, जितनी संख्याएं उसे मालूम थीं। आज उसके हृदय में बड़ा दुख और बड़ी पीड़ा घिर गई। उसके गुरु ने बहुत कहा कि और गणित सीखो, लेकिन गणित में वह कमजोर रहा। सोचता थाः गणित का फायदा क्या है आखिर इतना सीखने का? आज पता चला कि फायदा था, आज संख्या अटक गई एक जगह जाकर, उसके बाहर, उसके ऊपर कोई संख्या उसे मालूम नहीं। इतना ही मांग कर लौट जाना पड़ेगा। पता नहीं राजा के पास पीछे और कितना बच जाए? एक मौका मिला था वह खोया जा रहा है। मिलने की खुशी न रही, जो छूटता था उसका दुख पकड़ लिया।
सभी के साथ ऐसा होता है, उसके साथ भी ऐसा ही हुआ। राजा लौट कर आ गया, उसने पूछा कि मालूम होता है निश्चिंत तुमने सोच लिया।

तब युवक ने अंतिम छलांग ली, उसे एकदम अंतर्दृष्टि मिली। संख्याएं तो खत्म हो गई थीं, उसने सोचा संख्याओं की बात ही बंद करूं। राजा के पास जो कुछ है सब मांग लूं। राजा से कह दूं कि दो वस्त्र तुम्हारे लिए काफी हैं, पहने हो, बाहर निकल जाओ। अब भीतर जाने की कोई भी जरूरत नहीं। जैसे मैं दो वस्त्र पहन कर आया, ऐसे ही आप भी विदा हो जाएं। सब मेरा हुआ। संख्या में भूल-चूक हो सकती थी इसलिए सब मांग लेना उचित था।
जो भी गणित में ठीक-ठीक समझता है, वह भी यही करता। सोचा था राजा घबड़ा जाएगा। बात लेकिन उलटी हो गई। कई बार नाव पर लोग सवार होते हैं, कभी-कभी नाव भी लोगों पर सवार हो जाती है। उस दिन भी ऐसा ही हो गया। उस युवक ने सोचा था राजा घबड़ा जाएगा। एकदम सम्राट से हो जाएगा दो कौड़ी का भिखारी। कोई भी घबड़ा जाएगा। हो सकता है मर ही जाए। लेकिन बात हो गई उलटी। जैसे ही उस युवक ने कहा कि सब मुझे दे दें; जो दो कपड़े पहने हुए हैं, केवल ये ही लेकर बाहर निकल जाएं। उस राजा ने जोड़े हाथ आकाश की तरफ और कहा, हे परमात्मा, जिसकी मैं प्रतीक्षा और प्रार्थना करता था, तूने उसे भेज दिया! उस युवक को लगा लिया गले और कहा, दो कपड़े नहीं, दो कपड़े भी नहीं ले जाऊंगा। इतना भी दुख तुझे न दूंगा कि दो कपड़े ले जाऊं, वे भी छोड़ देता हूं, नग्न ही बाहर निकल जाता हूं।
युवक तो बहुत घबड़ा गया। बात क्या है? उसने पूछा, बात क्या है? इतने प्रसन्न क्यों हैं? इतने आनंदित क्यों हैं?
राजा ने कहा, मुझसे मत पूछ। महलों में रह और देख। राज्य को सम्हाल और समझ। आखिर मैंने भी मुफ्त में नहीं जाना, तीस साल इन दीवालों के भीतर बिताए हैं तब जान पाया हूं। तो तू भी रह और विचार। अभी तू युवा है, इतनी जल्दी क्या है, मुझसे क्या पूछता है? और दुनिया में कोई किसी से पूछ कर कभी समझा है? कोई भी नहीं समझ पाता। तू रुक! तू रुक और ठहर और मैं जाता हूं, ये कपड़े भी सम्हाल।
वह युवक बोला, ठहरें! एक क्षण ठहरें! मैं अनुभवी नहीं हूं, एक मौका मुझे सोचने का और दें।
राजा ने कहा कि नहीं, जो सोचता है वह मुश्किल में पड़ जाता है। इसीलिए
तो दुनिया में कोई सोचता नहीं, हर आदमी बिना ही सोचे चला जाता है। तू भी मत सोच। सोचने वाले मुश्किल में पड़ जाते हैं; सोचने वालों के सामने जीवन एक समस्या बन जाता है; सोचने वालों के लिए जीवन एक साधना बन जाता है। सोच मत। अभी जिंदगी पड़ी है, खूब सोच लेना बाद में। पहले तू भीतर जा, मैं बाहर जाऊं। जितना राजा ने आग्रह किया कि तू सम्हाल, उतना ही युवक ढीला होता गया।
उस युवक के हाथ-पैर ढीले हो गए। उसने कहा, माफ करें, एक मौका मुझे दें। मैं नासमझ हूं और आप मेरे पिता की उम्र के हैं, मुझ पर इतनी कृपा करें--एक बगिया का चक्कर और लगा आएं, मैं एक दफा और सोच लूं।
राजा ने कहा कि देख, बगिया का चक्कर तो मैं लगा आऊंगा, लेकिन तू यहां मुझे वापस मिलेगा इसमें संदेह है।
और यही हुआ, राजा चक्कर लगा कर लौटा, वह युवक वहां नहीं था। वह भाग गया था। वह पांच अशर्फियां भी छोड़ गया जो कि उसे लेनी थीं। क्यों? क्या हो गया? उस युवक के पास देखने वाली आंखें थीं, वह देख पाया। इसको मैं देखना कहता हूं। जिंदगी में ऐसी आंख जिसके पास है वही आदमी धार्मिक हो सकता है। देखने वाली आंख! आंखें तो हम सबके पास हैं; हम उनसे कभी देखने का काम ही नहीं लेते। जिंदगी भी चारों तरफ मौजूद है, सब कुछ मौजूद है, हम आंखों का काम ही नहीं लेते। आंख खोलें और थोड़ा देखें, जिंदगी में वे सारे इशारे हैं जो निरंतर दोहराई गई भूलों से किसी भी आदमी को जगा देने में समर्थ हैं। कोई शास्त्र नहीं कर सकता जो, कोई गुरु नहीं कर सकता जो, जिंदगी वह कर सकती है, लेकिन खुली हुई आंख चाहिए। कौन खोलेगा यह आंख? कोई दूसरा आपकी आंख खोल सकता है? नहीं, आंखें आपके पास हैं; आज से ही खोल कर देखें जिंदगी को चारों तरफ, छोटी-छोटी घटनाओं को देखें।
एक मित्र अभी आठ दिन पहले ही मेरे पास आए और उन्होंने मुझसे कहा कि निरंतर आप कहते हैं, आंख खोल कर देखें, आंख खोल कर देखें। क्या आंख खोल कर देखें? यह एक घटना है, इसमें बताइए मैं क्या करूं? एक पत्र मेरे सामने रखा। किसी ने उन्हें लिखा था, बहुत जहर भर दिया था पत्र में। जितनी भी गालियां

हो सकती थीं, दी थीं; जितना भी क्रोध प्रकट किया जा सकता था, किया था; जितना भी अपमान किया जा सकता था, किया था। वे थर-थर कांप रहे थे क्रोध से और मुझसे बोले, मेरा मन होता है इस आदमी के साथ जो भी मैं कर सकूं करूं। अब आप क्या कहते हैं? आंख खोल कर क्या देखूं? आप कहते हैं कि क्रोध हजारों वर्ष से आदमी कर रहा है, आंख खोल कर देखना चाहिए। मैं क्या देखूं?
मैंने उनसे कहा, एक पत्र इसके उत्तर में लिखें, यहीं मेरे सामने। वे मेरे सामने बैठ गए और उन्होंने एक उत्तर में पत्र लिखा। मैंने वह पत्र उन्होंने जो लिखा था रख लिया और मैंने कहा, सुबह वापस आ जाएं, सुबह इस पत्र को पोस्ट कर देंगे।
वे सुबह आए। मैंने उनसे कहा, एक दफा इस पत्र को फिर पढ़ जाएं जो आपने लिखा है। फिर हम इसे पोस्ट कर दें।
उन्होंने उस पत्र को पढ़ा और बोले कि नहीं, यह थोड़ा ज्यादा कठोर हो गया।
तो मैंने कहा, दुबारा लिखें, अभी हर्ज क्या हुआ!
उन्होंने दूसरा पत्र लिखा। पहले पत्र से दूसरे पत्र में जमीन-आसमान
का फर्क हो गया था। मैंने उनसे कहा, शाम फिर आ जाएं, शाम को पोस्ट कर देंगे। उन्होंने कहा, अभी नहीं करेंगे?
मैंने कहा, अगर आंखें होतीं तो तुम समझ जाते, कि अगर रात को ही इसे पोस्ट कर दिया होता तो क्या होता? लेकिन सुबह तुम बदलने को राजी हो गए। हो सकता है शाम को और बदलने को राजी हो जाओ, शाम तक प्रतीक्षा करने में कोई हर्जा नहीं है। गाली थोड़ी देर से देने से कुछ बिगड़ा नहीं जाता है, शाम तक रुक जाओ।
शाम को वे फिर आए, उन्होंने पत्र पढ़ा और कहा कि नहीं, अभी भी कठोर है। मैंने कहा, फिर से लिख दें, हर्ज क्या है!
फिर पत्र मैंने उनको दे दिया और मैंने कहा, इसे अब अपने पास रख लें और जिस दिन आपको लगे कि अब इसमें परिवर्तन करने की कोई गुंजाइश नहीं, उस दिन डालें, उसके पहले नहीं।
आठ दिन बाद वे मेरे पास आए और उन्होंने कहा, पत्र डालने की कोई जरूरत
ही नहीं है।
जो क्रोध के क्षण में गालियां उगली थीं वह पत्र भी मौजूद था, दूसरी सुबह जो पत्र लिखा था वह भी, आठ दिन बाद कोई लिखने की जरूरत न रही, क्यों? आठ दिन में जितना उन्होंने गौर से देखा, उतना ही क्रोध की व्यर्थता दिखाई पड़ती चली गई।
गुरजिएफ एक फकीर था, उसके पिता ने उससे मरते वक्त कहा, एक बात ख्याल रखना, अगर किसी को प्रेम देना हो तो एक क्षण की भी देर मत करना। आदमी बहुत कंजूस है, एक क्षण भी रुक जाए तो फिर प्रेम नहीं देता है। और किसी को गाली देना हो तो एक क्षण की देर जरूर कर देना। आदमी बहुत समझदार है, एक क्षण रुक जाए तो फिर किसी को गाली नहीं देता है।
जिंदगी में देखने का सूत्र चाहिए, चौबीस घंटे हम कुछ कर रहे हैं--बिना देखे कर रहे हैं--क्रोध, घृणा, सब बिना देखे कर रहे हैं। लोगों को भी नहीं देख रहे हैं, आंखें बंद हैं; इस बंद आंख में फिर हम जो भी करते हैं उससे जीवन उलझता चला जाता है। तो जीवन की समस्या के प्रति आंख खुली चाहिए। इस खुली आंख को ही हम दर्शन कहते हैं। दर्शन किताबों में नहीं है, फिलासफी की किताबों में नहीं है। दर्शन है देखने वाले की क्षमता में। और जो आदमी देखने लगता है, देखने लगता है, ऑब्जर्व करता है, निरीक्षण करता है, देखता है--एक बात दिखाई पड़ जाती है, बाहर की दौड़ व्यर्थ हो जाती है, क्रोध की दौड़ व्यर्थ हो जाती है, हिंसा की दौड़ व्यर्थ हो जाती है। फिर क्या बचता है? फिर क्या शेष रह जाता है? जब बाहर की सारी दौड़ व्यर्थ हो जाती है, तो एक क्रांति हो जाती है भीतर, भीतर की तरफ गमन शुरू हो जाता है।
क्या आपको यह पता है--जिंदगी में कोई चीज थिर नहीं है, ठहरी हुई नहीं है। अगर बाहर की तरफ सारी दौड़ बंद हो जाए, तो जीवन अपने आप भीतर की तरफ गति करने लगता है। भीतर की तरफ गति करनी नहीं होती, बाहर के सब द्वार बंद हो जाएं, तो जीवन भीतर की तरफ गति करने लगता है।

अगर हम, एक झरना बहता हो, उसे बंद कर दें, तो झरना दूसरा मार्ग खोज लेता है। चेतना की जो धारा है, जो स्ट्रीम ऑफ कांशसनेस है, वह बाहर की तरफ बह रही है। अगर बाहर की दौड़ व्यर्थ मालूम हो जाए, तो चेतना की धारा कहां जाएगी? दो ही दिशाएं हैं चेतना के लिए, तीसरी कोई दिशा नहीं, या तो बाहर या भीतर। अगर बाहर की सारी दौड़ मीनिंगलेस मालूम हो, दिखाई पड़ जाए कि व्यर्थ है, तो चेतना अपने आप अंतर्गमन करती है, भीतर प्रवेश करती है। और चेतना का जो अंतर्गमन है, वही परमात्मा में प्रवेश है। चेतना का जो अंतर्गमन है, वही धर्म में प्रवेश है। चेतना का जो अंतर्गमन है, वही सत्य में, वही जीवन में प्रवेश है। और जिस दिन चेतना भीतर पहुंचती है, उस दिन जानते हैं हम--क्या है जीवन, क्या है सत्य, क्या है परमात्मा। उसी दिन सार्थकता का अनुभव और कृतार्थता का अनुभव होता है। उस दिन हम जानते हैं कि भीतर खाली नहीं है। जिसे हमने खाली समझा था वह हमारी भूल थी। भीतर तो सब भरा है, भीतर तो परमात्मा है। लेकिन बाहर को खोने को जो राजी होते हैं, वे ही केवल भीतर की पूर्णता को पाने में समर्थ हो पाते हैं। जो बाहर को भरते रहते हैं, वे भीतर को खो देते हैं।
एक छोटी सी कहानी, और मैं अपनी चर्चा पूरी करूंगा।
एक भिक्षु एक दिन सुबह अपने घर के बाहर आया, अपनी झोली कंधे पर उसने डाल ली थी और अपनी झोली में घर से चलते वक्त थोड़े से चावल के दाने भी डाल लिए थे। जो समझदार भिखारी होते हैं वे हमेशा ऐसा करते हैं। जो नासमझ होते हैं वे खाली झोली लेकर दूसरों के घर के सामने खड़े हो जाते हैं। जो समझदार होते हैं वे अपनी झोली में कुछ दाने घर से डाल कर निकलते हैं। उससे दो फायदे हो जाते हैं। देने वाले को ऐसा लगता है कि मैं अकेला ही देने वाला नहीं हूं, और लोगों ने भी दिया है। और देने वाले के अहंकार को चोट पहुंचती है, कि जब दूसरों ने दिया और मैं न दूं, तो अहंकार को धक्का लगता है। और फिर देने वाले को यह भी सुख मिलता है कि मैं ही अकेला इसके चक्कर में नहीं पड़ा हूं, दूसरे लोग भी पड़ चुके हैं। मैं कोई अकेला ही इसके चक्कर में नहीं पड़ गया हूं, मैं कोई अकेला ही मूढ़ नहीं बनाया जा रहा हूं, और लोग भी बनाए जा चुके हैं। इसलिए समझदार भिखारी अपनी थाली में थोड़े पैसे डाल लेते हैं, थोड़े चावल डाल लेते हैं।
यहां जो ऐसे भिखारी आए हों जो बिना ही डाले निकल जाते हों, तो उनको डाल
कर निकलना चाहिए। यहां भी कुछ जरूर आए होंगे। जरूर आए होंगे, यह बिल्कुल असंभव है कि यहां न आए हों। क्योंकि भिखारी सब तरफ कुछ न कुछ खोजने की कोशिश में भटकते ही रहते हैं। कोई सत्य की तलाश में कहीं जाता है, कोई ज्ञान की तलाश में कहीं जाता है। वे सब भिखारी हैं, वे सब मांगने गए हैं-- कहीं कुछ मिल जाएगा। कहीं कुछ मिलता है? लेकिन दौड़ चलती है।
वह भिखारी भी सुबह से निकला। जैसे ही राजपथ पर पहुंचा, सूरज उगता था,
और आता था दूर से राजा का रथ, स्वर्ण से बना, रत्नों से खचित। सूर्य की किरणों में चमकता था रथ, दूसरा सूर्य ही मालूम पड़ता था। भिखारी की आंखें चकाचौंध से भर गईं और भिखारी ने धन्यवाद दिया अपने भाग्य को और कहाः धन्य हूं आज। रोज जाता था राजमहल तक, द्वार के सिपाही ही भगा देते थे, कभी राजा तक पहुंच नहीं पाया। आज तो मौका मिल गया है, मार्ग पर ही राजा मिल गया है, तो आज तो जी भर कर मांग लूंगा। हो सकता है सदा के लिए मांगना ही छूट जाए। सोचते ही सोचते में समय बीत न पाया और राजा का रथ सामने आ गया। उड़ती थी धूल, भिखारी घबड़ाया हुआ खड़ा था, राजा को देख कर भूल गया भिक्षा के पात्र को उठाना, कभी राजा को देखा नहीं था। इसके पहले कि वह अपनी झोली फैलाता, राजा ने अपनी झोली फैला दी और उस भिखारी से कहा, आज तो यही सोच कर निकला था, जो भी पहला व्यक्ति मिल जाएगा उसके सामने भिखारी बन जाऊंगा। राजा बने-बने बड़ी पीड़ा में पड़ गया हूं, अब तो भिखारी बन जाना चाहता हूं। राजा बने-बने बहुत पीड़ा झेल ली है, अब तो भिखारी बन जाना चाहता हूं। तो सोचा था आज कि जो भी पहला व्यक्ति मिल जाएगा, उसी के सामने भिखारी बन जाऊंगा। तुम ही मिल गए, मुझे कुछ दान करो!
भिखारी की मुसीबत आप समझ सकते हैं, पहाड़ गिर गया। सोचा था मांग लेगा, बात उलटी हो गई, यहां कोई और मांगने वाला मिल गया। जीवन में कभी किसी को दिया न था, हमेशा लिया था, देने की कोई आदत न थी। झोली में हाथ डालता था,

खाली वापस निकाल लेता था, देने की हिम्मत न पड़ती थी। थोड़े से चावल के दाने थे, छूटते न थे। किससे छूटते हैं? दाने कितने ही छोटे हों, थोड़े हों, छूटते किससे हैं? उससे भी नहीं छूटते थे। झोली में हाथ डालता, वापस निकाल लेता। राजा ने कहा, जल्दी करो, जो भी देना हो दे दो। न देना हो, इनकार कर दो।
बड़ी हिम्मत की, मुट्ठी बांधी, एक दाना बाहर निकाला और राजा की झोली में डाल दिया। एक दाना! साहस की बात थी, ऐसे एक दाना भी कौन छोड़ सकता है? और भिखारी कैसे छोड़ सकता है? राजा बैठा रथ में, चला गया, धूल उड़ती रह गई, भिखारी पछताता रह गया। जो मिलना था वह तो मिला नहीं, वे सपने तो धूल-धूसरित हो ही गए और पास का एक दाना चला गया।
जिंदगी बड़ी गड़बड़ है। मांगने निकलते हैं, उलटा खोना हो जाता है। खोजने निकलते हैं, उलटे गंवा कर लौट आते हैं। उस भिखारी के साथ भी यह हो गया। सभी भिखारियों के साथ यह होता है। खोजने निकलते हैं, पाने निकलते हैं, बाद में पाते हैं कि गंवा कर लौट आए, पास में भी जो था वह भी गया। दिन भर उसने भीख मांगी, लेकिन... बहुत भिक्षा मिली उस दिन, सारी झोली भर गई... लेकिन झोली भरने से कोई सुख न हुआ, एक दाना जो खोया था उसकी पीड़ा बड़ी थी। झोली कितनी ही भर जाए, कोई फर्क न पड़ेगा, जो खोया है उसकी पीड़ा न छूटेगी। रोता सा मन लिए घर लौटा।
पत्नी ने कहा, बड़े उदास हो? लेकिन झोली तो बहुत भरी है!
उसने कहा, और भरी हो सकती थी। लेकिन एक दाना पास का भी चला गया। और अजीब था वह राजा, हम भिखारियों से भी भीख मांगने को तैयार हो गया।
सच तो यह है कि राजा अगर भिखारियों से भीख न मांगें तो राजा कैसे बनें? भिखारियों को लूट कर ही कोई राजा बनता है। तो उसने भी भिखारी से भीख मांग ली थी तो कुछ बुरा न किया था। लेकिन भिखारियों को यह कभी समझ में नहीं आया है कि राजा भिखारियों से मांग कर ही राजा बनते हैं। उसकी भी समझ में नहीं आता था। उसने अपनी पत्नी से कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गया। एक राजा मिल गया था। सोचा था कुछ मिलेगा, उलटा उसने मुझसे छीन लिया।
झोली खोली, पूरी झोली भरी थी अन्न के दानों से। पूरी झोली गिरी, छाती पीटने लगा वह भिखारी। बड़ा मुश्किल हो गया। अभी किसी और बात के लिए दुखी था, अब किसी और बात के लिए दुखी हो गया। झोली खोल कर देखाः एक दाना सोने का हो गया था। तब रोने लगा, चिल्लाने लगा कि यह तो बड़ी भूल हो गई। काश, मैंने सभी दाने दे दिए होते तो सभी सोने के हो जाते!
जीवन में जो बाहर के दाने बटोरता है, भीतर की जिंदगी मिट्टी की हो जाती है। जो बाहर के दाने छोड़ता है, भीतर की जिंदगी सोने की हो जाती है। जिंदगी के आखिर में पता चलता है कि जो इकट्ठा किया था वह मिट्टी का साबित होता है, जो दे दिया था वह सोने का हो जाता है। धन्य हैं वे लोग जो बाहर के जीवन को छोड़ पाते हैं; क्योंकि भीतर के जीवन को स्वर्ण का बना हुआ पाते हैं। और वे लोग जो बाहर के जीवन को पकड़े ही पकड़े रह जाते हैं, उनकी झोली कितनी ही भर जाए, उनके दुख का कोई अंत नहीं। और आखिर में वे रोएंगे इस बात के लिए कि जो हमने पकड़ लिया था वही मिट्टी का हो गया और जो हमने छोड़ा था वही केवल सोने का।
लेकिन उस भिखारी ने तो एक दाना छोड़ा था, इसलिए सोने का हो गया। उन भिखारियों का क्या होगा जिन्होंने एक दाना भी नहीं छोड़ा है?
इसी बात पर अपनी चर्चा को छोड़ देता हूं। फिर से दोहरा देता हूंः उस भिखारी ने तो एक दाना छोड़ा था, इसलिए वह सोने का हो गया। लेकिन उन भिखारियों का क्या होगा जिन्होंने एक भी दाना नहीं छोड़ा है?
मेरी बात को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अत्यंत आनंदित और अनुगृहीत हूं। परमात्मा करे भीतर का जीवन कभी सोने का हो जाए। लेकिन केवल उन्हीं का भीतर का जीवन सोने का हो सकता है, जो बाहर की मिट्टी को छोड़ने और बाहर की मिट्टी को मिट्टी समझने में समर्थ हो जाते हैं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन रहस्य
ग्यारहवां प्रवचन

प्रेम करना; पूजा नहीं

एक खलीफा सिकंदरिया पहुंचा था। और सिकंदरिया के बहुत बड़े विराट पुस्तकालय में उसने आग लगवा दी थी। उस खलीफा ने जाकर उस पुस्तकालय के अध्यक्ष को कहा था--एक हाथ में कुरान लेकर और एक हाथ में मशाल--उससे कहा था कि मैं यह पूछने आया हूं कि कुरान में जो कुछ लिखा है, तुम्हारे इस पुस्तकालय में जो किताबें हैं, क्या उनमें भी वही लिखा है जो कुरान में लिखा है? अगर वही लिखा है तो इतनी किताबों की कोई जरूरत नहीं, कुरान काफी है, कुरान पर्याप्त है। और अगर तुम यह कहो कि इन किताबों में ऐसी बातें भी लिखी हैं जो कुरान में नहीं हैं, तो मैं कहूंगा, ये किताबें खतरनाक हैं; क्योंकि सत्य सब कुरान में लिखा है, उसके अतिरिक्त जो भी है वह असत्य है। दोनों हालतों में मैं कुरान की कसम लेकर और कुरान को साक्षी रख कर इस मशाल से इस पुस्तकालय में आग लगाता हूं।
और उसने बड़े पवित्र भाव से, बड़े धार्मिक भाव से उस पुस्तकालय में आग लगा दी। वह पुस्तकालय इतना बड़ा था कि छह महीने तक उन किताबों में लगी हुई आग नहीं बुझाई जा सकी थी। उसके हाथ में शास्त्र था, पुस्तकालय में किताबें थीं।
शास्त्र हमेशा पुस्तकों के खिलाफ है। शास्त्र का मतलब है--कोई किताब
जो पागल हो गई है या उसके मानने वाले पागल हो गए हैं। और यह दावा करने लगे हैं कि यह परम सत्य है, इसके अतिरिक्त सब असत्य है।
किताब के मैं खिलाफ नहीं हूं। जिस दिन गीता एक किताब होगी, और कुरान
एक किताब होगी, और बाइबिल एक किताब होगी--वह स्वागत के योग्य होगी। लेकिन जब तक वे शास्त्र हैं, तब तक वे खतरनाक हैं। तब तक उनसे बचने की जरूरत है। मेरे शब्दों का जो संग्रह किया जा रहा है वे किताबें हैं। उन किताबों में कोई भी शास्त्र होने का दावा नहीं है। और न उन किताबों का यह दावा है कि जो मैं कह रहा हूं वही सत्य है। न उन किताबों का यह दावा है कि मेरी जो बात मान लेगा वह मोक्ष चला जाएगा और स्वर्ग का अधिकारी हो जाएगा। और जो मेरी बात नहीं मानेगा उसे नरक में सड़ना पड़ेगा। नहीं, उन किताबों में यह कोई दावा नहीं है। वे किताबें विनम्र निवेदन हैं इस बात की कि मुझे जो दिखाई पड़ता है वह मैं कह रहा हूं, ताकि मैं आपको साझीदार बना सकूं। अनुयायी नहीं! शास्त्र अनुयायी बनाता है; किताबें केवल साझीदार बनाती हैं--शेयरिंग। किताब सिर्फ शेयर करना चाहती है। शास्त्र अनुयायी बनाना चाहता है। शास्त्र कहता हैः मेरे पीछे आओ! किताब कहती है कि मेरी सुन लो, इतनी ही तुम्हारी बड़ी कृपा है। पीछे आने का कोई सवाल नहीं है।
तो एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि मैं जो कह रहा हूं वह शास्त्र नहीं
है, न जो लिखा जा रहा है वह शास्त्र है। और सच तो यह है कि बुद्ध ने जो कहा था वह भी शास्त्र नहीं था, महावीर ने जो कहा था वह भी शास्त्र नहीं था, कृष्ण ने जो कहा था वह भी शास्त्र नहीं था। वह सब अपने मित्रों के साथ अपने अनुभव में साझीदार, अपने अनुभव में साथी बनाने का प्रयास था।
लेकिन उन किताबों के आसपास झुंड खड़ा हो गया भीड़ का। अनुयायी खड़े हो गए। और उन्होंने दावे करने शुरू किए कि हमारी जो किताब है वह साधारण किताब नहीं है, वह शास्त्र है। दूसरी सब किताबें हैं; हमारी किताब शास्त्र है। दूसरी सब आदमियों की लिखी हुई किताबें हैं; हमारी किताब स्वयं परमात्मा का लिखा हुआ शास्त्र है। हमारी किताब स्वर्ग से उतरा हुआ संदेश है। हमारी किताब ईश्वर के द्वारा भेजे गए पैगंबर की किताब है, मैसेंजर की। हमारे वेद स्वयं परमात्मा के हाथ से लिखे गए हैं, मनुष्य के हाथों से नहीं। वे अपौरुषेय हैं। जब इस तरह के गलत दावे खड़े हो जाते हैं, तो किताब शास्त्र हो जाती है।
जैसे आदमी पागल हो जाता है, ऐसे ही किताबें भी पागल हो जाती हैं। और जब पागल हो जाती हैं तो उनको हम शास्त्र कहते हैं। शास्त्रों के मैं खिलाफ हूं, किताबों के मैं कभी खिलाफ नहीं। दुनिया में किताबें जितनी बढ़ें उतना

अच्छा है, शास्त्र जितने कम हो जाएं उतना अच्छा है। गीता बहुत अदभुत किताब है, बहुत प्यारी है। लेकिन जैसे ही वह शास्त्र हो जाती है, विषाक्त हो जाती है, पायजनस हो जाती है। किताब रह कर वह सिर्फ कृष्ण के अनुभव की अभिव्यक्ति है। और वह आपको निमंत्रण देती है कि मुझे सुनो, मेरी बात सुन लो, तो आपकी कृपा है। सोच लो मेरी बात, आपका बड़ा अनुग्रह है। मेरी बात पर विचार कर लो और अगर कुछ ठीक लगे--ठीक तुम्हें लगे, तुम्हारी बुद्धि को, तुम्हारे विवेक को--तो ठीक लगते ही वह किताब की बात नहीं रह गई, वह आपकी अपनी बात हो गई।
मैं जो कह रहा हूं, अगर उसमें से आपके तर्क और विचार और बुद्धि को कोई बात ठीक लगे, सोचने से ठीक लगे, विचारने से ठीक लगे, संदेह करने से ठीक लगे, तो फिर वह मेरी नहीं रह गई, वह आपकी हो गई। और बिना सोचे, बिना विचारे, विश्वास करने से ठीक लगे, तो वह बात मेरी है और आप अंधे आदमी हो।
शास्त्र दावा करता है कि आप अंधे हो जाओ। शास्त्र कहता हैः मुझ पर विचार मत करना। क्योंकि जो ईश्वर के वचन हैं उस पर मनुष्य विचार कैसे कर सकता है? आदमी की अदालत में और ईश्वर को खड़ा किया जा सकता है? आदमी की बुद्धि की कसौटी पर और परमात्मा के वचन नापे जा सकते हैं? नहीं, यह असंभव है। शास्त्र पर विचार नहीं किया जा सकता, शास्त्र पर सिर्फ विश्वास किया जा सकता है। उस किताब को मैं शास्त्र कहता हूं, जो कहती हैः विश्वास करो, विचार नहीं। जो कहती हैः अनुगमन करो, अनुकरण करो, अनुयायी बनो; जो कहा है वह परम सत्य है, वह सर्वज्ञ की वाणी है, वह तीर्थंकर का वचन है; उस वचन में कभी भी भूल नहीं हो सकती।
ये जो दावे हैं, ये दावे अगर किसी दिन मेरी किताबें करें, तो उन सारी किताबों को इकट्ठा करके आग लगा देना। कृष्ण की किताब को आग लगाने के लिए मैं नहीं कह सकता हूं। मोहम्मद की किताब को आग लगाने को नहीं कह सकता हूं। लेकिन कम से कम अपनी किताब को आग लगाने के लिए कहने का हक मुझे है। जिस दिन मेरी कोई किताब दावा करे कि यह शास्त्र है, उस दिन उसमें एकदम आग लगा देना और भूल से उसको कहीं बचने मत देना दुनिया के किसी कोने में। अगर वह रह गई तो वह खतरनाक साबित होगी और आदमी की जिंदगी को बर्बाद करेगी और नुकसान पहुंचाएगी।

उन्हीं मित्र ने एक बात और पूछी है, और उनके दोनों प्रश्नों का जवाब देना जरूरी है, क्योंकि नीचे उन्होंने लिखा है कि अगर आपने जवाब नहीं दिया तो मैं बहुत दुखी हो जाऊंगा।
उन्होंने दूसरी बात यह पूछी है कि आपके चित्र भी बिकते हैं और लोग आपके चित्र भी अपने घरों में लगाते हैं। और आप तो मूर्ति के विरोध में हैं!

मैं मूर्ति के विरोध में हूं, और चित्र के विरोध में कभी भी नहीं हूं। मूर्ति और चित्र में भी वही फर्क है जो किताब और शास्त्र में फर्क है। मैंने कभी नहीं कहा कि राम के चित्र को अपने घर में मत लगाना। मैंने कभी नहीं कहा कि महावीर के चित्र को अपने घर में मत लगा लेना। मैंने यह भी नहीं कहा कि महावीर की पत्थर की प्रतिमा अपने घर में मत रख लेना। महावीर जैसे प्यारे आदमी की स्मृति घर में रखी जा सकती है। बुद्ध जैसे प्यारे आदमी की स्मृति जिस घर में नहीं है वह घर अधूरा है। और जीसस का सूली पर लटका हुआ चित्र जिस घर के भीतर नहीं है, उस घर के बच्चों को पता नहीं कि कितने अदभुत लोग जमीन पर हो चुके हैं।
लेकिन पूजा मत करना। प्रेम करना; पूजा नहीं। क्योंकि पूजा दूसरा ही अर्थ रखती है। पूजा यह कहती है कि इस पत्थर की मूर्ति के सामने हाथ जोड़ने से मुझे मुक्ति मिल सकती है। यह बेवकूफी की शुरुआत हो गई। किसी मूर्ति के और किसी चित्र के सामने बैठने से मुक्ति नहीं मिल सकती। और कोई मूर्ति और कोई चित्र भगवान तक पहुंचने का रास्ता नहीं बन सकता। कोई मूर्ति भगवान नहीं है। मूर्ति और चित्र उन प्यारे लोगों की स्मृतियां हैं जो जमीन पर हो चुके हैं। और उनकी स्मृति न रखी जाए, यह मैंने कभी भी नहीं कहा है।
मैं मूर्तियों के मंदिर बनाने के खिलाफ हूं। लेकिन घर-घर में मूर्तियां हों, इसके पक्ष में हूं। एक-एक घर में मूर्तियां हों। लेकिन

मूर्तियां भगवान की तरह नहीं; एक पवित्र स्मरण की तरह, एक सैक्रेड रिमेंबरिंग की तरह। जमीन पर कुछ फूल हुए हैं मनुष्य के जीवन में, कुछ मनुष्य हुए हैं जो खिल गए हैं पूरे, उनकी याद अगर आदमी रखे तो मैं कैसे उसके खिलाफ हो सकता हूं?
एक अदभुत घटना सुनाता हूं। सुन कर बहुत हैरानी होगी।
रामकृष्ण परमहंस का किसी ने एक चित्र उतारा। और चित्र उतार कर जब वह चित्र बना कर लाया, तो रामकृष्ण ने उस चित्र के पैर पड़े और सिर से चरण लगाए उस चित्र के। उनका ही चित्र था, रामकृष्ण का ही। पास में बैठे लोग तो बड़े हैरान हो गए कि यह क्या पागलपन है? अपने ही चित्र को रामकृष्ण हाथ जोड़ कर पैर छूते हैं, सिर से लगाते हैं। यह क्या पागलपन है! सहने के बाहर हो गई यह बात! और किसी बैठे हुए संन्यासी ने पूछा कि परमहंसदेव, यह क्या करते हैं आप? अपने ही चित्र को!
रामकृष्ण ने कहा, यह मुझे ख्याल ही नहीं रहा कि चित्र मेरा है। चित्र देख कर मुझे ख्याल आया कि किसी समाधिस्थ आदमी का चित्र है। और समाधि को नमस्कार करने का मन हो गया, मैंने नमस्कार कर लिया। तुम याद दिलाते हो तो मुझे ख्याल आया कि चित्र मेरा है। अरे लोग हंसेंगे जब उन्हें पता चलेगा कि मैंने अपने ही चित्र के पैर छू लिए, लेकिन मैंने सिर्फ समाधिस्थ भाव के पैर छुए हैं।
लेकिन यह बात समझनी थोड़ी कठिन हो जाएगी। महावीर का चित्र महावीर का चित्र नहीं है। बुद्ध की मूर्ति बुद्ध की मूर्ति नहीं है। ये समाधिस्थ चेतनाओं के स्मरण हैं।
और कभी आपने ख्याल किया, जैनों के चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां हैं, अगर उनके नीचे चिह्न न बने हों और आपको बताया न जाए ये किसकी मूर्तियां हैं, आप पहचान सकते हैं किसकी मूर्तियां हैं? चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियों में पहचान बता सकते हैं आप--यह महावीर की है, यह नेमी की है, यह पार्श्व की है, यह ऋषभ की है--किसी की बता सकते हैं? नहीं बता सकते। क्योंकि वे मूर्तियां आदमियों की मूर्तियां नहीं हैं, वे केवल भावदशाओं की मूर्तियां हैं, वे सब बिल्कुल एक जैसी हैं। उन मूर्तियों में कोई भी फर्क नहीं है। क्या फर्क है उन मूर्तियों में?
सच तो यह है, जैसे-जैसे आत्मा प्रकट होनी शुरू होती है, शरीर गौण हो जाता है। शरीर का भाव गौण हो जाता है, आत्मा की अभिव्यक्ति तीव्र होने लगती है, तीव्र होने लगती है। एक बल्ब है बिजली का, बिना जला हुआ लटका है, तब तक बल्ब दिखाई पड़ता है। जल जाए, फिर रोशनी दिखाई पड़ती है, बल्ब दिखाई नहीं पड़ता। और जितनी तेज रोशनी होगी, बल्ब उतना ही दिखाई नहीं पड़ेगा। वैसे ही भीतर का दीया जब तक बुझा है तब तक शरीर दिखाई पड़ता है, जब भीतर का दीया जल जाता है तो शरीर दिखाई नहीं पड़ता, फिर भीतर की रोशनी दिखाई पड़ने लगती है।
वह रोशनी प्रकट हुई है न मालूम कितने लोगों से। उन लोगों की प्यारी स्मृतियों को लोगों ने संजो कर रखा है, तो मैं उसका दुश्मन नहीं हूं। वे स्मृतियां संजोई जा सकती हैं। लेकिन जब हम इस भूल में पड़ते हैं कि उन संजोई गई स्मृतियों के आधार पर, चित्रों और मूर्तियों के आधार पर हम मोक्ष पहुंच जाएंगे और मुक्ति पा लेंगे, तो गलती शुरू हो जाती है। मुक्ति तो खुद महावीर भी चाहें तो किसी आदमी को मुक्त नहीं करा सकते, तो महावीर की मूर्ति तो क्या करेगी! कोई किसी को धक्के देकर मोक्ष में भेज सकता है? कोई घसीट कर किसी को मोक्ष में ले जा सकता है? आज तक तो यह नहीं हो सका कि कोई आदमी किसी को मोक्ष में ले जा सके। खुद महावीर और बुद्ध और जीसस नहीं ले जा सकते किसी को मुक्ति में, तो उनके चित्र तो क्या ले जा सकेंगे!
लेकिन चित्र न टांगे जाएं घरों में, यह मैं नहीं कह रहा हूं। चित्रों
के टांगने का कारण दूसरा है। ऐस्थेटिक, बहुत सौंदर्यगत मूल्य है उनका, बहुत स्मृतिगत मूल्य है। लेकिन पूजागत मूल्य बिल्कुल नहीं है।

इसी से संबंधित एक बात और दूसरे मित्र ने पूछी है। उन्होंने पूछा है
कि आप उठते हैं--कोई हाथ जोड़ता है आपको, कोई आपके पैर छूता है, तो मुझे बहुत

हैरानी होती है। उन्होंने लिखा है कि उन्हें बहुत हैरानी होती है। क्यों कोई पैर छुए किसी के? क्यों कोई किसी को हाथ जोड़े?

बहुत हैरानी की बात तो है, कोई क्यों किसी के पैर छुए! कोई क्यों किसी
के हाथ जोड़े! लेकिन उन मित्र ने शायद कभी नहीं सोचा होगा, मैं भी पक्ष में नहीं हूं कि कोई किसी के पैर छुए और कोई किसी के हाथ जोड़े। लेकिन एक शर्त बता देनी जरूरी हैः अगर वह सोचता हो कि पैर छूने से कुछ हो जाएगा तो गलती में है। अगर वह सोचता हो कि हाथ जोड़ने से कोई प्रसाद मिलेगा, कोई आशीर्वाद मिलेगा, तो वह भूल में है। वह बहुत सस्ते सौदे करने की कोशिश में लगा हुआ है। वह मूढ़ है, अगर वह सोचता है कि किसी के पैर छूने से कुछ हो जाने वाला है। अगर इस कारण कोई किसी के पैर छू रहा है तो गलती कर रहा है। वह वही पूजा वाली बात शुरू हो गई, वह भूल कर रहा है। और भूल कर ऐसी भूल नहीं करनी चाहिए। कम से कम मेरे साथ तो नहीं करनी चाहिए।
लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि पैर छू लेना पाप
है किसी का। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि पैर अगर इस कंडीशन के साथ, इस शर्त के साथ छुए जा रहे हैं कि पैर छूने से कुछ मिलेगा, तो गलत है बात, कुछ नहीं मिलने वाला है। लेकिन अगर कुछ मिल गया है और सिर्फ अनुग्रह में पैर छुए जा रहे हैं, तो दुनिया में पैर छूना कभी नहीं रोका जा सकता। अगर पैर छूना सिर्फ एक धन्यवाद है!
और आप कहेंगे कि धन्यवाद तो हाथ जोड़ कर भी दिया जा सकता है, पैर छूने
की क्या जरूरत है?
लेकिन शायद आपको पता नहीं है, जब आपको क्रोध आता है किसी आदमी पर तो आप जूता निकाल कर उसके सिर पर क्यों मार देना चाहते हैं? कभी सोचा है? सारी दुनिया में, यह कोई भारत और चीन और किसी एक देश की बात नहीं है, सारी दुनिया में, आदमी क्रोध से भर जाए तो जूता निकाल कर किसी के सिर पर क्यों मार देना चाहता है? सिर पर जूता मारने से क्या हो जाएगा? पागलपन है न! जूते को सिर में लगाने से क्या हो सकता है?
जब कोई आदमी प्रेम से भर जाता है पृथ्वी पर कहीं भी, तो किसी को अपने हृदय से क्यों लगा लेना चाहता है? हृदय से लगाने से प्रेम का क्या संबंध है? हड्डियां हड्डियों से मिल जाएंगी, इससे क्या प्रेम हो जाएगा? लेकिन शायद ही आपने कभी पूछा होगा कि दो प्रेमी एक-दूसरे को हृदय से क्यों लगाते हैं? और दो क्रोध में उन्मत्त व्यक्ति अपने पैर को दूसरे के सिर से क्यों लगाना चाहते हैं? अब इतनी छलांग लगानी मुश्किल है कि किसी के सिर पर खड़े हो जाओ, इसलिए जूता प्रतीकात्मक रूप से उसके सिर पर लगाते हैं। लगाना पैर चाहते हैं उसके सिर पर, लेकिन पैर लगाना जरा मुश्किल बात है। उतना हाई जंप कठिन पड़ेगा। तो उसके लिए जूता निकाल कर, सिंबालिक, कि लगा दिया पैर तुम्हारे सिर से।
क्रोध में आदमी अपने पैर को किसी के सिर से लगाना चाहता है। प्रेम में किसी को अपने हृदय से लगाना चाहता है। और रेवरेंस में, श्रद्धा में, आदर में क्या करे? ठीक क्रोध से उलटी अवस्था है वह। वह किसी के पैर से अपने सिर को लगा देना चाहता है। यह सिर्फ प्रतीकात्मक है, इनका इससे ज्यादा अर्थ नहीं है। इनसे कुछ मिलने वाला नहीं है। कुछ भीतर घटना घटी है, उसे अभिव्यक्त करने के माध्यम हैं ये।
हम किसी आदमी को प्रेम करते हैं, उसका हाथ हाथ में ले लेते हैं। हाथ में हाथ लेने से क्या होने वाला है? लेकिन नहीं, कहीं प्रेम घटित हुआ है और आदमी असमर्थ है, कैसे उसे प्रकट करे? कहीं उसे लगा है कि भीतर मैं जुड़ गया हूं, उस जोड़ को कैसे जाहिर करे? वह हाथ को हाथ में लेकर जोड़ जाहिर करता है। और भी भीतर गहरा मालूम पड़ता है कि मैं जुड़ गया हूं, तो वह किसी को हृदय से हृदय लगा लेता है, वह आलिंगन कर लेता है। वह यह जाहिर करता है कि भीतर मैं इतना मिल गया हूं कि तुम्हें कहना चाहता हूं शरीर के प्रतीकों से कि मिलन हो गया है।
मैं नहीं चाहता कि कोई किसी के पैर छुए। लेकिन कोई घड़ी ऐसी हो सकती है
कि पता ही न चले कि हमने किसी के पैर छू लिए हैं, तब बात दूसरी है। अगर सोच कर, विचार कर और हिसाब लगा कर पैर छूते हों, तो बिल्कुल फिजूल मेहनत कर रहे

हैं, कवायद कर रहे हैं, इससे कोई फायदा नहीं है। तो कभी भूल कर किसी का सोच कर पैर मत छूना कि यह आदमी, दूसरे लोग इसके पैर छूते हैं इसलिए मैं छू लूं। बेकार मेहनत है। इसके पैर छूने से कोई स्वर्ग और वैतरणी पार हो जाएंगे। गलती में हैं, धोखे में हैं। इसके पैर छूने से ज्ञान मिल जाएगा। फिजूल की आकांक्षा कर रहे हैं, व्यर्थ की आकांक्षा कर रहे हैं। लेकिन किसी क्षण में ज्ञात भी नहीं होता कि हम कहीं झुक गए हैं। उस झुक जाने का एक आध्यात्मिक अर्थ है, एक मूल्य है।
और फिर पूछने जैसा है, विचारने जैसा है कि कोई दूसरा आदमी झुक रहा है
और किसी दूसरे आदमी को परेशानी हो रही है! अगर वे खुद झुक रहे होते और उन्हें परेशानी होती तो समझने की बात थी। एक दूसरा आदमी किसी के पैर में झुक रहा है और वे परेशान हो रहे हैं। अजीब परेशानी है! आप क्यों परेशान हो रहे हैं? मैं क्यों परेशान हो रहा हूं? दो आदमी प्रेम कर रहे हैं। मैं परेशान हो रहा हूं! मैं बेचैन हुआ जा रहा हूं कि दो आदमी प्रेम क्यों कर रहे हैं! यह मेरी बेचैनी क्या बताती है? एक आदमी किसी को आदर और श्रद्धा दे रहा है, धन्यवाद दे रहा है। मैं परेशान हुआ जा रहा हूं। क्यों मैं परेशान हो रहा हूं?
परेशानी के दो-तीन कारण हो सकते हैं। एक, परेशानी का कारण एक तो यह कि दूसरों को झुकते देख कर, मेरा जो भीतर अहंकार है, जो झुकना नहीं जानता-- मेरा जो अहंकार है, जो झुकना नहीं जानता--उसे बड़ी चोट लगती है। अगर कोई भी न झुके तो वह निश्चिंत हो जाता है। अगर कोई झुके तो उसे चोट लगती है।
जैसे तीन आदमी जा रहे हैं और एक भीख मांगने वाला सामने खड़ा हो जाए और
उन तीन में से एक आदमी पैसे निकाल कर भिखमंगे को दे दे और बाकी दो न देना चाहते हों पैसे, तो उसके देने से चोट लगती है, क्योंकि अब न देना एक भिखमंगे के सामने अपमानित होना है। अगर इस मित्र ने भी न दिया होता पैसा, तो वे तीनों अपनी अकड़ से जा सकते थे; क्योंकि तीनों ने नहीं दिया था, तीनों बराबर थे।
एक आदमी चोरी करता है और अगर उसे पता चल जाए कि यहां जितने लोग बैठे हैं सब चोर हैं, उसके अपराध का भाव विलीन हो जाता है। क्योंकि कोई डर की बात नहीं, सभी चोरी कर रहे हैं। चोरी आम है। इसीलिए तो आप अखबार उठा कर सबसे पहले देखते हैं कि कहां चोरी हुई, कहां हत्या हुई, कहां क्या हुआ। अपने को विश्वास दिलाने के लिए कि कोई फिक्र नहीं, सब जगह यही हो रहा है। कोई हम ही कर रहे हैं, ऐसा नहीं है, हर आदमी यही कर रहा है। यह तो यूनिवर्सल फिनामिना है। यह तो हर आदमी कर रहा है। इसमें कोई घबड़ाहट की बात नहीं है। एट ई.ज, आदमी को भीतर एक विश्राम मालूम पड़ता है कि सब ठीक है। हम सामान्य आदमी हैं, जैसे सब लोग हैं।
लेकिन अगर एक आदमी के बाबत पता चलता है कि वह ईमानदार है, सच्चा है, तो
आप एकदम से विश्वास नहीं करते। आप हजार चेष्टा करते हैं खोजने की कि वह सच्चा सच में है? ईमानदार सच में है? आप सब उपाय करते हैं पता लगाने का कि वह है भी ईमानदार? और जब तक आप पता नहीं लगा लेते कि अरे सब बेईमानी है वहां भी, सब ऊपर का धोखा था, तब तक एक बेचैनी अनुभव होती है मन में कि यह कैसे हो सकता है कि एक आदमी ईमानदार है और मैं बेईमान हूं! उसकी ईमानदारी मेरी बेईमानी की तुलना में ऊंची मालूम होने लगती है, मैं नीचा मालूम होने लगता हूं। एक इनफीरिआरिटी, एक हीनता पकड़ लेती है। तो चेष्टा चलती है... हम किसी अच्छे आदमी की अच्छाई को एकदम से मानने को राजी नहीं होते। मजबूरी में राजी होते हैं, जब कोई उपाय ही न रहे तब हम मानने को राजी होते हैं। लेकिन एक आदमी के बाबत हमें कोई कहे कि वह बेईमान है, चोर है। हम एकदम मान लेते हैं, हम बिल्कुल खोजबीन नहीं करते। हम बिल्कुल खोजबीन नहीं करते कि हम... एक आदमी ने हमें कहा कि वह चोर है, बेईमान है... हम खोजबीन करें, फिर मानें। नहीं, कोई खोजबीन नहीं करता। बल्कि अगर उसने कहा था कि वह पचास परसेंट चोर है, तो जब हम दूसरे को खबर देते हैं तो वह खबर सौ परसेंट हो जाती है। हमारे दिल को राहत मिलती है इस बात से कि वह आदमी भी बेईमान है। वह जो हमारे भीतर हीनता का भाव था, वह मिट जाता है। और हम उस आदमी की पचास परसेंट चोरी को सौ परसेंट क्यों बताने लगते हैं? क्योंकि हम जितना बड़ा पापी अपने

आस-पास के लोगों को बता सकें, उतना ही हमारा पाप कम और हम ऊपर उठते जाते हैं।
सुना होगा आपने, बहुत पुरानी कहानी है, कि एक सम्राट ने एक लकीर खींच
दी और अपने दरबारियों से कहा कि इसे बिना छुए हुए छोटा कर दो। वे मुश्किल में पड़ गए। लेकिन जो दरबार का कवि था हंसी-मजाक करने वाला, जो दरबार का जोकर था, उसने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। उसने उस लकीर को छुआ भी नहीं और वह छोटी हो गई, क्योंकि बड़ी लकीर नीचे खींच दी गई।
जब हम आस-पास के पाप की खबर सुनते हैं, तो हम उस पाप को बड़ा कर देते हैं एकदम। वह हमारे पाप की लकीर को तो छोटा करना मुश्किल है, लेकिन दूसरे की पाप की लकीरों को बड़ा किया जा सकता है। और तत्काल हमारी लकीर छोटी हो जाती है।
इसीलिए निंदा में इतना रस है। न संगीत में इतना रस है, न अध्यात्म में इतना रस है; निंदा में जो रस है वह अदभुत है। वह रस ही अदभुत है। न वीणा इतना संगीत पैदा कर सकती है, न संत ऐसी वाणी दे सकते हैं, जैसा निंदा में आनंद उपलब्ध होता है। वह क्यों होता है?
तो एक तो कारण यह है कि अगर कोई भी न झुके, तो वह हमारा जो नहीं झुकने
का आदी अहंकार है वह निश्चिंत रहता है। लेकिन आस-पास अगर लोग कभी झुकने लगे, तो हमारी अकड़ को कठिनाई मालूम होने लगती है। तो हम किसी भांति यह ठहराना चाहते हैं कि झुकने वाले गलत हैं, ताकि यह सिद्ध हो जाए कि न झुकने वाला सही है।
लेकिन मैं आपसे कहता हूं, झुकने वाले गलत हैं अगर वे किसी इच्छा से झुकते हों, लेकिन न झुकने वाला हर हालत में गलत है। झुकने वाले सिर्फ एक हालत में गलत हैं, अगर वे किसी इच्छा से झुकते हों। कुछ चाहने के लिए, कुछ पाने के लिए झुकते हों, तो बिल्कुल गलत हैं। लेकिन न झुकने वाला हर हालत में गलत है। क्योंकि न झुकने की जो प्रवृत्ति है, अगर हम गौर से देखें, तो न झुकने की प्रवृत्ति = न सीखने की प्रवृत्ति, दोनों बराबर हैं। एटिट्यूड ऑफ लर्निंग, सीखने की प्रवृत्ति, झुकने की प्रवृत्ति है। जो जितना झुक जाता है, उतना सीखता है। उतना, उतना विनम्र।
एक नदी के घाट पर एक औरत खड़ी थी। वह अपने सिर पर मटकी लिए हुए है और घंटों से खड़ी है। फिर एक दूसरी औरत आई, वह भी मटकी लिए हुए है। वह झुकी, उसने अपनी मटकी में पानी भर लिया और जाने लगी। वह खड़ी औरत बोली, बड़े आश्चर्य की बात है, मैं एक घंटे से खड़ी हूं और मेरी मटकी अभी तक नहीं भरी! उस दूसरी औरत ने कहा कि मटकी तो भर जाती, नदी तो भरने को हमेशा तत्पर थी, लेकिन झुकना तो पड़ेगा, मटकी झुकानी तो पड़ेगी। नदी तो बही चली जाती है। नदी तो कहती नहीं कि मत भरो। नदी तो किसी की भी मटकी में जाने को सदा तत्पर है। लेकिन उनकी ही मटकियों में जा पाती है जो झुकते हैं और नदी के तल तक मटकी को ले आते हैं। तुम अकड़ कर खड़ी हो। तो तुम खड़ी रहो जन्मों-जन्मों तक। यह मटकी नहीं भर सकेगी।
अहंकार कभी भी कुछ नहीं सीख पाता है। विनम्रता सीखती है, ह्युमिलिटी सीखती है। ह्युमिलिटी का मतलब क्या है? विनम्रता का मतलब क्या है? विनम्रता का मतलब हैः झुकने की पात्रता। किसी व्यक्ति के सामने ही नहीं; किसी भगवान के सामने ही नहीं; किसी गुरु के सामने ही नहीं; झुकने की पात्रता! किसी से संबंध नहीं है इस बात का कि आप किसी के लिए झुकें। नहीं, आप झुके हुए हों। यह सवाल नहीं है कि आप किसी के लिए झुकें। झुका हुआ मन हो, प्रतिपल झुकने को तैयार हो। उस झुकने से ही सीखना उपलब्ध होता है। जो नहीं सीखना चाहते, वे अकड़ कर खड़े रह जाते हैं।
अंधविश्वास से भरी हुई विनम्रता व्यर्थ है। लेकिन अहंकार हर स्थिति में व्यर्थ है। और अगर यही चुनना हो--अहंकार में चुनना हो और अंधविश्वास से भरे हुए झुकने में चुनना हो--तो मैं कहता हूं कि दूसरे अंधविश्वास से भरे हुए झुकने को चुन लेना। क्योंकि जो आज अंधविश्वास से झुक रहा है, झुकने के ही कारण इतना सीख लेगा कि उस सीखने की वजह से अंधविश्वास मिट सकता है। लेकिन जो अकड़ कर ही खड़ा है, वह कभी कुछ नहीं सीख पाएगा। और बिना कुछ सीखे अहंकार नहीं मिट सकता है।

इसीलिए पीड़ा होती है कि मैं अकड़ कर खड़ा हूं और कोई दूसरा झुक रहा है।
और भी कारणों से पीड़ा होती है। यह भी पीड़ा हो सकती है नंबर दो कि मेरे भीतर भी झुकने का तीव्र भाव आ गया है, लेकिन सदा की अकड़ने की आदत अकड़ा कर खड़ी है और प्राण झुक जाना चाहते हैं। तो एक भीतर द्वंद्व खड़ा हो गया है। इस द्वंद्व को सुलझाने का एक ही उपाय दिखाई पड़ रहा है कि जो झुक रहे हैं वे गलत कर रहे हैं। ताकि मैं भी अपने भीतर जो झुकने की प्रवृत्ति है उसको कह दूं कि तू गलत है।
अगर भीतर झुकने का भाव पैदा हो गया है तो यह सौभाग्य है, यह धन्यभाग्य है। यह सवाल किसी व्यक्ति के आस-पास झुकने का नहीं है। और मेरे पास तो झुकने का बिल्कुल ही नहीं है। लेकिन झुकने के भाव का बड़ा मूल्य है।
तीसरी बात, आज तक दुनिया में ऐसे लोग हुए हैं जो चाहते हैं कि हमारे चरणों में झुको। अगर गौर से हम देखें, तो वे लोग जो चाहते हैं कि मैं कभी कहीं न झुकूं, सिक्के के एक पहलू हैं; उसी सिक्के का दूसरा पहलू वह आदमी है जो कहता है कि सब मेरे चरणों में झुकें। गुरुओं की जो लंबी परंपरा है, वह इसी तरह के मोहग्रस्त लोगों की परंपरा है जो चाहते हैं कि लोग मेरे चरणों में झुकें। उनकी पांच हजार वर्ष की परंपरा ने अत्यधिक शोषण किया है मनुष्य का। उन झुकाने वाले लोगों ने, जिन्होंने चाहा कि झुको और प्रलोभन दिया झुकने के लिए--कि झुकोगे, पैर छुओगे, चरणों में सिर रखोगे, समर्पण कर दोगे चरणों में मेरे, तो मोक्ष, स्वर्ग, पुण्य, सब उपलब्ध हो जाएगा। मेरी कृपा से सब मिल जाएगा। मेरे आशीर्वाद से सब मिल जाएगा। गुरु-चरणों की कृपा से सब मिल जाएगा। गुरुजन यह समझाते रहे हैं। वे तो यहां तक कहते रहे हैं कि अगर गुरु और गोविंद दोनों खड़े हों, तो पहले गुरु के चरणों में झुक जाना, क्योंकि गुरु ही गोविंद को बताने वाला है। गुरुजन यही समझाते रहे हैं। वे कहते हैं कि बिना गुरु के तो ज्ञान होगा ही नहीं। इसलिए गुरु के चरण पकड़े बिना कोई उपाय नहीं है।
अब यह बड़े मजे की बात है कि अगर गुरु लोग ही यह समझा रहे हों, तो स्पष्ट
है कि प्रयोजन क्या है। तो मैं भी कहता हूं कि जो आदमी झुकाना चाहता हो अपने चरणों में, भूल कर भी उसके चरणों में मत झुकना। जो आदमी कहता हो कि झुको मेरे चरणों में, वह आदमी तो अत्यंत पाप की बात कर रहा है। मत झुकना उसके चरणों में! इस बात के कहने के कारण ही वे चरण अपवित्र हो गए। न तो किसी की आकांक्षा से झुकना, न अपनी आकांक्षा से झुकना कि मुझे कुछ मिल जाएगा। लेकिन अगर कभी वह क्षण आ जाए जीवन में कि पता भी न चले कि हम कब झुक गए हैं, तो उस क्षण को भी चूक मत जाना। क्योंकि उस क्षण में जो उपलब्ध होगा, उस क्षण से गुजर जाने में जो अनुभव होगा, उस क्षण के पहले जो प्रतीति होगी और उस क्षण में जो प्रतीति होगी, उसे बताने का कोई उपाय नहीं कि वह प्रतीति क्या है।
मेरी बात थोड़ी कठिन हो गई। क्योंकि न तो मैं इस पक्ष में हूं कि कोई किसी को समझाए कि मेरे पैरों में झुको, न ही मैं इस पक्ष में हूं कि कोई किसी को समझाए कि कभी झुकना मत; मैं इन दोनों बातों के पक्ष में नहीं हूं। मेरा पक्ष यह है कि झुकने का भी अपना आनंद है; झुकने का भी अपना अर्थ है; झुकने के भी अपने प्रतीक हैं। लेकिन वे ही उन्हें जानते हैं जो अनायास, अकारण, बिना किसी फल की इच्छा के, अचानक पाते हैं कि झुकना हो गया है। उस झुकने का एक आध्यात्मिक मूल्य है। वह एक गेस्चर है, वह एक बहुत स्प्रिचुअल गेस्चर है। वह एक बहुत अदभुत अभिव्यक्ति है। दुनिया से उसको मैं नहीं मिटाना चाहता हूं।
लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उस अभिव्यक्ति के आधार पर कुछ लोग दूसरों को अपने पैरों में झुकाने की शिक्षा दें और शोषण करें। उसके भी मैं पक्ष में नहीं हूं। इसलिए जो आदमी कहता हो कि आओ और पैर छुओ और प्रलोभन देता हो, उस आदमी को क्रिमिनल समझना, उसको अपराधी समझना, और उसको दंडित किए जाने की, अच्छा कोई समाज होगा तो व्यवस्था करेगा वह समाज। लेकिन जो आदमी अकड़ कर खड़ा है और कहता है कि मैं कभी नहीं झुकूंगा और कहीं झुकना भी मत, वह आदमी भी अपराधी है, क्योंकि वह भी एक गलत बात सिखा रहा है।
तूफान आते हैं हवाओं के, आंधियां आती हैं, बड़े दरख्त अकड़ कर खड़े रह जाते हैं, छोटे पौधे झुक जाते हैं और जमीन पर सो जाते हैं। बड़े दरख्त अकड़े

ही रहते हैं, खड़े ही रहते हैं, रेसिस्ट करते हैं, प्रतिरोध करते हैं हवाओं का, और टूट जाते हैं। छोटे पौधे झुक जाते हैं, हवाएं गुजर जाती हैं, पौधे फिर वापस खड़े होकर नाचने लगते हैं, वे जीवित रह जाते हैं। उन छोटे पौधों को झुकने की कोई अदभुत कीमिया पता है जो बड़े पौधों को नहीं है। बड़े पौधे अहंकार की भांति सख्त और कठोर हैं। वे टूटते हैं, लेकिन झुकते नहीं।
और स्मरण रहे, जिसने झुकने की कला छोड़ दी, वह बूढ़ा हो गया और टूटने के करीब पहुंच गया। बच्चे और बूढ़े में यही फर्क है। बच्चा लोचपूर्ण है, फ्लेक्सिबल है, झुकता है, लोच से भरा है, कैसे भी झुक सकता है। बूढ़ा अकड़ गया; झुक नहीं सकता, झुका कि टूट जाएगा। हड्डियां सब मजबूत हो गई हैं, अब कहीं झुकाव मुश्किल है। इसलिए बूढ़ा मरता है और बच्चा जीता है। बच्चा अभी जवान होगा, बूढ़े की सिर्फ मौत आएगी! जिस आदमी की मानसिक तल पर सारी हड्डियां सख्त हो गईं, मन के तल पर सारे स्नायु कठोर और पत्थर के हो गए और झुकने की क्षमता भीतर खो दी, उस आदमी की आत्मा मरने के करीब पहुंच गई, मर चुकी! लेकिन जो वहां भीतर के तल पर भी लोचपूर्ण है और हवाओं में झुकता है, तूफानों में झुकता है, वह व्यक्ति और बड़े जीवन के निकट पहुंचने की पात्रता पैदा कर रहा है।
कभी देखना आंधियों में जब छोटे पौधे झुक जाते हैं--कितने ग्रेसफुली, कितने प्रसादपूर्ण। उनके झुकने में न कोई दयनीयता है, न उनके झुकने में कोई पीड़ा है, न कोई दुख है, उनके झुकने में भी एक सौंदर्य है। और खड़े हुए वृक्षों को भी देख लेना--अकड़े हुए। और उनकी इस अकड़ में न कोई ग्रेस, न कोई प्रसाद है। उनकी अकड़ में सिर्फ एक वहम है कि मैं इतना बड़ा और कैसे झुक सकता हूं?
यही, यह भ्रम तोड़ देगा उन्हें, जड़ों से उखाड़ देगा। और ये छोटे-छोटे पौधे, जिनकी जड़ें भी छोटी-छोटी थीं, तूफान और आंधियां जिन्हें उड़ा कर कहीं भी ले जा सकती थीं, वे जीवित बाहर वापस निकल आएंगे--पहले से भी ज्यादा शक्तिपूर्ण, पहले से भी ज्यादा आनंद से भरे हुए। क्योंकि एक तूफान से गुजर जाना एक अनुभव है और जीवित बच जाना एक उपलब्धि।
जीवन में एक कला, एक कला की जरूरत है कि हम ऐसे तरल, ऐसे सरल, ऐसे विनम्र कि झुकने में कहीं कोई पीड़ा न मालूम हो। जिसे झुकने में पीड़ा मालूम होती है, वह जीवन की लोचपूर्ण कला को नहीं जानता है।
लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि जो... झुकने का मतलब यह नहीं है, विनम्र होने का, सरल होने का, तरल होने का यह मतलब नहीं है कि आप आंखें बंद कर लें, अंधे हो जाएं, इसका यह मतलब नहीं है कि जो कोई भी आपको कहे कि चलो झुको, और जोर से आवाज दे, वहीं आप झुक जाएं।
मैं आपको कहता हूं--यह बात बहुत पैराडॉक्सिकल दिखाई पड़ेगी, यह बहुत विरोधी दिखाई पड़ेगी--लेकिन मैं आपको कहता हूं, केवल वे ही लोग जो झुकने की पात्रता रखते हैं, अगर किसी दिन न झुकने का निर्णय ले लेते हैं, तो दुनिया का कोई भी तूफान उन्हें न झुका सकता है और न तोड़ सकता है। केवल वे ही लोग जो झुकने के लिए हमेशा तैयार होते हैं, अगर किसी दिन न झुकने का तय कर लें, इस दुनिया की कोई ताकत फिर उनको झुका नहीं सकती है। क्योंकि न झुकने की ताकत, वे झुकने के माध्यम से इतनी इकट्ठी कर लेते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन जो लोग हमेशा अकड़ कर खड़े रहते हैं कि नहीं झुकेंगे, नहीं झुकने
की चेष्टा में उनकी कितनी शक्ति अपव्यय हो जाती है, उन्हें पता नहीं। वे धीरे-धीरे इंपोटेंट हो जाते हैं, धीरे-धीरे उनकी सारी शक्ति क्षीण हो जाती है अपने से ही लड़ने में कि नहीं झुकूंगा। अपने को ही सम्हालने में, अपने को ही रोकने में, रेसिस्ट करने में उनकी सारी शक्ति खत्म हो जाती है, भीतर से वे खोखले हो जाते हैं। जैसे वृक्ष भीतर से खोखले हो जाते हैं। और तब कोई छोटा सा हवा का झोंका भी उन्हें झुका सकता है।
अब यह बड़ी उलटी बात दिखाई पड़ेगी।
जीसस जैसे लोग जो झुकने के लिए सदा तैयार हैं, जिस दिन असत्य के सामने झुकने से इनकार कर देते हैं, उस दिन फिर मौत भी नहीं झुका सकती, फिर कोई शक्ति नहीं झुका सकती। सुकरात जैसे लोग जिनकी विनम्रता का कोई हिसाब नहीं, जो एक छोटे से बच्चे से भी सीखने को तैयार हैं, जिन्होंने जीवन में

कभी अकड़ने का ख्याल ही नहीं लिया, जब सत्य की लड़ाई खड़ी होती है, तो वे जहर पीने को तैयार हो जाते हैं।
लेकिन उनके इस खड़े रहने में भी कुरूपता नहीं है। क्योंकि वह खड़ा रहना अहंकार के लिए खड़ा रहना नहीं है। वह खड़ा रहना सत्य के लिए खड़ा रहना है।
अहंकार तो बड़ा से बड़ा असत्य है। जो अहंकार के लिए खड़ा है वह असत्य के लिए खड़ा है। जो सत्य के लिए खड़ा होता है वह अहंकार के लिए कभी खड़ा नहीं होता। क्योंकि सत्य केवल उसी को उपलब्ध होता है जिसका अहंकार विलीन हो चुका है। फिर भी इन मित्र ने निवेदन किया है, तो उनकी तरफ से आपको सूचना कर दूं, मेरे पैर भूल कर भी मत छूना। मुझे जरा भी रस नहीं है। आप कवायद करें, मुझे क्या मिल सकता है? आप झुकें, उठें, साथ-साथ मुझे भी थोड़ा-बहुत झुकना-उठना पड़ता है, मैं भी थकता हूं, और कुछ होता नहीं। मुझे क्या मिलेगा आपके पैर में झुक जाने से? क्या मिल सकता है? आपके झुकने से मुझे क्या मिल सकता है? इसलिए उन्होंने निवेदन किया, ठीक ही किया। नहीं, आप भूल कर भी मेरे पैर में मत झुकना।
लेकिन यह नहीं कह रहा हूं कि आप जीवन में झुकना भूल जाना; उसकी तैयारी रखना। क्योंकि जो झुक जाते हैं, जीवन की सरिता उनकी गगरियों में आ जाती है; और जो अकड़े रह जाते हैं, जीवन की सरिता से वंचित रह जाते हैं।
एक-दो छोटे प्रश्न और, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या, जैसा आप कहते हैं कि हर चीज पर संदेह करें, तो क्या हम समाज में जो अच्छाई और बुराई की, पाप और पुण्य की धारणा है, उस पर भी संदेह करें? और अगर उस पर संदेह करेंगे तब तो हम अनैतिक हो जाएंगे!

उन्हें यह भ्रम पैदा हो गया है मेरी बात को सुन कर--कि संदेह करने से,
जो अच्छा है, वह शायद फिर अच्छा दिखाई नहीं पड़ेगा; जो बुरा है, वह शायद फिर बुरा दिखाई नहीं पड़ेगा।
मेरा कहना है कि अगर संदेह की कसौटी पर अच्छा खरा न उतरे, तो वह अच्छा कभी था ही नहीं। और अगर वह अच्छा था और है, तो दुनिया में कितना ही आप संदेह करें, आप संदेह से उसे मिटा नहीं सकेंगे। यह ऐसा ही है जैसे कि हम सोने को आग में डाल दें। तो कोई डरे कि सोने को आग में डालेंगे तो सोना कहीं जल न जाए! जो जल जाएगा, सिद्ध हो जाएगा कि वह सोना नहीं था। सोना नहीं जलेगा। जो जल जाएगा, उससे सिद्ध होगा कि वह सोना नहीं था। और जो आग से निखर कर वापस निकल आएगा, वही सिद्ध होगा कि सोना था।
संदेह की अग्नि में जो भी सत्य है वह नष्ट नहीं होता है, और निखर कर, और तेजस्वी होकर प्रकट होता है। और सत्य के साथ, शुभ के साथ जो-जो कचरा-कूड़ा इकट्ठा था, वह सब जल जाता है।
जरूर हमारे समाज की बहुत सी धारणाओं में कूड़ा-कचरा है। और जो संदेह करेंगे, कूड़ा-कचरा बह जाएगा, बह जाना चाहिए। उसी कूड़े-कचरे की वजह से तो यह समाज हमारा इतनी नीति की बातें करता है और इतना अनैतिक है। जरूर हमारी नैतिकता की धारणा में अनीति के बुनियादी रोग घुसे हुए हैं। अन्यथा नीति की इतनी बात करने वाले लोग और इतने अनैतिक कैसे हो सकते हैं? लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ता।
एक आदमी रिश्वत देने जाता है, वह पांच रुपये देता है और अपना काम करवा लेता है। हम कहते हैं कि यह आदमी तो बड़ा अच्छा आदमी था, इसे तो हमने मंदिर में नारियल चढ़ाते देखा, पूजा करते देखा, फूल चढ़ाते देखा, धूप-दीप जलाते देखा। यह इतना अच्छा आदमी, इतना नैतिक आदमी, यह पांच रुपया रिश्वत दे रहा है? यह कैसे हो सकता है?
नहीं, आप ठीक से नहीं देख पाए, आप समझ नहीं पाए। वह नारियल भी रिश्वत था, वे फूल भी रिश्वत थे जो भगवान के सामने चढ़ाए गए। यह आदमी बिल्कुल कंसिस्टेंट है। यह ठीक वही व्यवहार वहां भी कर रहा है जो मंदिर में कर रहा है। यह जब नारियल चढ़ा रहा था, तब यह भीतर कह रहा था कि मेरे लड़के को परीक्षा पास करवा देना, भगवान, मैं पांच आने का नारियल चढ़ाता हूं। और अगर परीक्षा लड़का पास हो गया, तो बिल्कुल बेफिक्र रहना, एक नारियल और चढ़ाऊंगा।

यह क्या कह रहा था वहां? यह कह रहा था कि पांच आने की रिश्वत हम देते हैं महाशय, लड़के को पास करा देना। यह रिश्वत पुरानी थी, दिखाई नहीं पड़ती थी। आजकल जो रिश्वत चल रही है, दो-चार सौ साल चलेगी, वह भी दिखाई नहीं पड़ेगी। अभी भी दिखाई पड़नी कम हो गई है। जितनी उन्नीस सौ सैंतालीस में दिखाई पड़ती थी, अब नहीं दिखाई पड़ती। आदत! अब हम मानने लगे कि वह भी है, धीरे-धीरे वह व्यवस्थित हो जाएगी। जैसे एक आदमी को नौकरी मिलती है, वैसे ही रिश्वत भी मिलती है। लोग बड़े मजे से पूछते हैं, तनख्वाह कितनी मिलती है? और पूछते हैं, ऊपर से कितना मिलता है? और बताने वाले बिल्कुल निश्चिंतता से बताते हैं कि इतनी तनख्वाह मिल जाती है, ऊपर इतना मिल जाता है। यह भी तनख्वाह का हिस्सा है, तनख्वाह का दूसरा हिस्सा है। इसमें कुछ पाप नहीं, कोई ग्लानि नहीं, कोई गलती नहीं।
यह आदमी रिश्वत मंदिर में चढ़ा रहा था तब हम नहीं पकड़ पाए, आदमी को चढ़ाने लगा तो हमें पकड़ में आ गया। और इस बेचारे ने बिल्कुल तर्कसंगत व्यवहार किया। इसने देखा कि पांच आने में भगवान तक राजी हो जाते हैं, तो आदमी को राजी करने में कौन सी खराबी है? जब भगवान तक को राजी करने में कोई पाप नहीं, तो आदमी को राजी करने में हर्ज क्या है?
संदेह की अग्नि में जो व्यर्थ है वह जल जाएगा, लेकिन जो सार्थक है वह
बच रहेगा। और अगर न बचे तो समझ लेना कि वह व्यर्थ था। यानी मैं कसौटी इसे मानता हूं कि संदेह की आग में जो न बचे वह सत्य नहीं था।
बहुत कुछ है जो असत्य है। नीति के नाम पर असत्य है, धर्म के नाम पर असत्य है, पुण्य के नाम पर असत्य है। बिल्कुल असत्य है। लेकिन कभी हमने संदेह नहीं किया कि हम सोचें, हम विचार करें।
एक आदमी धन कमाता है, सब तरह की चोरी और बेईमानी उसे करनी पड़ती है। क्योंकि बिना चोरी और बेईमानी के धन कमाना असंभव है। यह कभी भी संभव नहीं रहा, आज भी संभव नहीं है। यह कभी भी संभव हो सकेगा, नहीं दिखाई पड़ता। एक तरफ वह धन इकट्ठा कर लेता है सब तरह का गलत करके, दूसरी तरफ वह आदमी दान करता है, एक मंदिर बना देता है। और हम कहते हैं, दानवीर है, पुण्यात्मा है। अजीब सामाजिक दृष्टि है यह! अजीब बात हो गई यह! यह सामाजिक नीति खतरनाक है। क्योंकि यह चोरी और बेईमानी से आए पैसे से भी पुण्य किया जा सकता है, इसमें विश्वास करती है।
यह कैसे हो सकता है? यह कैसे हो सकता है कि मैं आपकी जेब काट लूं, जेब काट कर रुपये इकट्ठे करूं और गांव में हनुमान जी की एक मढिया बना दूं! यह मेरी चोरी से निकली हुई मढिया धर्म-स्थान कैसे बन सकती है? कैसे हो सकती है? यह पुण्य कैसे हो सकता है?
लेकिन सामाजिक नीति आज तक यह स्वीकार करती रही। वह यह नहीं पूछती कि
धन कहां से आया। वह यह पूछती है कि धन तुमने दान में किया, बस बात पूरी हो गई।
लाओत्सु था चीन में एक अदभुत आदमी। एक राज्य का कानून मंत्री था। एक आदमी ने चोरी की, पहला ही मुकदमा उसके सामने आया, तो उसने चोर को छह महीने की सजा दी और साहूकार को भी छह महीने की सजा दे दी।
साहूकार ने कहा, आप पागल हो गए हैं! यह किस कानून में लिखा है कि जिसके
घर चोरी हो वह भी सजा काटे?
लाओत्सु ने कहा, पागल मैं नहीं हो गया हूं, अब तक सारा कानून पागल था! तूने सारे गांव की संपत्ति इकट्ठी कर ली है, चोरी नहीं होगी तो अब क्या होगा गांव में? यह चोर तो नंबर दो है जिम्मेवार चोरी में, नंबर एक तू जिम्मेवार है। इतना धन जहां इकट्ठा होगा वहां चोरी होगी। इस चोर को चोरी करवाने में तूने ही टेंपटेशन, तूने ही प्रेरणा दी है। और इस आदमी ने अगर चोरी की है, तो तुम दोनों चोरी में समान भागीदार हो। मैं तो तुम दोनों को ही सजा दूंगा।
राजा ने कानून मंत्री को बुला कर कहा कि आपका दिमाग दुरुस्त है? कभी दुनिया में यह हुआ है?
लाओत्सु ने कहा, नहीं हुआ दुनिया में इसीलिए दुनिया से चोरी नहीं मिट सकी है और नहीं मिट सकेगी। और मैं कहता हूं कि जो मैं कह रहा हूं अगर यह हो, तो दुनिया में चोरी मिट सकती है।

लाओत्सु की बात नहीं सुनी गई। आज भी पूरी तरह नहीं सुनी गई है! लेकिन
जब तक नहीं सुनी जाएगी, वह वर्डिक्ट, वह लाओत्सु का कथन खड़ा रहेगा आकाश में, चमकते हुए अक्षरों में लिखा रहेगा कि तब तक नहीं मिट सकती चोरी जब तक चोर के साथ साहूकार भी दंडित नहीं होगा, नहीं मिटेगी।
तो वह नीति गलत है जो सिर्फ चोर को जिम्मेवार ठहराती है और साहूकार को जिम्मेवार नहीं ठहराती। अगर संदेह की आग में वह नीति गुजरेगी तो दोनों जिम्मेवार ठहरेंगे, वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक धन इकट्ठा होगा तब तक चोरी कैसे बंद हो सकती है? चोरी चलती रहेगी।
लेकिन धर्मग्रंथ और नीतिशास्त्री कहते हैं, चोरी पाप है। लेकिन वे यह नहीं कहते कि शोषण पाप है। बड़े मजे की बात है! चोरी पाप है, शोषण पाप नहीं है? चोरी पाप है और धन? धन पुण्य से मिलता है, पिछले जन्मों के पुण्य से मिलता है। जरूर इसमें कुछ होशियारी की बात हो गई।
होशियारी की बात यह हो गई कि चोरी करता है गरीब आदमी और शोषण करता है अमीर आदमी! अमीर चाहता है, चोरी से सुरक्षा रहे। इसलिए अमीर के आगे-पीछे घूमने वाले संन्यासी और पंडित... क्योंकि यह पुराना गठबंधन है; अमीर संन्यासियों का सहारा लेकर जीते हैं, संन्यासी अमीरों का सहारा लेकर जीते हैं... तो संन्यासी कहते हैं और पंडित कहते हैं, चोरी पाप है, चोरी कभी मत करना। लेकिन वे संन्यासी यह नहीं कहते कि शोषण पाप है, शोषण मत करना। शोषण जारी रहता है, चोरी भी जारी रहती है। चोरी में इतनी शक्ति है, वह शोषण से जुड़ा हुआ हिस्सा है। जिस दिन शोषण बंद होगा उस दिन चोरी बंद होगी।
तो अगर संदेह की अग्नि में आप जांच करेंगे समाज की नीति की, तो आप पाएंगे कि उसमें बहुत कुछ शरारत से भरा हुआ है, झूठ है, पाखंड है; बहुत कुछ निश्चित रूप से अनीतिपूर्ण है। और वह सब जल जाएगा। और जल जाना चाहिए। और तब संदेह के बीच से एक नीति विकसित होगी, सही, एक ठीक दृष्टिकोण, जिससे जीवन रूपांतरित होता है।
तो इससे घबड़ाएं मत कि संदेह में चला जाएगा तो सब गड़बड़ हो जाएगा। गड़बड़ होगा, बहुत कुछ गड़बड़ होगा, क्योंकि सब कुछ गड़बड़ है। एक बीमार आदमी को ठीक करना पड़ता है तो उसके शरीर में बहुत कुछ गड़बड़ करनी पड़ती है, दवाएं डालनी पड़ती हैं, इंजेक्शन डालना पड़ता है। लेकिन वह बीमार आदमी सहता है इस बात को, वह यह नहीं कहता कि यह क्या गड़बड़ कर रहे हैं! चीजें डाल रहे हैं मेरे शरीर में? वह जानता है कि गड़बड़ वहां भीतर है, बीमारी वहां है, और इनके विपरीत चीजों को डाले बिना वह बीमारी अलग होने वाली नहीं है।
समाज में गड़बड़ है, अनीति है। इस अनीति को एक बड़े विध्वंस के बिना मिटाए कोई रास्ता नहीं है। इसे तोड़ना पड़ेगा। और हम नहीं तोड़ेंगे तो यह समाज और सड़ता चला जाएगा; और गंदा, और कुरूप होता चला जाएगा। यह समाज गंदगी की आखिरी सीमा पर पहुंच गया है। जहां सिर्फ चेहरे दिखाई पड़ रहे हैं ठीक, बाकी भीतर सब सड़ चुका है। परिवार सड़ चुका है, समाज सड़ चुका है, शिक्षा सड़ चुकी है, सारे अंतर-जीवन के संबंध सड़ चुके हैं, लेकिन हम ऊपर से एक चेहरा बनाए हुए खड़े हैं कि सब ठीक है।
यह सब ठीक वैसा ही है जैसे कि सुबह आप चले जा रहे हैं दफ्तर की तरफ। कुछ भी ठीक नहीं है। घर पर पानी नहीं है, खाना नहीं है; बच्चों के लिए दवा नहीं है; पत्नी पागल हो जा रही है। आप चले जा रहे हैं दफ्तर। और एक आदमी कहता है, कहिए, सब ठीक है? आप कहते हैं, सब बिल्कुल ठीक है। बस यह सब ठीक उसी तरह का सब ठीक है। कुछ भी ठीक नहीं है। एक औपचारिक बात रह गई है कि सब ठीक है।
ठीक हम इसी तरह कहे चले जा रहे हैं, कुछ भी ठीक नहीं है। क्या ठीक है? बचपन से लेकर बुढ़ापे तक कुछ भी ठीक नहीं है। इसमें बहुत कुछ गिरेगा, टूटेगा। गिरना चाहिए, तोड़ना चाहिए। लेकिन चूंकि हमने कभी विचार नहीं किया, इसलिए उसे हम नहीं तोड़ पाए, हम नहीं बदल पाए।
विचार आएगा तो आएगा विद्रोह! विचार आएगा तो आएगी क्रांति! विचार आएगा
तो समाज इसी तरह का बर्दाश्त नहीं किया जा सकता जैसा है! जो लोग बर्दाश्त करते रहे हैं, उन लोगों ने, उन लोगों ने अपराध किया है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। कुछ प्रश्न और रह गए। लेकिन जिन दिशाओं में मैंने बात कही है, जिनके प्रश्न रह गए हों, अगर उन दिशाओं में थोड़ा भी

वे सोचने की कोशिश करेंगे तो उन्हें अपने भीतर से भी उत्तर मिल सकते हैं। और मेरे उत्तर का बहुत बड़ा मूल्य नहीं है। मेरे उत्तर का क्या मूल्य हो सकता है, वह मेरा उत्तर है। जब आपका उत्तर मिले तभी मूल्य हो सकता है।
पूछ सकते हैं कि फिर मैं क्यों कह रहा हूं?
मैं सिर्फ इसलिए कह रहा हूं कि आपको अगर यह ख्याल भी आ जाए कि जिंदगी
के संबंध में सोचना है, विचार करना है, संदेह करना है, तो आपको अपने उत्तर उपलब्ध हो सकते हैं। प्रश्न आपका है, उत्तर भी आपका चाहिए। तभी वह प्रश्न गिरेगा और नष्ट होगा। दूसरे के उत्तर कुछ भी नहीं कर सकते।
लेकिन दूसरे के उत्तरों से यह ख्याल आ सकता है कि मैं भी सोचूं, मैं भी विचार करूं, शायद मेरे भीतर भी चेतना है वह भी उत्तर तक पहुंच जाए और समाधान खोज ले। और प्रत्येक व्यक्ति की चेतना समाधान खोज सकती है। हमने नहीं खोजे इसलिए हमको नहीं उपलब्ध हुआ; हम खोजेंगे, वह उपलब्ध हो सकता है। मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन रहस्य
बारहवां प्रवचन

धन्य हैं वे जो सरल हैं

एक छोटी सी कहानी कहूं और उससे ही अपनी चर्चा शुरू करूं।
एक रात, एक सराय में, एक फकीर आया। सराय भरी हुई थी, रात बहुत बीत चुकी
थी और उस गांव के दूसरे मकान बंद हो चुके थे और लोग सो चुके थे। सराय का मालिक भी सराय को बंद करता था, तभी वह फकीर वहां पहुंचा और उसने कहा, कुछ भी हो, कहीं भी हो, मुझे रात भर टिकने के लिए जगह चाहिए ही। इस अंधेरी रात में अब मैं कहां खोजूं और कहां जाऊं! सराय के मालिक ने कहा, ठहरना तो हो सकता है, लेकिन अकेला कमरा मिलना कठिन है। एक कमरा है, उसमें एक मेहमान अभी-अभी आकर ठहरा है, वह जागता होगा, क्या तुम उसके साथ ही उसके कमरे में सो सकोगे? वह फकीर राजी हो गया। एक कमरे में दो मेहमान ठहरा दिए गए।
वह फकीर अपने बिस्तर पर लेट गया, न तो उसने अपने जूते खोले, न अपनी टोपी निकाली, वह सब कपड़े पहने हुए लेट गया। दूसरा आदमी जो वहां ठहरा हुआ था, उसे हैरानी भी हुई, लेकिन अपरिचित आदमी से कुछ कहना ठीक न था, वह चुप रहा। लेकिन वह फकीर जो टोपी पहने ही सो गया था, वह करवटें बदलने लगा और नींद आनी उसे कठिन हो गई।
दूसरे मेहमान के बर्दाश्त के बाहर हो गया और उसने कहा, महानुभाव, ऐसे
तो रात भर नींद नहीं आएगी, आप करवट बदलते रहेंगे। कृपा करके जूते उतार दें, कपड़े उतार दें, फिर ठीक से सो जाएं। थोड़े सरल हो जाएं तो शायद नींद आ भी जाए। इतने जटिल होकर सोना बहुत मुश्किल है।
उस फकीर ने कहा, मैं भी यही सोचता हूं। लेकिन अगर मैं कमरे में अकेला होता तो कपड़े निकाल देता, तुम्हारे होने की वजह से मैं बहुत मुश्किल में हूं!
उस आदमी ने कहा, इसमें क्या मुश्किल की बात है?
वह फकीर कहने लगा, मुश्किल यह है कि अगर मैं कपड़े निकाल कर सो गया, तो सुबह मेरी नींद खुलेगी, मैं यह कैसे पहचानूंगा कि मैं कौन हूं? मैं अपने कपड़ों से ही खुद को पहचानता हूं। यह कोट मेरे ऊपर है, तो मुझे लगता है कि मैं मैं ही हूं। यह पगड़ी मेरे सिर पर है, तो मैं जानता हूं कि मैं मैं ही हूं। इस पगड़ी, इस कोट को पहने हुए आईने के सामने खड़ा होता हूं तो पहचान लेता हूं कि मैं मैं ही हूं। अगर कमरे में अकेला होता तो कपड़े निकाल कर सो जाता, बदलने का कोई डर न था। लेकिन सुबह मैं उठूं तो मैं कैसे पहचानूंगा कि मैं कौन हूं और तुम कौन हो?
वह आदमी कहने लगा, बड़े पागल मालूम होते हो! तुम जैसा पागल मैंने कभी नहीं देखा!
वह फकीर कहने लगा, तुम मुझे पागल कहते हो! मैंने दुनिया में जो भी आदमी देखा, वह अपने कपड़ों से ही अपने को पहचानता हुआ देखा है। अगर मैं पागल हूं, तो सभी पागल हैं।
आप भी अपने को कपड़ों के अलावा और किसी चीज से पहचानते हैं? कपड़े बहुत तरह के हैं--नाम भी एक कपड़ा है, जाति भी एक कपड़ा है, धर्म भी एक कपड़ा है। मैं हिंदू हूं, मैं मुसलमान हूं, मैं जैन हूं--ये भी कपड़े हैं, ये भी बचपन के बाद पहनाए गए हैं। मेरा यह नाम है, मेरा वह नाम है--ये भी कपड़े हैं, ये भी बचपन के बाद पहनाए गए हैं। इन्हीं को हम सोचते हैं अपना होना? तो हम जटिल हो जाएंगे, तो हम जटिल हो ही जाएंगे।
एक महानगरी में एक बहुत अदभुत नाटक चल रहा था। शेक्सपियर का नाटक था।
उस नगरी में एक ही चर्चा थी कि नाटक बहुत अदभुत है; अभिनेता बहुत कुशल हैं। उस नगर का जो सबसे बड़ा धर्मगुरु था, उसके भी मन में हुआ कि मैं भी नाटक देखूं। लेकिन धर्मगुरु नाटक देखने कैसे जाए? लोग क्या कहेंगे? तो उसने नाटक के मैनेजर को एक पत्र लिखा और कहा कि मैं भी नाटक देखना चाहता हूं। प्रशंसा सुन-सुन कर पागल हुआ जा रहा हूं। लेकिन मैं कैसे आऊं? लोग क्या कहेंगे? तो मेरी एक प्रार्थना है, तुम्हारे नाटक-गृह में कोई ऐसा दरवाजा नहीं है पीछे से जहां से मैं आ सकूं, कोई मुझे न देख सके?

उस मैनेजर ने उत्तर लिखा कि आप खुशी से आएं, हमारे नाटक-भवन में पीछे दरवाजा है। धर्मगुरुओं, सज्जनों, साधुओं के लिए पीछे का दरवाजा बनाना पड़ा है, क्योंकि वे सामने के दरवाजे से कभी नहीं आते। दरवाजा है, आप खुशी से आएं, कोई आपको नहीं देख सकेगा। लेकिन एक मेरी भी प्रार्थना है, लोग तो नहीं देख पाएंगे कि आप आए, लेकिन इस बात की गारंटी करना मुश्किल है कि परमात्मा नहीं देख सकेगा।
पीछे का दरवाजा है, लोगों को धोखा दिया जा सकता है। लेकिन परमात्मा को धोखा देना असंभव है। और यह भी हो सकता है कि कोई परमात्मा को भी धोखा दे दे, लेकिन अपने को धोखा देना तो बिल्कुल असंभव है। लेकिन हम सब अपने को धोखा दे रहे हैं। तो हम जटिल हो जाएंगे, सरल नहीं रह सकते। खुद को जो धोखा देगा वह कठिन हो जाएगा, उलझ जाएगा, उलझता चला जाएगा। हर उलझाव पर नया धोखा, नया असत्य खोजेगा, और उलझ जाएगा। ऐसे हम कठिन और जटिल हो गए हैं। हमने पीछे के दरवाजे खोज लिए हैं, ताकि कोई हमें देख न सके। हमने झूठे चेहरे बना रखे हैं, ताकि कोई हमें पहचान न सके। हमारी नमस्कार झूठी है, हमारा प्रेम झूठा है, हमारी प्रार्थना झूठी है।
एक आदमी सुबह ही सुबह आपको रास्ते पर मिल जाता है, आप हाथ जोड़ते हैं, नमस्कार करते हैं और कहते हैं, मिल कर बड़ी खुशी हुई। और मन में सोचते हैं कि इस दुष्ट का चेहरा सुबह से ही कैसे दिखाई पड़ गया! तो आप सरल कैसे हो सकेंगे? ऊपर कुछ है, भीतर कुछ है। ऊपर प्रेम की बातें हैं, भीतर घृणा के कांटे हैं। ऊपर प्रार्थना है, गीत हैं, भीतर गालियां हैं, अपशब्द हैं। ऊपर मुस्कुराहट है, भीतर आंसू हैं। तो इस विरोध में, इस आत्मविरोध में, इस सेल्फ कंट्राडिक्शन में जटिलता पैदा होगी, उलझन पैदा होगी।
परमात्मा कठिन नहीं है, लेकिन आदमी कठिन है। कठिन आदमी को परमात्मा
भी कठिन दिखाई पड़ता हो तो कोई आश्चर्य नहीं। मैंने सुबह कहा कि परमात्मा सरल है। दूसरी बात आपसे कहनी है, यह सरलता तभी प्रकट होगी जब आप भी सरल हों। यह सरल हृदय के सामने ही यह सरलता प्रकट हो सकती है। लेकिन हम सरल नहीं हैं।
क्या आप धार्मिक होना चाहते हैं? क्या आप आनंद को उपलब्ध करना चाहते हैं? क्या आप शांत होना चाहते हैं? क्या आप चाहते हैं आपके जीवन के अंधकार में सत्य की ज्योति उतरे?
तो स्मरण रखें--पहली सीढ़ी स्मरण रखें--सरलता के अतिरिक्त सत्य का आगमन नहीं होता है। सिर्फ उन हृदयों में सत्य का बीज फूटता है जहां सरलता की भूमि है।
देखा होगा, एक किसान बीज फेंकता है। पत्थर पर पड़ जाए बीज, फिर उसमें अंकुर नहीं आता। क्यों? बीज तो वही था! और सरल सीधी जमीन पर पड़ जाए बीज, अंकुरित हो आता है। बीज वही है! लेकिन पत्थर कठोर था, कठिन था, बीज असमर्थ हो गया, अंकुरित नहीं हो सका। जमीन सरल थी, सीधी थी, साफ थी, नरम थी, कठोर न थी, कोमल थी, बीज अंकुरित हो गया। पत्थर पर पड़े बीज में और भूमि पर गिरे बीज में कोई भेद न था।
परमात्मा सबके हृदय के द्वार पर खटखटाता है--खोल दो द्वार! परमात्मा
का बीज आ जाना चाहता है भूमि में कि अंकुरित हो जाए। लेकिन जिनके हृदय कठोर हैं, कठिन हैं, उन हृदयों पर पड़ा हुआ बीज सूख जाएगा, नहीं अंकुरित हो सकेगा। न ही उस बीज में पल्लव आएंगे, न ही उस बीज में शाखाएं फूटेंगी, न ही उस बीज में फूल लगेंगे, न ही उस बीज से सुगंध बिखरेगी। लेकिन सरल जो होंगे, उनका हृदय भूमि बन जाएगा और परमात्मा का बीज अंकुरित हो सकेगा।
इसलिए संध्या का पहला सूत्र आपसे कहना चाहता हूं--सरल हो जाएं। और यह
मत पूछें कि हम सरल कैसे हो जाएं, क्योंकि जहां कैसे का भाव शुरू हुआ, कठिनता शुरू हो जाती है। जैसे ही आपने पूछा--मैं कैसे हो जाऊं सरल? बस आप कठिन होना शुरू हो गए।
सरलता तो स्वभाव है। सरल होना नहीं पड़ता है, केवल कठिन होना बंद कर दें, और आप पाएंगे कि सरल हो गए हैं।
मैं यह मुट्ठी बांध लूं और फिर पूछने लगूं लोगों से कि मैं मुट्ठी कैसे खोलूं? तो कोई मुझसे क्या कहे? मुट्ठी खोलनी नहीं पड़ती, बांधनी जरूर पड़ती है। मुट्ठी खोलनी नहीं पड़ती, बांधनी जरूर पड़ती है। अब मैं मुट्ठी

बांधे हूं और लोगों से पूछता हूं, मुट्ठी कैसे खोलूं? जो जानता है वह कहेगा कि सिर्फ बांधना बंद कर दें, मुट्ठी खुल जाएगी। बांधें मत, खुला होना मुट्ठी का स्वभाव है।
एक बच्चा एक वृक्ष की शाखा को खींच कर खड़ा है और पूछता है, इसे मैं इसकी जगह वापस कैसे पहुंचा दूं? क्या कहें उससे? वापस पहुंचाने के लिए कोई आयोजन करना पड़े? नहीं, बच्चा छोड़ दे शाखा को। शाखा हिलेगी, कंपेगी, अपनी जगह वापस पहुंच जाएगी।
स्वभाव सरल है मनुष्य का, जटिलता कल्टिवेटेड है। जटिलता कोशिश करके लाई गई है। जटिलता साधी गई है। सरलता साधनी नहीं है; केवल जटिलता न हो, और सरलता उपस्थित हो जाती है। यह मत पूछना कि हम सरल कैसे हो जाएं! कठिन कैसे हो गए हैं, यह समझ लें, और कठिन होना छोड़ दें, और पाएंगे कि सरलता आ गई है। सरलता सदा मौजूद है।
कैसे कठिन हो गए हैं? कैसे हमने अपने को रोज-रोज कठिन कर लिया है?
पहली बात मैंने कही, हमने असत्य का जीवन को ढांचा दिया है। असत्य हमारा पैटर्न है, असत्य हमारा ढांचा है। असत्य में हम जीते हैं, श्वास लेते हैं। असत्य में हम चलते हैं। खोजें कि कहीं आपका सारा जीवन असत्य पर तो खड़ा हुआ नहीं है?
एक छोटा सा बच्चा समुद्र की रेत पर अपने हस्ताक्षर कर रहा था। वह बड़ी बारीकी से, बड़ी कुशलता से अपने हस्ताक्षर बना रहा था। एक बूढ़ा उससे कहने लगा, पागल, तू हस्ताक्षर कर भी न पाएगा, हवाएं आएंगी और रेत बिखर जाएगी। व्यर्थ मेहनत कर रहा है, समय खो रहा है, दुख को आमंत्रित कर रहा है। क्योंकि जिसे तू बनाएगा और पाएगा कि बिखर गया, तो दुख आएगा। बनाने में दुख होगा, फिर मिटने में दुख होगा। लेकिन तू रेत पर बना रहा है, मिटना सुनिश्चित है। दुख तू बो रहा है। अगर हस्ताक्षर ही करने हैं तो किसी सख्त, कठोर चट्टान पर कर, जिसे मिटाया न जा सके।
मैंने सुना है कि वह बच्चा हंसने लगा और उसने कहा, जिसे आप रेत समझ रहे हैं, कभी वह चट्टान थी; और जिसे आप चट्टान कहते हैं, कभी वह रेत हो जाएगी। बच्चे रेत पर हस्ताक्षर करते हैं, बूढ़े चट्टानों पर हस्ताक्षर करते हैं, मंदिरों के पत्थरों पर। लेकिन दोनों रेत पर बना रहे हैं। रेत पर जो बनाया जा रहा है वह झूठ है, वह असत्य है। हम सारा जीवन ही रेत पर बनाते हैं। हम सारी नावें ही कागज की बनाते हैं। और बड़े समुद्र में छोड़ते हैं, सोचते हैं कहीं पहुंच जाएंगे। नावें डूबती हैं, साथ हम डूबते हैं। रेत के भवन गिरते हैं, साथ हम गिरते हैं। असत्य रोज-रोज हमें रोज-रोज पीड़ा देता और हम रोज-रोज असत्य की पीड़ा से बचने को और बड़े असत्य खोज लेते हैं। तब जीवन सरल कैसे हो सकता है? असत्य को पहचानें कि मेरे जीवन का ढांचा कहीं असत्य तो नहीं है? और हम इतने होशियार हैं कि हमने छोटी-मोटी चीजों में असत्य पर खड़ा किया हो अपने को, ऐसा ही नहीं है, हमने अपने धर्म तक को असत्य पर खड़ा कर रखा है।
मैं एक अनाथालय में गया। वहां सौ बच्चे थे, अनाथ बच्चे। उस अनाथालय के संयोजक मुझसे कहने लगे कि हम बच्चों को धर्म की शिक्षा देते हैं।
मैंने कहा, धर्म की शिक्षा! ये शब्द बड़े विरोधी मालूम होते हैं। अधर्म
की शिक्षा हो सकती है, धर्म की शिक्षा कैसे होगी? अविद्या की शिक्षा हो सकती है, विद्या की शिक्षा का आज तक सुना नहीं गया! घृणा की शिक्षा हो सकती है, युद्ध की शिक्षा हो सकती है, लेकिन प्रेम के विद्यालय अब तक देखे नहीं गए! फिर भी आप कहते हैं तो मैं चलूं, क्या शिक्षा देते हैं जानूं।
वे मुझे खुशी-खुशी ले गए। और उन बच्चों से मेरे सामने पूछने लगे, ईश्वर है? उन बच्चों ने हाथ ऊपर उठा दिए। उन्हें जो सिखाया गया था कि ईश्वर है, रटाया गया कि ईश्वर है--उन्होंने हाथ ऊपर उठा दिए कि हां, ईश्वर है। उनसे पूछा गया--आत्मा है? उन बच्चों ने कहा, हां, आत्मा है। जैसे उनसे पूछा जाता--दो और दो चार होते हैं? तो वे कहते कि हां, दो और दो चार होते हैं। फिर उनसे पूछा गया, परमात्मा कहां है? उन बच्चों ने अपने हृदय पर हाथ रख दिए कि यहां।
मैं एक छोटे बच्चे के पास गया और मैंने कहा कि बेटे, बता सकोगे हृदय कहां है?

उसने कहा, यह तो हमें सिखाया नहीं गया।
ईश्वर है, सिखा दिया गया। सिखाया हुआ ईश्वर झूठा हो गया। जाना हुआ ईश्वर सच्चा होता है। ये जो बच्चों ने हाथ उठाए यह जान कर नहीं उठाए कि ईश्वर है। यह किताब में लिखा है कि ईश्वर है। यह शिक्षक कहता है कि ईश्वर है। यह परीक्षा में उत्तर देना है कि ईश्वर है। तो बच्चे कहते हैं--ईश्वर है, हाथ उठाते हैं। ये हाथ सच्चे हैं? ये हाथ अगर सच्चे होते तो दुनिया परमात्मा के आलोक से भर गई होती। ये हाथ झूठे हैं। लेकिन ये बच्चों के हाथ ही झूठे होते तो भी ठीक था, बूढ़ों के उठे हुए हाथ भी इतने ही झूठे हैं। क्योंकि बचपन में जो सीख लिया, जीवन भर आदमी उसी को दोहराए चला जाता है, बिना इस बात को पूछे कि मैं जान कर कह रहा हूं या बिना जाने कह रहा हूं। हमारे जीवन का ढांचा ही असत्य है। मंदिर के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हैं।
वे हाथ भी झूठे हैं, परमात्मा का भाव भी झूठा है। क्योंकि परमात्मा का भाव अगर सच्चा होता तो एक बार के जुड़े हुए हाथ हमेशा के लिए जुड़े हुए हाथ हो जाते। और एक बार मंदिर के पास से निकल जाने पर मंदिर का छूटना असंभव हो जाता। फिर तो जहां खड़े हो जाते वहीं उसका मंदिर था और जो दिखाई पड़ जाता उसी के लिए उसके हाथ जुड़ जाते। लेकिन ऐसा नहीं दिखाई पड़ता। मस्जिद में जाने वाले लोग मंदिर में जाने वाले लोगों की हत्या करते हैं। मंदिर में जाने वाले लोग मस्जिद में जाने वाले लोगों की हत्या कर देते हैं। बड़ा अदभुत धर्म है! बड़ा झूठा धर्म होगा।
लेकिन हमारा सारा ढांचा, सारा पैटर्न, हमारे जीवन की बुनियाद, जिन सत्वों पर खड़ी होती है, वे सब हमने विश्वास के झूठे ढांचे बना रखे हैं। फिर आदमी सरल कैसे हो सकता है?
सरल होना है तो जान लें, जो न जानते हों जान लें कि नहीं जानता हूं। अगर नहीं जानते परमात्मा को तो कह दें निर्मलता से कि नहीं जानता हूं, मुझे पता नहीं, मैं झूठा हाथ नहीं उठा सकता हूं।
दुनिया में दो तरह के झूठे हाथ उठ रहे हैं। सोवियत रूस में एक हाथ उठ रहा है, जो कहता है परमात्मा नहीं है। वह भी सिखाई हुई बात है, वह भी स्कूल में बताई हुई बात है। और पूरब के मुल्कों में हाथ उठता है ईश्वर के लिए कि ईश्वर है। वे हाथ भी झूठे हैं, वे हाथ भी सिखाए हुए हैं। अगर आप सीखी हुई बात पर हाथ उठा रहे हैं, वापस लौटा लें अपने हाथ को, तो शायद सरल हो भी सकते हैं।
एक फकीर एक गांव में ठहरा था। वह फकीर बड़ा अदभुत फकीर रहा होगा। गांव
के लोगों ने उससे कहा, शुक्रवार का दिन है, आप चलें, हमारी मस्जिद में थोड़ा ईश्वर के संबंध में समझाएं।
वह फकीर कहने लगा, ईश्वर के संबंध में कभी कुछ समझाया गया हो तो मैं भी समझाऊं।
लेकिन वे लोग नहीं माने, जितना फकीर इनकार करने लगा उतने लोग उसके पीछे पड़ गए। लोगों की बुद्धि ऐसी है, जहां दरवाजे बंद होते हैं वहां दरवाजे ठोंकने लगते हैं, जहां दरवाजे खुले हैं वहां जाते भी नहीं। जिस दरवाजे पर लिखा है यहां झांकना मना है, वहीं-वहीं चक्कर लगाने लगते हैं। वह फकीर कहने लगा कि नहीं-नहीं, मैं नहीं जाऊंगा। ईश्वर के संबंध में क्या कहा जा सकता है? कुछ भी नहीं कहा जा सकता।
लेकिन लोग नहीं माने, उसे ले गए। नहीं माने तो गया। मस्जिद में जाकर
वह खड़ा हो गया मंच के ऊपर और उसने कहा, मेरे दोस्तो, इसके पहले कि मैं ईश्वर के संबंध में कुछ कहूं, मैं तुमसे कुछ पूछ लूं। पहली बात, ईश्वर के संबंध में तुम कुछ जानते हो? ईश्वर है?
उन सारे लोगों ने हाथ हिला दिए कि हम जानते हैं ईश्वर है।
वह फकीर बोला, फिर क्षमा करो, जब तुम जानते हो तो मेरे बोलने की कोई जरूरत न रही, मैं वापस जाता हूं। मैं फिजूल, मैं अपना समय, तुम्हारा समय क्यों खराब करूं! मुझे क्या पता कि तुम्हें पता है। फिर तुम मुझे किसलिए लिवा लाए हो? जब तुम्हें मालूम है, ईश्वर है, और तुम्हारे हाथ उठते हैं उसकी गवाही में, मेरी कोई जरूरत न रही, मैं जाता हूं।
लोग बड़े हैरान हुए, मन और आतुर हो गया कि इस आदमी से सुनना जरूर था। भूल हो गई। उन्होंने तय किया कि अगली बार फिर उसे बुला कर लाएं। और अब की

बार जब वह पूछेगा कि जानते हो ईश्वर है, तो हम कहेंगे कि ईश्वर है ही नहीं, हम कुछ भी नहीं जानते। फिर तो बोलेगा।
दूसरा शुक्रवार आ गया। फिर उस फकीर के पास गए और कहा कि चलें, ईश्वर के संबंध में कुछ समझाएं। वह फकीर फिर टालमटोल करने लगा। लेकिन वे नहीं माने, वे उसे ले गए। वह मंच पर खड़ा हो गया। उसने फिर पूछा कि मैं ईश्वर के संबंध में कुछ कहूं उसके पहले एक बात जान लूं, ईश्वर है? तुम्हें कुछ पता है ईश्वर के होने का?
लोगों ने कहा, ईश्वर नहीं है और हमें कुछ भी पता नहीं।
वह फकीर बोला, क्षमा करना, जब ईश्वर है ही नहीं, तो मेरी क्या जरूरत? मैं वापस जाता हूं। और तुम सबको पता है कि ईश्वर नहीं है, बात खत्म हो गई। अब और क्या जानने को शेष रह गया? जिन्हें यह तक पता हो गया कि ईश्वर नहीं है, उनको अब जानने को और क्या शेष रह गया होगा? आ गई अंतिम सीमा ज्ञान की, जब यह भी जान लिया कि ईश्वर नहीं है।
वह फकीर वापस लौट गया, लोग फिर बड़ी मुश्किल में पड़ गए। सुनना जरूर था।
अब और तीव्र आकांक्षा हो गई कि पता नहीं वह आदमी क्या कहता! उन्होंने फिर तय किया, तीसरा उत्तर तैयार किया कि अब की बार फिर चलें। तीसरे शुक्रवार फिर उसके पास पहुंच गए कि चलो। उन्होंने तीसरा उत्तर तैयार कर लिया। उन्होंने कहा, अब की बार जब वह पूछे, तो आधे लोग कहेंगे कि हमको पता है कि ईश्वर है और आधे लोग कहेंगे कि हमको पता नहीं है कि ईश्वर है। अब तो कुछ बोलोगे।
फकीर आकर खड़ा हो गया और उसने कहा कि दोस्तो, फिर वही सवाल, पता है ईश्वर है या कि पता नहीं है? जानते हो कि नहीं जानते?
आधी मस्जिद के लोगों ने कहा, आधे लोगों को पता है कि ईश्वर है; और आधे लोगों ने कहा, हमें पता नहीं कि ईश्वर है।
फकीर ने कहा, जिनको पता है वे उनको समझा दें जिनको पता नहीं। मैं जाता हूं, मेरी कोई जरूरत नहीं।
उस फकीर से मैंने भी पूछा कि चौथी बार वे लोग आए कि नहीं?
वह फकीर कहने लगा, चौथा उत्तर उन लोगों को नहीं मिल सका, तीन में उत्तर समाप्त हो गए। फिर वे लोग नहीं आए। मैं तो रास्ता देखता रहा कि आएं तो फिर जाऊं।
मैंने उस फकीर को कहा कि अगर उनके पास चौथा उत्तर होता तो आप जाते?
वह कहने लगा, अगर चौथा उत्तर होता तो मैं जरूर जाता और बोलता।
मैंने पूछा, वह चौथा उत्तर क्या हो सकता था?
वह फकीर कहने लगा, अगर वे चुप रह जाते और कोई भी उत्तर न देते तो मैं कुछ बोलता। क्योंकि तब वे सच्चे लोग होते। तब वे एक झूठी बात को गवाही नहीं देते। तब वे मौन रह जाते। उन्हें कुछ भी पता नहीं है--न होने का, न ना होने का। तब वे अपने अज्ञान में मौन रह जाते। अज्ञान उनका सत्य था, सच्चाई थी। ज्ञान--आस्तिक का ज्ञान, नास्तिक का ज्ञान--सब झूठ है, सीखी हुई बकवास है। अगर वे चुप रह जाते तो मैं बोलता, वह फकीर कहने लगा। और आज तक सत्य के संबंध में तभी समझाया जा सका है या जाना जा सका है, बोला जा सका है, इशारे किए जा सके हैं--जब दूसरी तरफ सच्चाई से भरा हुआ मौन हो। झूठ से भरे हुए उत्तर नहीं, सच्चाई से भरा हुआ प्रश्न काफी है। झूठ से भरा हुआ ज्ञान नहीं, सच्चाई से भरा हुआ अज्ञान भी परमात्मा की तरफ ले जाने वाला चरण बन जाता है।
हम पूछें अपने सेः हमारा ज्ञान सच है? हमारा ज्ञान सच है? और जब हमारा ज्ञान ही सच नहीं, तो हमारा जीवन कैसे सच हो सकता है? ज्ञान पर तो जीवन खड़ा होता है। लेकिन हम झूठ में हां भरते चले जाते हैं। हम चुपचाप हां भरते चले जाते हैं। चारों तरफ लोग हां भरते हैं, तो हम भी हां भरते हैं। चारों तरफ जो लोग कहते हैं, वही हम भी कहते हैं। हम भीड़ के हिस्से हो गए हैं। भीड़ एक झूठ है। हम समाज के हिस्से हो गए हैं। समाज एक झूठ है।
एक बार एक अदभुत घटना घट गई। एक आदमी ने एक सम्राट से आकर कहा, तुमने सारी पृथ्वी जीत ली, लेकिन एक चीज की कमी रह गई तुम्हारे पास। तुम्हारे पास देवताओं के वस्त्र नहीं हैं। मैं तुम्हें देवताओं के वस्त्र लाकर दे सकता हूं।

सम्राट के लोभ को गति मिली, सोचा कि देवताओं के वस्त्र मिल जाएं तो इससे शुभ और क्या होगा! उसने कहा, कितना खर्च होगा?
उसने कहा, खर्च तो बहुत होगा। क्योंकि आदमियों की रिश्वत देख-देख कर देवता भी रिश्वत लेने लगे हैं। बहुत रिश्वत लगेगी। वहां भी बहुत भ्रष्टाचार फैल गया है। दिल्ली में ही नहीं, इंद्र की नगरी में भी बहुत भ्रष्टाचार है। क्योंकि यहां के मरे हुए सब भूतपूर्व मिनिस्टर वहीं इकट्ठे हो गए हैं और सब उपद्रव कर रहे हैं। बहुत, बहुत रिश्वत मांगते हैं। सस्ते में काम नहीं चलता। यहां आदमी तो दस-पांच रुपये में भी मान जाता है, देवताओं को तो दस-पांच रुपये की कोई कीमत नहीं, करोड़ों खर्च हो जाएंगे, दस-पांच करोड़ रुपये खर्च होंगे।
लेकिन राजा के मन को लोभ पकड़ गया। विश्वास तो नहीं आता था कि देवताओं
के वस्त्र कैसे आएंगे! कभी देखे नहीं गए हैं! लेकिन फिर भी उसने कहा कि कोई हर्ज नहीं। लेकिन देखो, धोखा देने की कोशिश मत करना, नहीं तो फांसी पर लटक जाओगे। तुम्हारे घर पर पहरा रहेगा नंगी तलवारों का।
उसने कहा, घर पर पहरा रखें, क्योंकि देवताओं का रास्ता सड़क से होकर नहीं जाता। वह बहुत अंदरूनी रास्ता है। वह तो मैं घर के भीतर से देवताओं के लोक में चला जाऊंगा। आप उसकी फिक्र न करें।
दस करोड़ रुपये खर्च होने थे, वे रुपये दे दिए गए। उसके घर के पास तलवारों का पहरा लगा दिया। छह महीने बाद, उसने कहा, मैं वस्त्र लेकर आऊंगा। क्योंकि सरकारी कामकाज है, बड़ी मुश्किल से होता है। लंबा वक्त लग जाता है, एक-दो दिन में नहीं होता है। सरकारी काम है, फाइल पर फाइल सरकेगी, इस क्लर्क को खिलाओ, उस दफ्तर में खिलाओ, उधर चलो, तब मुश्किल से कहीं हो पाएगा। किसी अप्सरा को मनाओ, तब कहीं इंद्र के वस्त्र मिल सकें। बहुत मुश्किल है। लेकिन कोशिश मैं करूंगा।
छह महीने बीत गए। सारी राजधानी आतुर हो उठी, सारे देश में खबरें पहुंच गईं। अदभुत घटना घट रही है! मिरेकल! देवता के वस्त्र पृथ्वी पर पहली बार आ रहे हैं। शक है सभी को, संदेह है सभी को, लेकिन नंगी तलवारों का पहरा है। छह महीने पूरे हो गए। सुबह सूरज निकला और वह आदमी घर के बाहर आ गया। वह साथ में एक बहुमूल्य पेटी लिए हुए है, ताले बंद हैं। अब तो कोई शक भी न रहा। उसने कहा, राजमहल ले चलो।
नंगी तलवारों के पहरे में वह राजमहल पहुंच गया। लाखों लोगों की भीड़ सड़कों पर इकट्ठी हो गई है। दरबार भरा है, दूर-दूर से राजा आए हैं। उसने जाकर दरबार में पेटी रखी। तब तो सम्राट भी निश्चिंत हो गया कि धोखा नहीं दिया गया। फिर उसने ताला खोला। फिर उसने सम्राट को कहा कि आप पास आ जाएं और ये वस्त्र मैं भेंट करता हूं। उसने कहा, अपनी पगड़ी अलग कर दें। सम्राट ने पगड़ी नीचे कर दी। उसने पेटी के भीतर हाथ डाला और खाली हाथ बाहर निकाला और कहा, यह पगड़ी लें देवताओं की। सम्राट ने देखा कि हाथ खाली है, कोई पगड़ी नहीं। फिर वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा, देवताओं ने चलते वक्त मुझसे कहा है, जो अपने बाप से पैदा हुआ होगा उसी को ये वस्त्र दिखाई पड़ेंगे। ये वस्त्र सभी को दिखाई नहीं पड़ सकते।
राजा को हाथ खाली दिखाई पड़ रहा है। लेकिन वह कहने लगा, अहा, कैसी सुंदर पगड़ी! ऐसी पगड़ी कभी देखी नहीं! उसने वह पगड़ी जो थी ही नहीं, अपने सिर पर रख ली।
झूठ शुरू हो गया, झूठ की यात्रा शुरू हो गई। सोचा उसने कि मैं कहूं कि पगड़ी दिखाई नहीं पड़ती, तो मुश्किल हुई। अपने बाप से पैदा नहीं हुआ, ऐसी अफवाह फैल जाएगी। और फिर यह भी डर हुआ, क्योंकि जैसे ही दरबार के लोगों ने सुना कि वस्त्र उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे जो अपने बाप से पैदा हुए, दरबारी आगे बढ़-बढ़ कर आ गए और पगड़ी की प्रशंसा करने लगे और कहने लगे, ओह, ऐसी सुंदर पगड़ी, दस करोड़ कुछ भी नहीं हैं।
अब जब सारा दरबार कहने लगा, रानियां कहने लगीं, वजीर कहने लगे, मित्र कहने लगे। एक आदमी नहीं उस दरबार में जो कहे कि पगड़ी मुझे दिखाई नहीं पड़ती। क्योंकि सारी भीड़ जब कह रही है कि पगड़ी हमें दिखाई पड़ती है, तो कौन साहस करे? कौन कहे कि पगड़ी दिखाई नहीं पड़ती? कौन उलझे, कौन चक्कर में पड़े?

राजा ने पगड़ी पहन ली। भीतर तो प्राण थरथरा रहे हैं, लेकिन ऊपर से वह मुस्कुरा रहा है। फिर कोट भी उतर गया। फिर धोती भी उतर गई। फिर एक ही वस्त्र रह गया। तब राजा घबड़ाया--अब तो मैं नग्न हो जाऊंगा। एक-एक वस्त्र ले लिया गया, और झूठे वस्त्र दे दिए गए, जो थे ही नहीं। और दरबार में तालियां बज रही हैं। और लोग प्रशंसा कर रहे हैं। राजा एक क्षण सोचा कि अब क्या करूं? लेकिन झूठ में जो आगे बढ़ता है, एक झूठ और बड़े झूठ में ले जाता है। अब पीछे लौटना बहुत मुश्किल मालूम होने लगा। अगर वह कहे कि अब मुझे कुछ नहीं दिखाई पड़ता, तो वह कहेगा, इतनी देर से आपको दिखाई पड़ रहा था? झूठ बोल रहे थे आप? अपने बाप से पैदा नहीं हुए मालूम होता है। मजबूरी थी, उसे अंतिम वस्त्र भी छोड़ कर नग्न खड़ा हो जाना पड़ा। और तब उस नंगे खड़े राजा को देख लोग तालियां बजाने लगे। हर एक को राजा नंगा दिखाई पड़ रहा है, लेकिन कोई भी कहता नहीं कि राजा नंगा है।
और उस आदमी ने कहा, सम्राट, ये वस्त्र पहली बार पृथ्वी पर आए हैं। इनकी शोभा-यात्रा निकलनी बहुत जरूरी है। राजधानी के राजपथों पर चलें आप रथ में बैठ कर, ताकि सारा नगर देख ले कि देवताओं के वस्त्र आ गए हैं। लोग उत्सुकता से बाहर बाट जोह रहे हैं।
अब राजा के प्राण कंपे, वह नग्न खड़ा है, कम से कम अपने महल में है। रास्ते पर जाए? लेकिन झूठ की यात्रा शुरू हो चुकी, अब उसे रोकना बड़ा मुश्किल मालूम होने लगा। मजबूरी है, दरबारी भी कहने लगे कि महाराज, यह तो वस्त्रों के स्वागत में जरूरी है कि आप बाहर चलें।
महाराज को बाहर भी जाना पड़ा। वह नग्न राजा रथ पर सवार हो गया। लाखों लोगों की भीड़ है और लोग वस्त्रों की प्रशंसा कर रहे हैं; क्योंकि शर्त का सबको पता चल गया। सिर्फ भीड़ में कुछ छोटे-छोटे बच्चे जो अपने पिताओं के कंधों पर चढ़ कर राजा को देखने आ गए थे, वे अपने बाप के कानों में कहने लगे, पिताजी, राजा नंगा मालूम पड़ता है! लेकिन बापों ने कहा, चुप नादान, नासमझ, गैर-अनुभवी! राजा नंगा नहीं, राजा सुंदर वस्त्र पहने हुए है। जब तुम बड़े हो जाओगे, तुमको भी वस्त्र दिखाई पड़ने लगेंगे। चुप रहो अभी। अभी अनुभव नहीं है।
बच्चे अगर सत्य बोलते भी हैं तो बूढ़े जो असत्य में दीक्षित हो गए हैं उन्हें बोलने नहीं देते। बच्चे कभी इशारा भी करते हैं कि मुझे यह नहीं दिखाई पड़ता, तो बूढ़े कहते हैंः चुप, नासमझ, अभी तुझे अनुभव नहीं है। अनुभव तुझे भी दिखा देगा। और अनुभव दिखा देता है, क्योंकि अनुभव सब असत्य में यात्रा का अनुभव है, जब वह भी बूढ़ा हो जाता है उसी असत्य की यात्रा से गुजर कर, तब उसको भी दिखाई पड़ने लगते हैं वस्त्र।
हम सब भी नंगे राजा के वस्त्र देख रहे हैं। सरल कैसे हो सकते हैं? झूठे वस्त्रों की गवाही देकर कोई सरल कैसे हो सकता है? आपको मंदिर की मूर्ति में कभी भगवान दिखाई पड़े हैं? नहीं दिखाई पड़े तो आपने क्यों कहा है कि वहां भगवान हैं? और अगर दिखाई पड़ गए हैं वहां, तो फिर इस पृथ्वी पर कोई ऐसी जगह हो सकती है जहां दिखाई नहीं पड़ते हों? किसी मस्जिद में कभी उसकी झलक मिली है? किसी शास्त्र में, कभी किसी शब्द में सत्य अवतरित हुआ है? लेकिन क्यों गवाही दी है? क्यों विटनेस बने? कि यहां मुझे सत्य दिखाई पड़ता है, यहां मुझे भगवान दिखाई पड़ते हैं। यह जो झूठ की गवाही दी है, तो फिर सरल नहीं हो सकते हैं, नहीं हो सकते हैं, नहीं हो सकते हैं। कोई रास्ता नहीं है फिर सरल हो जाने का।
पहली बात, पहला सूत्र समझ लें सरल हो जाने के लिएः असत्य से अपनी गवाही अलग कर लें। विटनेस न बनें असत्य के, गवाह न बनें असत्य के।
हम सब गवाह हैं। हम में से सत्य का गवाह कोई भी नहीं। क्योंकि जो सत्य
का गवाह है वह परमात्मा का साक्षी हो जाता है। असत्य की गवाही है, सुबह से सांझ तक, जन्म से मृत्यु तक, सारा जीवन असत्य की एक गवाही है। और रोज-रोज असत्य की यात्रा बढ़ती चली जाती है, बढ़ती चली जाती है, बढ़ती चली जाती है। धर्म हमारा असत्य। जीवन के संबंध हमारे असत्य। बेटे से बाप कहता है
कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। और यही बाप बेटे को युद्ध पर भेज देता है कि जा तू लड़ और कट। तब कहता है कि देश-सेवा के लिए भेजना बहुत जरूरी था। अगर दुनिया में बाप अपने बेटों को प्रेम करते होते, जमीन पर आज तक कोई युद्ध

संभव नहीं था। कौन अपने बेटों को कटने भेजता? लेकिन किसी बाप ने अपने बेटे को प्रेम नहीं किया। कहता है कि मैं प्रेम करता हूं। कौन कटवाता है युद्धों में? पहले महायुद्ध में साढ़े सात करोड़ लोगों की हत्या हुई। दूसरे महायुद्ध में दस करोड़ लोगों की हत्या हुई। कौन ने कटवाए ये लड़के? रोज लड़के कट रहे हैं, ये कौन कटवा रहा है? कौन भेज रहा है?
मां भेजती है, पत्नी भेजती है, बहन भेजती है, बाप भेजता है, भाई भेजता है, बेटे भेजते हैं, मित्र भेजते हैं। और हम कहे चले जाते हैं कि हम प्रेम करते हैं। और हम चिल्लाए चले जाते हैं कि हम प्रेम करते हैं। यह हमारा प्रेम बड़ा झूठा मालूम होता है। कौन किसको प्रेम कर रहा है? और जो एक बार प्रेम करने में समर्थ हो जाएगा, क्या आप जानते हैं वह परमात्मा से दूर रह सकेगा एक क्षण को भी? जहां प्रेम का द्वार खुल गया वहां प्रभु के मंदिर का द्वार भी खुल जाता है।
रामानुज एक गांव में ठहरे थे। एक आदमी उनके पास आ गया और कहने लगा कि मुझे प्रभु से मिलना है, मुझे परमात्मा की तरफ जाना है, मुझे रास्ता बताओ! रामानुज ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और कहा, मेरे दोस्त, मेरे भाई, तुमने कभी किसी को प्रेम किया है?
वह आदमी कहने लगा, प्रेम-व्रेम की बातें मत करो, मुझे परमात्मा तक जाना है। यह प्रेम वगैरह के चक्कर में मैं कभी नहीं पड़ा। मुझे रास्ता बताओ प्रभु का!
रामानुज फिर थोड़ी देर चुप रहे और फिर पूछा कि मेरे दोस्त, क्या तुम बता सकते हो, तुमने कभी किसी को भी प्रेम किया हो?
उस आदमी ने कहा कि आप प्रेम ही प्रेम क्यों पूछे चले जाते हैं? मुझे परमात्मा को खोजना है, प्रेम से मुझे क्या लेना-देना?
रामानुज फिर तीसरी बार पूछने लगे कि फिर भी सोचो, शायद कभी किसी को थोड़ा प्रेम किया हो!
वह आदमी क्रोध से खड़ा हो गया और उसने कहा, यह क्या पागलपन है? मैं प्रभु का रास्ता पूछता हूं। मैं पश्चिम की पूछता हूं, आप पूरब की बताते हैं। मैं प्रेम की बात नहीं पूछ रहा हूं।
रामानुज की आंखों में आंसू आ गए और उन्होंने कहा, फिर तुम जाओ। तुमने अगर किसी को भी प्रेम किया होता, तो उसी प्रेम को प्रार्थना में बदला जा सकता था। तुमने अगर एक को भी प्रेम किया होता, तो उसी प्रेम के द्वार से तुम्हें एक में तो परमात्मा कम से कम दिखाई पड़ जाता। और जिसको एक में दिखाई पड़ जाता है, फिर कोई मामला बहुत बड़ा नहीं, उसे सब में दिखाई पड़ सकता है। लेकिन तुम कहते हो मैंने कभी किसी को प्रेम ही नहीं किया। फिर, फिर मैं असमर्थ हूं तुम्हें परमात्मा तक ले जाने में। तुम कहीं और खोजो, तुम कहीं और जाओ।
हम कहते हैं कि हमने प्रेम किया। हम प्रेम करते हैं? जो आदमी प्रेम कर
ले उसके लिए प्रभु से बड़ी निकटता और कोई नहीं रह जाती। क्योंकि प्रेम के क्षण में ही वह प्रकट होता है। ज्ञान के क्षण में नहीं, क्योंकि ज्ञान तोड़ता है। प्रेम के क्षण में, क्योंकि प्रेम जोड़ता है। ज्ञानी को प्रकट नहीं होता, क्योंकि ज्ञानी का अहंकार है कि मैं जानता हूं। प्रेमी को प्रकट होता है, क्योंकि प्रेमी कहता है कि मैं हूं ही नहीं।
तो हम जिसे प्रेम कहते हैं वह जरूर झूठा प्रेम होगा; नहीं तो वह प्रेम परमात्मा तक पहुंचा देता। हमारा धर्म झूठा, हमारा प्रेम झूठा, हमारी प्रार्थना झूठी।
एक नाव समुद्र में डगमगा रही है। तूफान आ गया है जोर का। नाव के यात्री कंपे जा रहे हैं, उनके प्राण कंपे जा रहे हैं। वे सब घुटने टेक कर प्रार्थना कर रहे हैं परमात्मा से कि बचा लो। हम इतना धन दान करेंगे, हम इतना त्याग करेंगे, मैं मंदिर बनवा दूंगा, मैं मस्जिद बनवा दूंगा, मैं गीता की हजार कापियां छपवा कर बंटवा दूंगा, मैं यज्ञ करवा दूंगा, मैं इतने ब्राह्मणों को खिलवा दूंगा। वे सभी यात्री प्रार्थना कर रहे हैं।
लेकिन एक संन्यासी, एक फकीर वहां बैठा हुआ है। वह चुपचाप बैठा है। लोग
उस पर नाराज हो गए और कहने लगे कि तुम कुछ करो प्रार्थना, शायद तुम्हारी

सुन ले! तुम चुप क्यों बैठे हो इस दुर्घटना की घड़ी में? नाव डांवाडोल है, एक क्षण में डूब सकती है।
वह फकीर हंस रहा है, वह चुप बैठा है। वे प्रार्थना कर रहे हैं। तभी वह बीच में चिल्लाया कि ठहरो, ठहरो, वचन मत दे देना! नाव करीब पहुंच रही है, किनारा करीब आ गया, खतरे के हम बाहर हैं। वे सारे लोग आधी प्रार्थना छोड़ कर सामान बांधने लगे।
लेकिन एक आदमी उसमें झंझट में पड़ चुका था। वह आदमी अरबपति था, वह इस नाव में अरबों रुपया कमा कर वापस लौट रहा था। वह इतना घबड़ा गया कि उसने भगवान को कहा कि हे भगवान, अगर मैं बच गया, नाव बच गई, तो मेरा राजधानी का जो महल है, जिसकी कीमत पांच लाख रुपया है, वह मैं तुझे दान कर दूंगा, तेरा मंदिर बना दूंगा वहां। या उसको बेच कर गरीबों को बांट दूंगा। बचा ले! गरीबों को बांट दूंगा या मंदिर बना दूंगा। वह यह वचन दे चुका था। और तो सारे लोग अभी शुरू ही किए थे, वचन नहीं दिए थे, वह एक आदमी फंस गया। और नाव किनारे पहुंच गई। अब उसके प्राण बड़े संकट में पड़े कि वह पांच लाख रुपये का क्या होगा? उस मकान का क्या होगा? उसने उस फकीर से कहा कि तुम बहुत बुद्धिमान मालूम पड़ते हो। अब मैं क्या करूं? मैं तो फंस गया। मैं तो आश्वासन दे दिया भगवान को। मैं क्या करूं?
उस फकीर ने कहा, घबड़ाओ मत, तुम जरूर कोई तरकीब निकाल लोगे। क्योंकि आदमी की प्रार्थनाएं इतनी झूठी हैं कि उनमें दिए गए वचनों का कोई अर्थ नहीं। लेकिन तुम कोई जरूर रास्ता निकाल लोगे, घबड़ाओ मत। तुम बड़े होशियार आदमी मालूम पड़ते हो; नहीं तो करोड़ों रुपया कमाना भी बहुत कठिन था। तुम बड़े चालाक आदमी मालूम पड़ते हो।
और पंद्रह दिन बाद उस आदमी ने तरकीब निकाल ली। और उसने वह मकान पांच लाख रुपये का गरीबों को बांट दिया। कैसे बांट दिया? उसने सीधी तरकीब निकाल ली। एक गणित का हिसाब निकाल लिया। उसने गांव में खबर कर दी कि मुझे मकान नीलाम कर देना है। पांच लाख रुपये का मकान है, सबको पता है। मुझे मकान नीलाम कर देना है। फलां-फलां दिन सुबह लोग इकट्ठे हो गए लेनदार। वह मकान अदभुत था। खुद राजा भी लेने आ गया था।
वह फकीर भी पहुंच गया उस भीड़ में कि वह आदमी क्या कर रहा है? क्या वह बांट देगा लोगों को? वह फकीर भीड़ में चुपचाप खड़े होकर देखने लगा।
उस आदमी ने क्या किया था? उस आदमी ने एक बिल्ली बांध दी मकान के सामने
और गांव के लोगों को कहा कि बिल्ली की कीमत पांच लाख रुपया, मकान की कीमत एक रुपया। और दोनों को इकट्ठा बेचूंगा, अलग-अलग बेचूंगा नहीं। जिसको भी लेना हो ले ले। बिल्ली की कीमत पांच लाख रुपया, मकान की कीमत एक रुपया। इकट्ठा बेचूंगा, एक ही ग्राहक को बेचूंगा। दोनों अलग-अलग नहीं बेचने हैं। गांव के लोग बड़े हैरान हुए! लेकिन लोगों को क्या मतलब, लोग जानते थे पांच लाख का मकान है। एक रुपये में देता है पांच लाख का मकान। और बिल्ली जो दो कौड़ी की नहीं, वह बताता है पांच लाख! लेकिन लोगों को क्या मतलब? पागल हो गया है, हो जाने दो। गांव का मकान बिक गया। एक आदमी ने पांच लाख में बिल्ली खरीद ली, एक रुपये में मकान खरीद लिया। उस आदमी ने पांच लाख तिजोरी में बंद किए, एक रुपया गरीबों में बांट दिया। उसने तरकीब निकाल ली। उसने रास्ता निकाल लिया।
हमारी प्रार्थना झूठी है, हमारी पूजा झूठी है, क्योंकि हम झूठे हैं बुनियाद में इसलिए हमारा सब झूठा है--हमारा ज्ञान, हमारा धर्म, हमारी प्रार्थना, हमारा प्रेम--क्योंकि बुनियाद में हम झूठे हैं। और झूठ पर खड़ा हुआ जीवन सरल नहीं हो सकता।
यह मत पूछें कि हम सरल कैसे हो जाएं। इतना ही जान लें कि हम जटिल कैसे
हो गए हैं। कैसे रोज हम जटिल होते चले जा रहे हैं।
एक पल नहीं बीतता, हम और जटिल हो जाते हैं। एक घड़ी नहीं बीतती, हम और उलझ जाते हैं। सारी जिंदगी उलझाव की एक लंबी कथा है। बच्चे सरल और सीधे पैदा होते हैं; बूढ़े उलझे हुए मर जाते हैं। इसीलिए तो जिंदगी भर आदमी पीछे की तरफ लौट-लौट कर सोचता रहता है कि बड़ी खुशी थी बचपन में, बड़ा आनंद था बचपन में, बड़ी शांति थी बचपन में। अब सब खो गई।

क्या बात थी बचपन में? कौन सी खुशी थी? कौन सा आनंद था? कौन सी शांति थी?
शांति यही थी कि सरलता थी, खुशी यही थी कि सरलता थी, आनंद यही था कि सरलता थी। जटिल होता जाता है आदमी और दुख और पीड़ा और चिंता से भरता चला जाता है। होना तो उलटा था कि आदमी की उम्र जैसे बढ़ती वह और सरल होता, और सरल होता। और अंत क्षण तक इतना सरल हो जाता कि उसकी सरलता में और प्रभु के बीच कोई फासला न रह जाता, कोई दीवाल न रह जाती, कोई गांठ न रह जाती, कोई ग्रंथि न रह जाती। लेकिन नहीं, उलटा होता है, गांठ रोज बढ़ती चली जाती है, रोज बढ़ती चली जाती है। हम सब गांठों को कमाने वाले लोग, हमारे लिए परमात्मा सरल नहीं हो सकता है। इसलिए जब धर्मगुरु हमें समझाते हैं कि परमात्मा कठिन है, हम बिल्कुल राजी हो जाते हैं कि ठीक कहते हैं, परमात्मा कठिन है।
मैं आपसे कहता हूं, झूठ कहते हैं। परमात्मा कठिन नहीं; कठिन आप हैं।
और अपनी कठिनाई को परमात्मा पर मत थोपें। परमात्मा जटिल नहीं; जटिल आप हैं। लेकिन जब भी दोष दूसरे पर दे दिया जाए, हम निर्दोष होकर शांत और मजे में हो जाते हैं।
अपनी कठिनाई पहचानें, अपनी कांप्लेक्सिटी पहचानें, और पहचानते ही सरलता शुरू हो सकती है। और मैं यह नहीं कहता कि कल शुरू हो सकती है। अभी और इसी वक्त शुरू हो सकती है, आप यहीं से सरल होकर वापस लौट सकते हैं, इसी वक्त। मुट्ठी बांधी है, मत बांधें, और आप एक दूसरे आदमी होकर चल पड़े। दूसरे आदमी--इसी क्षण! अभी और यहीं!
लेकिन अगर आपने कहा कि कल देखेंगे, जटिलता शुरू हो गई। क्योंकि कल पर टालना जटिल आदमी का लक्षण है। जिंदगी कल के लिए नहीं रुकती; जिंदगी अभी और यहीं है। हो सकता है जो वह अभी हो सकता है और यहीं, दिस वेरी मोमेंट, इसी क्षण में! लेकिन जो इस क्षण में नहीं हो सकता, आप कहते हैंः ठीक कहते हैं; सोचूंगा, विचार करूंगा, पूछूंगा, कल कुछ करूंगा। बस जटिलता के सब रास्ते खोल दिए गए। सोचने से आदमी और जटिलता में जाएगा। करने से और जटिलता में जाएगा। कल पर पोस्टपोन करने से और जटिलता में जाएगा। अभी और यहीं जटिलता को देख लें, पहचान लें--कहां मैं जटिल हूं! फिर किसको कहना है?
एक युवा संन्यासी एक आश्रम में है। बहुत विवादी है, बहुत तार्किक है, चौबीस घंटे विवाद और तर्क, और विवाद, एक क्षण को मौन नहीं, बोलना, बोलना, बोलना। एक अजनबी मेहमान आश्रम में आया हुआ है। वह युवक उसके पीछे पड़ गया। विवाद में, तर्क में, आर्ग्युमेंट में, उसने एक-एक बाल की खाल निकाल डाली। वह आदमी हारा हुआ, पराजित हुआ, वापस लौटा। आश्रम का बूढ़ा गुरु चुपचाप बैठा हुआ देख रहा है, हंस रहा है, देख रहा है। जब वह अजनबी हार कर चला गया विवाद, तब उस बूढ़े ने उस युवा संन्यासी को कहा, मेरे बेटे, तू कब तक, कब तक व्यर्थ की बकवास करता रहेगा? कब तक व्यर्थ की बकवास करता रहेगा? क्या मिलेगा इस बकवास से, इस विवाद से? जो मिलना है वह संवाद से मिलता है, और संवाद मौन में होता है। विवाद में कोई संवाद नहीं होता। विवाद में कोई कम्युनिकेशन नहीं है। क्या मिलेगा तुझे? कब तक बोलता रहेगा व्यर्थ? कब तक शब्दों से खेलता रहेगा? शब्दों का अपना शतरंज है। कब तक खेलता रहेगा? बोल!
वह युवक सुना, जैसा आप सुन रहे हैं, उस युवक ने भी सुना कि उसके बूढ़े गुरु ने कहा है, कब तक तू बोलता रहेगा व्यर्थ? बोल, उत्तर दे! वह युवक हंसने लगा, उसने उत्तर भी नहीं दिया। गुरु उसे हिलाने लगा कि बोल, उत्तर दे! वह युवक हंसने लगा, उसने फिर उत्तर नहीं दिया! वह चुप ही हो गया! फिर वह तीस साल जिंदा रहा, वह मौन ही जिंदा रहा! उसी क्षण हो गई बात, जो बात दिखाई पड़ गई, हो गई। उसे दिखाई पड़ गया कि ठीक कह रहे हैं यह बात कि मैं कब तक व्यर्थ बोल कर समय को खोता रहूंगा? बात दिखाई पड़ गई, फिर उसने यह भी नहीं कहा कि कल से बंद करूंगा; अभी बंद करता हूं। क्योंकि इसके कहने की भी क्या जरूरत रही? बंद हो गया, उसी क्षण बात हो गई।
गांव के लोग तो बड़े परेशान हुए कि वह आदमी जो सबसे ज्यादा बोलता था, चुप हो गया। लोग उसके गुरु को आकर कहने लगे कि यह बड़ा पागल मालूम होता है। उस गुरु ने कहा, काश, लोग इतने ही पागल हों तो पृथ्वी स्वर्ग बन जाए। जिसको हम होशियार कहते हैं वह आदमी सोच-विचार करता है, सोच-विचार करता है, सोच-विचार करता है, कल करूंगा, कल करूंगा, उसमें कूदने की सामर्थ्य ही विलीन हो

जाती है। और सत्य को केवल वे लोग उपलब्ध होते हैं जो कूदने की और दांव लगाने की सामर्थ्य रखते हैं।
तो मैंने कही यह थोड़ी सी बात। जटिल है मनुष्य का मन। जटिलता देखें, अपने झूठे चेहरों को पहचानें। जिन झूठे वस्त्रों को गवाही दी है, उन गवाहियों को पहचानें। जिस प्रेम को प्रेम कहा है और जिसके पीछे घृणा छिपी बैठी है, उस प्रेम को पहचानें। जिस ज्ञान को ज्ञान समझा है और जहां ज्ञान बिल्कुल भी नहीं, उस ज्ञान की व्यर्थता को देखें। और देखते ही आप पाएंगे कि एक दीवाल टूट गई और कोई किरणें उतरनी शुरू हो गई हैं और प्राण सरल हो गए हैं, निर्दोष हो गए हैं, इनोसेंट हो गए हैं।
धन्य हैं वे लोग जो सरल हो जाते हैं, क्योंकि परमात्मा उनकी संपदा बन जाता है। धन्य हैं वे लोग जो सरल हो जाते हैं, क्योंकि सरलता के द्वार से उन्हें सब कुछ मिल जाता है। धन्य हैं वे लोग जो सरल हो जाते हैं, क्योंकि सत्य का और प्रभु का राज्य उनका है। लेकिन अभागे हैं वे लोग जो जटिल हैं। और हम सब, हम सब जटिल हैं। हमारा अभाग्य, हमारा दुर्भाग्य यही है कि हम अपने को उलझाए चले जाते हैं, उलझाए चले जाते हैं, उलझाए चले जाते हैं।
यह थोड़ी सी बात मैंने कही, इस संबंध में और जो बातें हैं वे आने वाली चर्चाओं में आपसे कहूंगा। एक छोटी सी घटना, और अपनी चर्चा मैं पूरी करूं। जीसस क्राइस्ट एक गांव में गए। उस गांव के लोग इकट्ठे हो गए। गांव का पुरोहित, गांव का पंडित, गांव का डाक्टर, गांव का शिक्षक, गांव के व्यापारी, गांव के मजदूर, गांव के पुरुष-स्त्रियां, वे सब इकट्ठे हो गए। वे जीसस की बातें सुनने लगे। और जीसस उन लोगों से कहने लगे कि परमात्मा का राज्य बहुत निकट है। तुम प्रवेश होना चाहते हो कि नहीं? वह जो किंगडम ऑफ गॉड है, बहुत करीब है। तुम चलना चाहते हो वहां या नहीं?
उन लोगों ने कहा, प्राण तो हमारे भी आतुर हैं, लेकिन कौन जा सकेगा? कौन
है पात्र? कौन जा सकेगा प्रभु के राज्य में? कौन है पात्र? कौन है अधिकारी?
तो जीसस ने सामने खड़े हुए धर्मगुरु को देखा; नहीं, वह अधिकारी नहीं था, क्योंकि उसे ख्याल था कि मैं धर्म का गुरु हूं, अहंकार था। जीसस ने पास में खड़े हुए धनपति को देखा; उसकी रीढ़ में अकड़ थी, उसके जेब वजनी थे, उसके पास सोना था, धन था, वह भी कुछ था; नहीं-नहीं, वह भी पात्र नहीं हो सकता। जीसस की आंख वहां से भी हट गई। जीसस ने दरिद्र की तरफ देखा, उसके मन में सिवाय रोटी के और कल्पना नहीं थी कोई। धनी के मन में सोने-चांदी का हिसाब था, गरीब के मन में रोटी का हिसाब था। धर्मगुरु समझता था मैं जानता हूं। गांव का नास्तिक खड़ा था, वह समझता था ईश्वर है ही नहीं, ईश्वर का कोई राज्य नहीं है। कौन कहता है?
जीसस की आंखें एक-एक आदमी को देखने लगीं और खिसकने लगीं, नहीं-नहीं, वह कोई भी पात्र नहीं है। और तब किस पर जीसस की आंखें रुकीं? एक बच्चे पर जो भीड़ के बाहर चुपचाप धूल में खेल रहा था। वे दौड़ कर गए, उस धूल भरे बच्चे को उठा लिया ऊपर और कंधों पर ऊपर उठा कर लोगों से कहा, सुनो, जो लोग इस बच्चे की भांति सरल होंगे, परमात्मा के राज्य के अधिकारी वे ही हैं।
अपने से पूछना रात जाकरः बच्चे की सरलता है आपके पास? नहीं है, तो फिर प्रभु बहुत कठिन है, फिर वह सरल नहीं हो सकता है। और अगर आपके प्राणों से कोई बच्चा बोल उठे कि हां, मैं तैयार हूं, मैं मर नहीं गया हूं; तुम्हारी सब कोशिश के बावजूद भी मैं मर नहीं गया हूं; तुम्हारे सब झूठों के बावजूद भी मैं जिंदा हूं, इंस्पाइट ऑफ यू; और मुझे खोज लो, तुम्हारा बच्चा अभी मौजूद है। आज की रात भी द्वार खुल सकते हैं। किसी भी क्षण खुल सकते हैं।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।